# ट्रैकिंग

*तरुण भारती*

# ट्रैकिंग

**मनोहर पुरी**

**नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया**

ISBN 81-237-3038-1

पहला संस्करण : 2000 *(शक 1921)*

Trekking *(Hindi)*

**रु. 45.00**

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

*धर्माग्रज ज्ञान जी को*
*जिनकी*
*निष्णात् उत्सर्गना*
*ट्रैकिंग के*
*महायोजन की चिर प्रेरणा*
*रहेगी*

# विषय सूची

# भूमिका

पर्वतारोहण एवं पर्वतों से जुड़े साहसिक खेलों का प्रथम चरण है ट्रैकिंग। जिस प्रकार व्यक्ति जीवन के प्रारंभ में धीरे-धीरे चलना सीखता है, उसी तर्ज पर पहाड़ों से उसका परिचय ट्रैकिंग के माध्यम से होता है। ट्रैकिंग पर्वतों से गहरी जान-पहचान होने से पहले का सोपान है। पर्वतारोहण, रॉक क्लाईमिंग अथवा स्कींग इत्यादि जितने भी साहसिक खेल पर्वतों के मध्य खेले जाते हैं उनका प्रथम पाठ ट्रैकिंग से प्रारंभ होता है। ट्रैकिंग के द्वारा ही व्यक्ति यह सीखता है कि उसे पहाड़ों पर कैसा व्यवहार करना चाहिए, वहां पर कैसे चलना चाहिए अथवा कैसे पर्वतों को अपने अनुकूल बनाकर अपनी कठिन यात्रा को आनंददायक एवं सुखद बनाना चाहिए।

ट्रैकिंग व्यक्ति के भीतरी गुणों को उभारकर सामने लाती है और उसे समाज का बेहतर नागरिक बनने में सहयोग देती है। उसमें नेतृत्व के गुण विकसित करती है। परस्पर सहयोग एवं सद्भावना के गुणों को आवश्यक भूमि प्रदान कर इन गुणों को अंकुरित करती है। ट्रैकिंग व्यक्ति को निडर, साहसी और स्वावलंबी बनाती है। उसमें ध्येय प्राप्ति की दृढ़ता का सृजन करती है।

यह विश्वव्यापी मान्यता है कि ट्रैकिंग पर जाने से पहले व्यक्ति जैसा होता है वैसा ही वापस नहीं लौटता। उसके व्यवहार एवं क्षमताओं में आने वाले बदलाव आश्चर्यजनक होते हैं। आत्मविश्वास से भरा व्यक्ति जब ट्रैकिंग अभियान से वापस लौटता है तो उसका उत्साह देखते ही बनता है। प्रारंभ में भले ही एक-दो दिन वह थकान का अनुभव करे परंतु बाद में ट्रैकिंग अभियान की खट्टी-मीठी यादों का भंडार उसकी पूंजी बनकर जीवन के हर मोड़ पर उसका मार्गदर्शन करता है।

विश्व की सर्वोच्च पर्वत शृंखलाओं का देश होने के बावजूद भारतीय युवकों का रुझान ट्रैकिंग के प्रति बहुत अधिक उत्साहजनक नहीं रहा है। इस शताब्दी के छठे दशक तक तो हम ट्रैकिंग और पर्वतारोहण जैसे खेलों से अनजान ही थे। ये गतिविधियां हमें पश्चिमी देशों की विलासिता का प्रदर्शन करने वाले खेल लगते थे। जो लोग इसके बारे में जानते भी थे तो उनकी निगाह में यह खर्चीला और बेकार का जोखिमभरा खेल था। बाद में थोड़ी-बहुत ट्रैकिंग स्कूल-कालेज के छात्रों द्वारा की जाने लगी, तो हमें ज्ञात हुआ कि अन्य अनेक खेलों की तरह ट्रैकिंग भी एक

संपूर्ण खेल है और हमारे पूर्वज इसके गुणों से अंजान नहीं थे, भले ही उनका ट्रैकिंग के आधुनिक स्वरूप से अधिक परिचय नहीं था। जब भारतीय युवकों ने ट्रैकिंग में रुचि लेनी प्रारंभ की तो जल्दी ही जगह-जगह इसके क्लब खुलने लगे और सरकार तथा समाज द्वारा भी इसे प्रोत्साहित किया जाने लगा। बड़ी संख्या में लोग जब ट्रैकिंग को अपनाने लगे तब भी उनका ध्यान ट्रैकिंग के क्षेत्र में पठनीय सामग्री के अभाव की ओर नहीं गया। वर्षों तक किसी भारतीय लेखक का ध्यान भी इस ओर नहीं गया। विदेशी लेखकों को भारत के रीति-रिवाजों, जलवायु तथा भूगोल का पूरा ज्ञान नहीं था। फलस्वरूप उनके द्वारा रचित साहित्य उतना उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ। ट्रैकिंग पर जाने वालों की संख्या बढ़ी तो दुर्घटनाएं भी अधिक होने लगीं। ट्रैकिंग की सही तकनीक के अभाव में कई लोगों को प्राणों से हाथ भी धोना पड़ा।

इस ओर सर्वप्रथम श्री ज्ञानचंद ने सोचा। वह विश्व प्रसिद्ध पर्वतारोही होने के साथ-साथ मनाली पर्वतारोहण संस्थान के प्रशिक्षक भी रहे हैं। उन्होंने 'ट्रैकिंग इन इंडिया' पुस्तक लिखकर इस कमी को पूरा करने का प्रयास किया। लेकिन यह पुस्तक अंग्रेजी में थी तथा इसमें ट्रैकिंग की तकनीक की अपेक्षा ट्रैकिंग के मार्गों पर अधिक सामग्री थी। हिंदी में तो ऐसी पुस्तकों का नितांत अभाव रहा है। यदा-कदा कुछ पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय पर लेख देखने को मिल जाते हैं। ऐसी स्थिति में प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन की योजना बनाकर नेशनल बुक ट्रस्ट ने एक सराहनीय कदम उठाया है। यह पुस्तक युवा पीढ़ी की ट्रैकिंग संबंधी कई जिज्ञासाओं का समाधान कर उन्हें एक सफल पर्वतारोही बनने में सहयोग करेगी। देश के भावी नागरिकों को हिमालय की बुलंदी तक पहुंचाने में यह पुस्तक मार्गदर्शक हो, इसी कामना के साथ ...

**–मनोहर पुरी**

# 1

# ट्रैकिंग

हिमाच्छादित ऊंचे पहाड़, कलकल करती नदियां, घने जंगल और प्रकृति की ऐसी ही अन्य अनुपम झांकियों को करीब से निहारना तथा उसका रसास्वादन करना मानव का सहज स्वभाव है। जिज्ञासा मनुष्य को किसी एक स्थान पर जमकर बैठने नहीं देती। इसी से प्रेरित होकर मनुष्य जब अपने चिर-परिचित माहौल से ऊब जाता है तो कहीं दूर प्रकृति की गोद में चल देता है। जिज्ञासा की मूल वृत्ति को संतुष्ट करने के लिए व्यक्ति स्वभाववश हर प्रकार के रहस्य का भेद जान लेना चाहता है।

विश्व में अधिकांश अन्वेषण कार्य मानव के इसी स्वभाव का परिणाम कहे जा सकते हैं। मानव मन प्रत्येक अनजानी बात को जान लेना चाहता है, भले ही इसके लिए उसे अपने जीवन को जोखिम में ही क्यों ने डालना पड़े। अपनी जान पर खेलकर कितने ही साहसी व्यक्तियों ने पर्वतों, समुद्रों, जंगलों और रेगिस्तानों की रोमांचक यात्राएं की हैं। इन भू-प्रदेशों के रहस्यों को उजागर करने के लिए कितने ही साहसी व्यक्तियों ने अपने पूरे जीवन व्यतीत कर दिये। जिज्ञासा की इसी प्रवृत्ति



ने व्यक्ति को नये-नये प्रदेश खोजने के लिए प्रेरित किया, समुद्रों की तहों तक पहुंचाया और पर्वतों के शिखरों पर आरोहण के लिए उत्साहित किया। उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव तक मानव से अछूते नहीं रहे। चंद्रमा पर यात्रा के बाद मानव के चरण मंगल इत्यादि अन्य ग्रहों की ओर निरंतर बढ़ते जा रहे हैं। मानव की यही जिज्ञासु प्रवृत्ति उसे लगातार 'चैरेवेति-चैरेवेति' का संगीत सुनाया करती है और वह दूर, अति दूर तक निकल जाना चाहता है, क्षितिज के भी उस पार तक। उसमें यह अदम्य लालसा है कि वह वहां पहुंच जाये जहां पहले अन्य कोई नहीं पहुंच सका।

आज विज्ञान के युग में आवागमन के अत्यंत आधुनिक साधन उपलब्ध हैं जबकि पहले आदमी अपनी यात्राएं पैदल ही किया करता था। बाद में पशुओं को मनुष्य ने अपना सहयात्री बनाया और अब पशुओं का स्थान मशीनों ने ले लिया है। भ्रमण का जो आनंद पैदल यात्रा करने में है वह वाहनों में बैठकर करने में कहां ! आर्थिक गतिविधियों और समय के साथ होड़ लेने के कारण व्यक्ति भले ही मशीनों का दास बन गया है परंतु आज भी वह सैलानी बनकर प्रकृति की गोद में समा जाना चाहता है। इसलिए जब वह भ्रमण की दृष्टि से घर से बाहर कदम निकालता है तो पैदल यात्रा करना ही उसे सर्वाधिक रुचिकर लगता है। इसी पैदल भ्रमण को ही ट्रैंकिंग की संज्ञा दी गयी है। ट्रैंकिंग से हमारा अभिप्राय ही एक स्थान से दूसरे स्थान की पैदल यात्रा करने से है। ऐसी यात्रा का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना ही होता है। आनंद और मस्ती ट्रैकिंग के ऐसे महत्वपूर्ण पक्ष हैं जो युवा वर्ग को निरंतर अपनी ओर आकर्षित करते हैं और युवाओं को युवा होने का वास्तविक अहसास भी कराते हैं।

ट्रैकिंग की ललक उन पश्चिमी देशों में भी बहुत ही तेजी से बढ़ रही है जहां मानवीय जीवन मशीनों का गुलाम होता जा रहा है। मशीनीकरण के कारण पाश्चात्य देशों का आम आदमी प्रकृति से कटता जा रहा है। अब ट्रैकिंग के माध्यम से वहां पर अधिक से अधिक लोग अपने आप को प्रकृति से जोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। सप्ताह भर मशीनों से जूझने के पश्चात आने वाले अवकाश का वे बेसब्री से इंतजार करते हैं। थोड़ा-सा अवसर मिलते ही वे प्रकृति की गोद में विश्राम करने के लिए चल पड़ते हैं। वहां ट्रैकिंग को एक ऐसे खेल के रूप में अपनाया गया है जो न केवल व्यक्ति को रोजमर्रा की ऊब से छुटकारा दिलाता है बल्कि उसे शहरी वातावरण से दूर प्रकृति से तालमेल बिठाने का अवसर भी प्रदान करता है। इससे व्यक्ति एकदम तरोताजा महसूस करने लगता है।

खेल का अर्थ ही है ऐसा कार्य जो व्यक्ति को आनंद और मस्ती प्रदान करे जिसमें रमकर वह सभी तनावयुक्त बातों को भूल जाये। खेल के समय व्यक्ति के सामने न तो कोई चिंता रहती है और न ही झंझट। ट्रैकिंग भी एक ऐसा ही खेल है जो व्यक्ति को शारीरिक व्यायाम के साथ-साथ मानसिक विकास के अवसर भी

प्रदान करता है। भारत में युवा वर्ग अभी ट्रैकिंग की ओर अधिक आकृष्ट नहीं हुआ। पर्वतों, नदी-नालों, बीहड़ों, जंगलों और रेगिस्तान के अतिरिक्त मीलों लंबे समुद्री तटों का देश होने के बावजूद भारतीय युवा वर्ग में ट्रैकिंग की भावना अपनी प्रारंभिक अवस्था में ही है। दूसरी ओर पश्चिमी देशों के लोग बाल्यकाल से ही पीठ पर रकसैक लादकर ट्रैकिंग के लिए निकल पड़ते हैं। किशोरावस्था तक तो वे अनुभवी भ्रमणकारी हो जाते हैं।

भारत के लिए ट्रैकिंग कोई नयी बात नहीं है। प्राचीन काल से ही हमारे ऋषि-मुनियों ने शहरों और बस्तियों से दूर पर्वतों के शिखरों, कंदराओं तथा घने जंगलों को अपना निवास बनाया। आदि शंकराचार्य ने भारत की चारों दिशाओं की पैदल यात्रा करके ही चारों धामों की स्थापना की। पर्वत चोटियों और घाटियों में तो इतनी बड़ी संख्या में ऋषि-मुनि विचरण करते रहे कि हम ऐसे क्षेत्रों को आज भी तपोभूमि के नाम से जानते हैं। हमारे तीर्थ और मंदिर ऐसे दुर्गम स्थानों पर स्थिर हैं जहां व्यक्ति पैदल चलकर ही पहुंच पाता था। आज भी ये स्थान प्रतिवर्ष लाखों तीर्थ यात्रियों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। लोग मोक्ष प्राप्ति की कामना से इन पवित्र स्थलों की पैदल यात्रा करते हैं।

आधुनिक परिभाषा में भले ही कुंभ के अवसर पर लगे शिविरों को ट्रैकर्स कैंप्स का नाम न दिया जाये, तीर्थ यात्रियों को भले ही सैलानी न माना जाये परंतु वास्तव में इन लंबी दूरी की यात्राओं को ट्रैकिंग के अतिरिक्त कोई ओर नाम नहीं दिया जा सकता। कंधों पर कांवर उठाये जब हजारों लोग प्रतिवर्ष सैकड़ों मील की यात्राएं महीनों में तय करते हैं तो वास्तव में एक ऐसी परंपरा का पालन करते हैं जिसे आज ट्रैकिंग का नाम दिया जा रहा है। आनंद और मात्र जिज्ञासा के लिए सैलानी बन यात्रा करने का रिवाज अब बढ़ता जा रहा है। केदारनाथ, वैष्णों देवी अथवा फूलों की घाटी में पहुंचने वाले यात्रियों से बातचीत करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उनका उद्देश्य मात्र धार्मिक कर्मकांड की पूर्ति करना ही नहीं है। कौन जाने हमारे पूर्वजों ने ट्रैकिंग की महत्ता को स्थापित करने के लिए ही इसे धर्म के साथ जोड़कर समाज के सामने रखा हो। शायद उस काल में केवल आनंद के लिए ऐसी यात्राओं पर व्यय करना आर्थिक दृष्टि से उचित न माना जाता रहा हो। इस प्रकार यदि ट्रैकिंग को प्राचीन यात्राओं का आधुनिक रूप कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अपनी प्राचीन परंपरा को बनाये हुए आज भी हजारों यात्री प्रतिवर्ष पर्वतीय एवं तटीय भू-प्रदेशों की यात्राएं करने के लिए निकल पड़ते हैं। ट्रैकिंग करने वाला व्यक्ति उस भू-प्रदेश के साथ बहुत गहरे तक जुड़ जाता है जहां वह घूमने के उद्देश्य से पहुंचता है। इसी जुड़ाव की कल्पना हमारे पूर्वजों ने हजारों वर्ष पूर्व की होगी। जब तक व्यक्ति उन अनजाने भू-प्रदेशों के मध्य नहीं पहुंच जाता उसे यह अहसास

ही नहीं होता कि वह अब तक किस सौंदर्यानुभूति से वंचित रहा है। ऐसे आनंद का वर्णन शब्दों द्वारा किया जाना संभव ही नहीं है। पर्वतों, जंगलों और समुद्री तटों के विषय में आम आदमी यह सोच सकता है कि इन सबका उसके दिन प्रतिदिन के जीवन में कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। न ही इनसे उसका कोई सीधा संबंध है। वास्तविकता दूसरी ही है। ये प्राकृतिक चीजें हमारे जीवन को लगातार प्रभावित करती रहती हैं। अलग-अलग तरह से लोग अलग-अलग ढंग से इनसे जुड़े रहते हैं। जुड़ाव की यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।

भारत कृषि प्रधान देश है। कृषि की निर्भरता पर्यावरण पर है और पर्वत भी मनुष्य की ही भांति पर्यावरण के महत्वपूर्ण अंग हैं। पर्वतों के कारण होने वाली वर्षा हमारी कृषि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार नदियों के उद्गम स्रोतों के रूप में भी सिंचाई के लिए वे अत्यंत उपयोगी हैं। जंगल एवं समुद्र भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करते हैं। इन भू-प्रदेशों को समझने के लिए ट्रैकिंग एक बहुत अच्छा माध्यम है।

पर्वत चिरकाल से मानव जीवन के साथ जुड़े हैं। पर्वतों का प्रभाव मौसम पर सीधा पड़ता है, इसलिए मौसम वैज्ञानिक पहाड़ों पर बदलते वातावरण का निरंतर अध्ययन करते रहते हैं। भू-वैज्ञानिकों की रुचि इनकी निर्माण प्रक्रिया और इनमें होने वाले परिवर्तनों में होती है। वे इस बात की जानकारी एकत्र करते रहते हैं कि किस प्रकार इनका निर्माण हुआ और इनके नीचे कैसे-कैसे खनिज पदार्थ दबे पड़े हैं। भूगोलवेत्ता इन पहाड़ों की स्थलाकृति, बनावट विस्तृत भू-भाग, गहरी कंदराओं और घाटियों के अतिरिक्त भूमि-स्खलन से होने वाले परिवर्तनों में गहरी रुचि रखते हैं। वनस्पति विशेषज्ञों के लिए तो पर्वत ज्ञान के भंडार हैं ही। इन पर्वतों पर मिलने वाली जड़ी-बूटियां, पेड़-पौधे और फल-फूल उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते हैं। मानव विज्ञानी पर्वतों के विभिन्न भागों में निवास करने वाली जनजातियों और कबीलों की पारंपरिक सभ्यता, संस्कृति और कला के विकास में उनके योगदान का अध्ययन करते हैं। पर्वतों पर रहने वाले लोगों का जीवन, रहन-सहन और रीति-रिवाज बाहरी व्यक्तियों के लिए सदैव उत्सुकता का विषय रहे हैं।

प्रकृति की उत्कृष्टतम रचनाओं में से एक पर्वतमालाएं हैं। तभी छायाकार के लिए यह एक ऐसा स्थल है जहां वह अपने कैमरे का प्रयोग सुंदरतम दृश्यों को कैद करने में कर सकता है। हर कदम हर क्षण वह छायाकार के लिए नये कोण प्रस्तुत करता है। यदि छायाकार चाहे तो वह विभिन्न कोणों से पर्वतों के चित्र उतारने में अपना पूरा जीवन व्यतीत कर सकता है। कवियों, लेखकों, साहित्यकारों और शांतिप्रिय लोगों के लिए पर्वत प्रेरणा-स्थल रहे हैं। ट्रैकिंग करने वालों के लिए तो ये स्वर्ग से भी बढ़कर हैं। वैसे भी हिंदू धर्म की मान्यताओं के अनुसार पर्वतों में भगवान ब्रह्मा का निवास है। यहीं से वह सृष्टि का संचालन करते हैं। अधिकतर पर्वत शिखरों

से निकलने वाली नदियों और उनमें स्थित झीलों का नामकरण देवी-देवताओं के नामों को आधार बनाकर किया गया है। कोई भी भारतीय इन स्थानों के दर्शन करके भगवान के सम्मुख श्रद्धा से सिर झुकाकर अपने जीवन को धन्य मानता है। यहां तक कि जब कोई भारतीय पर्वतारोही किसी पर्वत शिखर पर पहुंचता है तो वहां आदर से सिर झुकाकर उस शिखर की वंदना करता है। वह वहां पर एक विजेता के रूप में न पहुंचकर एक साधक के रूप में पहुंचता है। ईश्वर की उपासना के लिए भी हमारे ऋषियों ने पर्वतों को सर्वश्रेष्ठ स्थान माना और यहीं पर मोक्ष प्राप्ति के लिए साधना की। यही कारण है कि हिमालय धार्मिक दृष्टि से भी हमारे जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। केवल ऋषि-मुनियों ने ही पर्वतों को अपनी तपोभूमि नहीं बनाया बल्कि अनेक उत्साही व्यापारियों ने भी जोखिमभरी यात्राएं करके अपने व्यापार को, इन पर्वतों के पार विश्व के अन्य देशों में फैलाया। राजनैतिक और धार्मिक कारणों से भी अनेक लोगों ने इन पर्वतों को लांघकर अन्य देशों के साथ संपर्क साधा और उन्हें भारतीय सभ्यता और संस्कृति से अवगत करवाया। प्राचीन काल से ही भारतीयों ने रूस, चीन, मंगोलिया, तिब्बत और अफगानिस्तान के दुर्गम मार्ग इन पर्वतों में से खोजकर उनके साथ अपने व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संबंध स्थापित किये थे।

जोखिम उठाकर कठिनाइयों पर विजय पाना मानव का सहज स्वभाव है। यही प्रवृत्ति उसे पहाड़ों को लांघने और घने जंगलों को छानने के लिए लालायित करती है। इसी प्रवृत्ति के अधीन 1953 में एडमंड हिलेरी और तेनजिंग ने सफलतापूर्वक एवरेस्ट की चढ़ाई की। एवरेस्ट आरोहण के पश्चात ही भारत में लोगों ने पर्वतारोहण और ट्रैकिंग जैसी साहसिक गतिविधियों को खेल के रूप में अपनाना प्रारंभ किया। आज हर पर्वतारोही इन शिखरों पर अपनी विजय पताका फहराना चाहता है। कुछ लोग केवल प्रसिद्ध होने के कारण इस क्षेत्र में आते हैं तो कुछ अपनी खोजी प्रवृत्ति के कारण, परंतु खेल की भावना दोनों के ही मन में जगह बनाये होती है।

पैदल भ्रमण अथवा ट्रैकिंग अपने आप में बहुत थका देने वाला कार्य है। इस खेल के लिए शारीरिक शक्ति के साथ-साथ दृढ़ इच्छाशक्ति का होना भी बहुत जरूरी है। जब व्यक्ति ट्रैकिंग के लिए निकलता है तो उसे दिनभर दुर्गम मार्गों पर चलना पड़ता है। तरह-तरह के मौसम उसके मार्ग में बाधाएं प्रस्तुत करते हैं। रहने का सुविधाजनक प्रबंध न होने के कारण उसे कहीं भी बिना सोये ही रात व्यतीत करनी पड़ सकती है। जहां जो कुछ मिल गया वही खाकर रह जाना होता है। ऐसी स्थितियों में ट्रैकर झुंझला उठता है। कभी वह दुखी होता है तो कभी उदास। अपने साथ-साथ वह उस व्यक्ति को भी कोसने लगता है जिसने उसे ट्रैकिंग करने के लिए प्रेरित किया था। मन ही मन वह फिर कभी ट्रैकिंग न करने की कसमें खाता है। पीठ पर लदा हुआ थोड़ा-सा सामान उसे गधे का बोझ दिखाई देता है। यदि वह ऊंचाई

पर होता है तो उसे हर कदम जोखिम से भरा दिखाई देता है।

ट्रैकिंग का क्षेत्र छोटा-मोटा मैदान न होकर एक विस्तृत और लंबा भू-प्रदेश होता है जहां व्यक्ति को निरंतर किसी न किसी कठिनाई से जूझना पड़ता है। इसी कारण इस खेल में अन्य खेलों की अपेक्षा कहीं अधिक साहस और शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। विस्तृत खेल के मैदान में खिलाड़ी का उत्साह बढ़ाने वाला कोई दर्शक नहीं होता। केवल प्रकृति और खिलाड़ी स्वयं ही हर बात के लिए जिम्मेदार होते हैं। पूरा खेल बिना किसी रैफरी के खेला जाता है। न तो मैदान की सीमा रेखा होती है और न ही खिलाड़ियों की कोई निश्चित संख्या। प्रकृति और व्यक्ति की क्षमताओं में भी भारी अंतर होता है। साथ ही लक्ष्य भी असीम और अस्पष्ट-सा। प्रकृति के विशाल प्रांगण में बौना-सा मानव अपनी बुद्धि, साहस और इच्छा शक्ति के बल पर टिका रहता है। न केवल टिका रहता है बल्कि अपनी मंजिल तक पहुंच भी जाता है। सुंदरता से भरपूर प्रकृति कितनी क्रूर हो सकती है इस बात का पता तब लगता है जब व्यक्ति कोई गलती करता है। प्रकृति छोटी-सी गलती की भी बहुत बड़ी सजा दे डालती है। माफ करना तो वह जानती ही नहीं। गलती सुधारने का कोई अवसर भी खिलाड़ी को नहीं मिल पाता। एक चूक खिलाड़ी को मौत के मुंह में ले जाती है। कब व्यक्ति किसी बर्फीले तूफान में फंस जाये अथवा कब कोई घाटी उसे निगल जाये, इसका कुछ आभास तक नहीं होता।

इतना सब करने पर जब व्यक्ति किसी अभियान को सफलतापूर्वक पूरा कर लेता है तो उसे गहरा आत्मसंतोष होता है। ऐसे समय में यदि उससे पूछा जाये कि उसने किस पर विजय प्राप्त की है तो उसका एक ही उत्तर हो सकता है कि 'स्वयं पर'। यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे स्थान पर पहुंच जाये जहां उससे पूर्व मानव चरण न पड़े हों तो भी उस स्थान अथवा शिखर को कोई अंतर नहीं पड़ता। वहां किसी प्रकार का मौलिक अंतर दिखाई नहीं देता। अंतर आता है तो व्यक्ति में। उस बदलाव को स्पष्ट देखा भी जा सकता है। अपनी शक्ति, क्षमता, साहस और इच्छाशक्ति का परीक्षण करके जब कोई व्यक्ति अपनी मंजिल पर पहुंचता है तब वहां पर उसका साक्षात्कार सत्य से होता है। उसे अपनी क्षमताओं, साहस और शक्तियों पर भरोसा हो जाता है। नेतृत्व के गुणों का उसमें स्वाभाविक विकास होता है। शारीरिक और मानसिक सुदृढ़ता के साथ-साथ उसमें परस्पर सहयोग एवं सद्भाव की भावनाएं विकसित होने लगती हैं। उसमें स्वयं ही निर्णय करने की अद्भुत क्षमता आ जाती है। ये कुछ ऐसे गुण हैं जो किसी भी खिलाड़ी में अन्य किसी भी खेल के द्वारा विकसित नहीं होते।

अहम् के स्थान पर नम्रता की भावना का विकास ट्रैकिंग एवं पर्वताराहण सरीखे खेल का स्वाभाविक परिणाम है। अहंकार के स्थान पर आदर की भावना खिलाड़ी में सहज रूप से आ जाती है। 'मैं' का स्थान 'हम' द्वारा ग्रहण कर लिया जाता



है। पर्वतों की बेटी के रूप में जानी जाने वाली, भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने भारतीय पर्वतारोहण संस्थान के भवन की आधारशिला रखते हुए इस तथ्य को स्वीकार किया था। उन्होंने कहा था कि "पर्वतारोहण से व्यक्ति में उन गुणों का विकास होता है जिनकी इस समय हमारे देश में बहुत अधिक आवश्यकता है। अपने भविष्य के लिए हमें अपने नागरिकों में उद्देश्य के प्रति निष्ठा तथा संघ भावना का विकास करना होगा। पर्वतारोहण द्वारा ये गुण सहज ही प्राप्त होते हैं। फलतः हिमालय के साथ संपर्क बढ़ाकर हम हर प्रकार से अपने देश को मजबूत बना सकते हैं, जो कि हमारा ध्येय है।"

पर्वत भ्रमण पश्चिमी देशों में एक मनोरंजक खेल के रूप में स्थापित हो चुका है। यूरोप में पर्वतारोहण का प्रारंभ अठारहवीं शताब्दी में हुआ। तब से अब तक पर्वतारोहण एवं ट्रैकिंग की तकनीक में काफी विकास हुआ है। इस प्रक्रिया में अनेक साहसी पर्वतारोहियों ने अपने प्राण भी गंवाए हैं। इन खेलों में जिन वस्तुओं का प्रयोग होता है उनकी गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार होने के कारण अब इस खेल को काफी सुरक्षित माना जाने लगा है। यही कारण है कि अब अधिक से अधिक लोग इस खेल की ओर आकृष्ट होने लगे हैं। पर्वतारोहण की लोकप्रियता और पर्वतों के प्रति बढ़ते आकर्षण के कारण बड़ी मात्रा में लोग ट्रैकिंग में रुचि लेने लगे हैं।

# 2

# पर्यावरण

पृथ्वी ही एकमात्र ऐसा नक्षत्र है जहां प्राणी और वनस्पति दोनों ही मिलते हैं। इन दोनों का संतुलन ही धरती के अस्तित्व को बनाये हुए है। पृथ्वी पर मानव, पशु-पक्षी, जीव-जंतु, कीट-पतंग, पेड़-पौधों और वनस्पतियों के परस्पर तालमेल से एक संतुलन बनाकर रहना ही आदर्श स्थिति है। मानव प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ, अनुपम और अनमोल रचना है। पृथ्वी का संतुलन बनाये रखने में मानव की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है, बल्कि इसे बनाये रखने का वास्तविक उत्तरदायित्व मनुष्य का ही है।

प्रकृति पर विजय पाने की बात विश्व को पश्चिम की देन है। भारत ने इसे सदा अपनी जननी माना है। जिसकी गोद में पलकर वह बड़ा होना चाहता है; उस पृथ्वी को उसने मां कहा है। भारतीय दृष्टिकोण में, मानव प्रकृति का स्वामी नहीं वरन उसकी संतान है। आज से लगभग 22 शताब्दी पूर्व भारत के महान शासक अशोक ने पर्यावरण की रक्षा को किसी राजा का सबसे पुनीत कर्त्तव्य बताया था। अनेकानेक शिलालेखों पर अपने आदेश खुदवाकर उसने वनों और वन्य प्राणियों को नष्ट करने पर प्रतिबंध लगा दिया था। उसके ये आदेश पर्यावरण के संरक्षण के सबसे प्राचीन ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। ईशोपनिषद् में भी कहा गया है कि यह ब्रह्मांड उस असीम शक्ति द्वारा अपनी बनाई गयी सारी सृष्टि की भलाई के लिए है। इसलिए हर एक को परस्पर सहयोग से इसका उपयोग करते हुए आनंद उठाना चाहिए और एक-दूसरे के विनाश का कारण नहीं बनना चाहिए।

हमारे प्राचीन ज्ञान ने भी हमें संपूर्ण सृष्टि के साथ सामंजस्य स्थापित करने की शिक्षा दी है। सृष्टि के समस्त जीव एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। सदियों से भारत में पर्वतों, समुद्रों, नदियों, वृक्षों और पशु-पक्षियों तक को वंदनीय माना गया है। ऐसी गौरवशाली परंपरा का उत्तराधिकारी होने के बावजूद हमने अपने कुछ तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रकृति के साथ खिलवाड़ किया है। जीव-जंतुओं का अंधाधुंध वध किया है, नदियों को प्रदूषित किया है और वनों का निर्ममता से सफाया किया है। संक्षेप में, हरे-भरे पेड़ों पर कुल्हाड़ी चलाकर हमने स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी

मारी है। आज जब विश्व के कौने-कौने में पर्यावरण के प्रदूषण पर चिंता व्यक्त की जा रही है तब भी हम पूरी तरह से सावधान नहीं हुए हैं। जल, वायु और वातावरण का प्रदूषण पूरे मानव समाज के लिए चिंता का विषय है। पर्यावरण के असंतुलन के दुष्प्रभाव अब मानव जीवन में दिखाई देने लगे हैं।

प्रारंभ से ही मानव ने प्रकृति का मनमाने ढंग से दोहन किया है। हम यह मानकर प्रंकृति के साथ खिलवाड़ करते रहे कि ये सब मानव की सुख-सुविधा के लिए ही बने हैं। हमने मानव को पर्यावरण का आवश्यक अंग न मानकर उनका उपभोग करने वाला माना जबकि वास्तव में मनुष्य भी वैसे ही पर्यावरण का भाग है जैसे जीव-जंतु, वन, नदियां, पर्वत इत्यादि। अब मनुष्य ने यह सोचना शुरू किया है कि उसे वनों, नदियों, पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं को संपूर्ण वातावरण का आवश्यक अंग मानकर ही चलना चाहिए। इनका प्रयोग केवल आवश्यकता के अनुरूप ही करना स्वयं मानव के हित में है। पर्यावरण का संतुलन बिगड़ जाने पर सबसे अधिक नुकसान मानव का ही होता है। मनुष्य के सामने यह स्पष्ट हो गया है ये समस्त वस्तुएं केवल मानव के प्रयोग के लिए ही नहीं हैं, बल्कि वे सब पूरे ब्रह्मांड में मनुष्य के समान ही बराबर की हिस्सेदार हैं। यदि मनुष्य अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए इनका विनाश करेगा तो इसका फल भी उसे ही भुगतना होगा। यदि एक बार प्रकृति का संतुलन बिगड़ गया तो फिर उसे रोक पाना बहुत मुश्किल होगा। उदाहरण के रूप में यदि वनों का लगातार सफाया किया जाता रहा तो उससे आसपास का मौसम प्रभावित होगा और नदियों में आने वाली बाढ़ को रोक पाना संभव नहीं होगा। भूमि का अधिक कटाव होगा, जो अंत में मानव के लिए ही हानिकारक होगा। कटाव के कारण भूमि का परत दर परत क्षय होता है। ऊपरी परत की उपजाऊ मिट्टी यदि एक बार नष्ट हो जाये तो उस क्षति को पूरा करना प्रायः असंभव होता है। ऐसी एक इंच भूमि के पुनर्निर्माण में प्रकृति को शताब्दियों का समय लगता है। इस समय प्रतिवर्ष बाढ़ का पानी भारत की 600 करोड़ टन मिट्टी बहाकर समुद्र में ले जाता है।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर विभिन्न सरकारी और गैरसरकारी संस्थाओं ने पर्यावरण के संतुलन को बनाये रखने के लिए अनेक प्रकार के प्रयास करने प्रारंभ किये हैं ताकि न केवल वर्तमान संतुलन को बनाये रखा जा सके, वरन जो क्षति वनों की कटाई, भूमि के कटाव और अन्य प्राकृतिक साधनों को पहुंचाई जा चुकी है, उसे भी पूरा किया जा सके। इसी क्षतिपूर्ति के द्वारा ही पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त किया जा सकता है। यहां यह जान लेना भी आवश्यक है कि पर्यावरण में असंतुलन के लिए मुख्य रूप से मनुष्य ही जिम्मेदार है, और कोई भी योजना अथवा कार्यक्रम मानव को अलग रखकर नहीं बनाया जा सकता।

हमारे चारों ओर जो भी भौतिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक गतिविधियां

होती हैं उसे ही वातावरण कहते हैं। पर्यावरण अथवा समग्र प्रकृति एक-दूसरे का पर्याय हैं। केवल नदी, जंगल, पहाड़, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और हवा, पानी ही पर्यावरण नहीं हैं। हमारी सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्थितियां भी पर्यावरण के अंग हैं। प्राकृतिक पर्यावरण इन सभी को प्रभावित करता है, क्योंकि विकास की धुरी में प्राकृतिक संसाधनों का ही प्रमुख स्थान है।

प्रत्येक वस्तु दूसरे को प्रभावित करती है परंतु हमारा पूरा ध्यान केवल भौतिक पक्ष की ओर ही रहता है। इन सभी भौतिक वस्तुओं का क्षय मानव की किसी न किसी इच्छापूर्ति के लिए ही होता है। इसलिए पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए जरूरी है कि मानव को इसके प्रति जागरूक किया जाये। सभी कार्यक्रमों की रूपरेखा मानव को केंद्र-बिंदु मानकर बनायी जानी चाहिए। मनुष्य को शिक्षित करके उसे वातावरण के संबंध में पूरी जानकारी दी जानी चाहिए कि वास्तव में पर्यावरण है क्या ? वातावरण में मानव का क्या स्थान है ? वातावरण के अन्य भागीदारों के साथ मनुष्य का क्या संबंध है ? जब व्यक्ति को यह ज्ञान हो जायेगा कि वातावरण से उसे क्या लाभ एवं हानियां हैं तब वह स्वयं ही पर्यावरण को बिगाड़ने की बजाय उसे सुरक्षित रखने में रुचि लेगा। यदि व्यक्ति को यह बात समझा दी जाये कि वनों की अंधाधुंध कटाई, जल एवं वायु में जहरीले पदार्थों का मिश्रण, पशु-पक्षियों का विनाश अंत में स्वयं उसी के विनाश का कारण बनेंगे तो वह कभी भी इनकी ओर प्रवृत्त नहीं होगा। यदि मनुष्य को सभ्यता एवं संस्कृति की पूरी जानकारी दी जाये तो वह दूसरे व्यक्ति, समाज अथवा देश के हितों पर कभी आघात नहीं करेगा।

मूल रूप से मानव को इस बात का आभास करवाया जाना चाहिए कि संपूर्ण वातावरण एक फूल के समान है। मानव स्वयं इस फूल की एक पंखुड़ी है। यदि फूल की एक पंखुड़ी भी टूट जाये तो पूरा फूल मुरझा जायेगा। परिवार का यदि एक सदस्य बीमार हो तो क्या परिवार के अन्य सदस्य प्रसन्नचित्त रह सकते हैं ? कदापि नहीं। इसी प्रकार यदि पर्यावरण में किसी एक वस्तु को समाप्त कर दिया जाये तो उसका पूरा संतुलन ही बिगड़ जायेगा। संतुलित पर्यावरण का अर्थ जीवन और जगत को पोषण देना है। इस पृथ्वी पर जो भी कुछ है वह फले-फूले, यही पर्यावरण का ध्येय है। जीव-जंतुओं और पशु-पक्षियों से अधिक चेतनशील होने के कारण पर्यावरण को सुरक्षित रखने का दायित्व भी मानव का ही है।

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद ही वातावरण के रख रखाव पर ध्यान देना शुरू किया था। परंतु बाद में आने वाली सरकारों ने इस ओर विशेष रुचि नहीं दिखाई। जब स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया गया तो उन्होंने तुरंत ही इस दिशा में ठोस कदम उठाये। इस क्षेत्र में हो रही क्षति को रोकने के लिए पर्यावरण विभाग का गठन किया गया। भारतीय संविधान में राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों और नागरिक

के मौलिक कर्त्तव्यों में पर्यावरण के संरक्षण से संबंधित धाराओं को सम्मिलित किया गया है।

भारतीय संविधान की धारा 48, अनुच्छेद 'अ' में साफ लिखा है कि राज्य पर्यावरण के संरक्षण और संवर्द्धन के प्रयास करेंगे और देश के वनों तथा वन्य प्राणियों की सुरक्षा करेंगे। इसी प्रकार धारा 51 के अनुच्छेद 'अ' में भी इस बात का उल्लेख है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक वातावरण के संरक्षण एवं संवर्द्धन विषयक अपना कर्त्तव्य निभायेगा। इस धारा में वनों, नदियों, झीलों और वन्य तथा अन्य प्राणियों की रक्षा को भी शामिल किया गया है। संक्षेप में, भारतीय संविधान में राज्य एवं नागरिक, दोनों को ही, वातावरण के संरक्षण के लिए बाध्य किया गया है। संविधान निर्माताओं का अभिप्राय स्पष्ट है कि दोनों मिल-जुलकर आपसी सहयोग से पर्यावरण की रक्षा करते हुए उसके संतुलन को बनाये रखें।

अब प्रश्न उठना भी स्वाभाविक है कि वातावरण के संतुलन में ट्रैकिंग करने वालों अथवा पर्वतारोहियों की क्या भूमिका है, अथवा हो सकती है ? कई बार तो खुले रूप से पर्वतारोहियों और ट्रैकिंग करने वालों पर यह आरोप लगाया जाता है कि ये लोग वातावरण को प्रदूषित करते हैं। पर्वतारोहण के लिए गये बड़े-बड़े दल ऊंचे पर्वत शिखरों को कूड़ाघर बना रहे हैं। ट्रैकिंग अभियान पर गये लोग जब कैंप लगाते हैं तो वहां के पेड़-पौधों को काटते हैं, कूड़ा-करकट फैलाते हैं, जल-स्रोतों को प्रदूषित करते हैं, वन्य प्राणियों को मारते हैं और पर्वतों के शांत वातावरण में शोर-शराबा भी करते हैं। ऐसे लोगों द्वारा पर्वत शिखरों पर छोड़ा गया कूड़ा-करकट बर्फ पिघलने के साथ बहकर नदियों में आ जाता है। अपनी ईंधन की आवश्यकता ये लोग लकड़ी जलाकर पूरी करते हैं। इस आलोचना में थोड़ी सचाई हो सकती है, परंतु यह पूरी तरह से सत्य नहीं है। अनुभव से देखा गया है कि अधिकतर सैलानी और पर्वतारोही प्रकृति प्रेमी होते हैं। प्रकृति का आनंद लेने के लिए ही वे समय और धन व्यय करके कठिन से कठिन यात्रा पर निकलते हैं। ऐसे लोग किसी भी प्रकार से वातावरण को क्षति पहुंचायेंगे, सोचना भी उचित नहीं। उलटे ये लोग पर्यावरण के रखरखाव के प्रति जागरूक होते हैं और मार्ग में मिलने वाले स्थानीय लोगों को इस दिशा में शिक्षित करने का प्रयास भी करते हैं।

भारतवर्ष में ट्रैकिंग एवं पर्वतारोहण से संबंधित सभी प्रकार की गतिविधियों का संचालन भारतीय पर्वतारोहण फाऊंडेशन (संस्थान) द्वारा किया जाता है। इस संस्थान द्वारा एक नियमावली प्रकाशित की गयी है जिसमें इस बात का उल्लेख है कि पर्वतों पर क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। प्रत्येक पर्वतारोही एवं सैलानी के लिए यह नियमावली यात्रा पर साथ ले जाना आवश्यक है। नियमावली वाली इस पुस्तिका में वन्य जीव-जंतुओं, पक्षियों, पेड़-पौधों एवं वनस्पतियों की सुरक्षा

के विषय में निर्देश दिये गये हैं। पर्वतों एवं यात्रा मार्गों को साफ-सुथरा रखने के विषय में भी पूरी-पूरी जानकारी दी गयी है। इतना ही नहीं, किसी भी पर्वतारोहण अभियान की अनुमति लेने से पूर्व अभियान के आयोजकों को यह लिखित आश्वासन देना होता है कि वे पेड़-पौधों को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचायेंगे और पर्वतों को साफ-सुथरा रखेंगे। पश्चिमी देशों में ऐसे दल लौटते समय सारा कूड़ा-करकट थैलों में भरकर वापस ले आते हैं और नष्ट करने के लिए संबंधित अधिकारियों को सौंप देते हैं। भारत में भी इस नियम को लागू करने पर विचार किया जा रहा है। नियम की अपेक्षा यदि लोग स्वेच्छा से यह कार्य करें तो उन्हें अधिक आनंद मिलेगा। पर्वतारोहण एवं ट्रैकिंग से संबंधित सभी संस्थाओं को निर्देश दिये गये हैं कि वे पर्यावरण से संबंधित नियमों का पालन करें। विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के अध्यापकों/प्राध्यापकों से भी यह आशा की जाती है कि वे अपने भाषणों में पर्यावरण के रखरखाव के विषय में लोगों को अधिक से अधिक प्रेरित करेंगे। यदि प्रारंभ से ही व्यक्ति को इस दिशा में शिक्षित किया जाये तो बहुत सी समस्याएं सहज ही सुलझ जायेंगी। इस विषय को प्रारंभ से ही स्कूलों के पाठ्यक्रम में रखा जाना चाहिए।

पर्यावरण को पहुंची क्षति को सैलानी एवं पर्वतारोही पूरा करने में सहायक हो सकते हैं। ये लोग ऐसे भू-प्रदेशों तक की यात्रा करते हैं जहां आम नागरिक के लिए पहुंचना कठिन होता है। वन विभाग के अधिकारियों के परामर्श से ये सैलानी उन स्थानों पर पेड़-पौधे उगाने का कार्य कर सकते हैं। वहां से मिट्टी और वनस्पतियों के नमूने ला सकते है जिनके अध्ययन से अधिकारियों को यह जानकारी मिल सकती है कि ऐसे भू-प्रदेशों में कैसी वनस्पतियां उगाई जायें। अपनी जर्मनी यात्रा के दौरान लेखक को म्यूनिख के एक संग्रहालय में विभिन्न प्रकार की भारतीय वनस्पतियों के पौधे देखने का अवसर मिला। ये फूल-पौधे हिमालय पर काफी ऊंचाई पर पाये जाते हैं। पूछने पर ज्ञात हुआ कि इन वनस्पतियों की पौध जर्मन पर्वतारोही समय-समय पर भारत से लाते रहे हैं। इसी प्रकार पर्वतारोही एवं सैलानी वनस्पतियों के अध्ययन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

अतः पर्वतारोही एवं सैलानी पर्यावरण को क्षति पहुंचाने के लिए दोषी नहीं ठहराये जा सकते। इस वर्ग के लोग तो वातावरण को हानि पहुंचाने वालों की सूचना संबंधित अधिकारियों तक पहुंचाना अपना कर्त्तव्य समझते हैं और पर्वतों पर सफाई के कार्य में योगदान भी करते हैं। आस्ट्रिया के श्री वैरनर ब्रैनर एवं अन्य ऐसे ही पर्वतारोही एवरेस्ट की सफाई के अभियान में लगे हैं। इस बात का भी प्रचार किया जा रहा है कि ट्रैकिंग एवं पर्वतारोहण के लिए जाने वाले अभियान दलों के सदस्य अधिक से अधिक शाकाहारी हों। ऐसे लोग पैरों में प्लास्टिक के जूते पहनें। अधिक कुलियों और जानवरों पर निर्भर न हों। खाने-पीने की ऐसी सामग्री साथ ले जायें

जिनसे कूड़ा-करकट कम से कम हो। टिन के डिब्बों की अपेक्षा पोलीथीन की थैलियों में सामान ले जाया जाये ताकि खाली थैलियों को वापस लाने में भी किसी प्रकार की कठिनाई न हो। ऐसे अभियान दल ईंधन के रूप में अपने साथ स्टोव अथवा गैस ले जाने लगे हैं ताकि उन्हें अपनी ईंधन की आवश्यकता के लिए लकड़ी न जलानी पड़े। आज तक आवश्यकता पड़ने पर ऐसे दल जंगल में इधर-उधर पड़ी सूखी लकड़ियों को एकत्र करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे और यदि बहुत जरूरी होता था तभी कोई सूखा पेड़ काटते थे। अब ये लोग इस विषय में भी सतर्क हो गये हैं, क्योंकि पर्यावरण का संतुलन बनाये रखने में सूखे पड़ों की भी अपनी भूमिका होती है। कई पक्षी एवं कीट-पतंग इन पर वास करते हैं। अतः अब ऐसे पेड़ों को काटना भी ठीक नहीं समझा जा रहा। नये-नये प्रयोगों द्वारा ऐसे पदार्थ बनाये जा रहे हैं जिनका भोजन के रूप में प्रयोग करने के लिए न्यूनतम ईंधन की आवश्यकता हो, अथवा उन्हें बिलकुल ही पकाना न पड़े। इस बात का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा जा रहा है कि ऐसी भोज्य सामग्री पूरी तरह से पोष्टिक हो।

पर्यावरण के संतुलन को बनाये रखने के लिए लगभग हर सरकार सचेत है। इस दिशा में लोग भी जागरूक हो रहे हैं। सभी सरकारों ने वातवरण को प्रदूषण से बचाने के लिए अलग से विभागों का गठन किया है। इस बात के पूरे-पूरे प्रयास किये जा रहे हैं कि राज्यों में जंगलों को पूरी सुरक्षा प्रदान की जाये। नये वृक्षों को उगाने के कार्यक्रम युद्ध स्तर पर लागू किये गये हैं। सामाजिक वानिकी के अंतर्गत सरकार लोगों को वृक्षारोपण के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से उन्हें मुफ्त पौधे दे रही है। भूमि के कटाव एवं नदियों के प्रदूषण को रोकने के लिए वातावरण की सुरक्षा से संबंधित नियमों का कड़ाई से पालन किया जा रहा है। जल एवं वायु के प्रदूषण को रोकने के लिए सरकार कदम उठा रही है। जीव-जंतुओं की रक्षा के लिए वनों को संरक्षित क्षेत्र बनाया जा रहा है। कुछ स्थानों को बारी-बारी से प्रतिबंधित किया जा रहा है, ताकि उन क्षेत्रों में जो क्षति हो चुकी है पूरी की जा सके। पर्यावरण संतुलन का यह अभियान जन जागरण के अभाव में सफल नहीं हो सकता और जन जागरण में ट्रैकर्स और पर्वतारोही एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

# 3
# ट्रैकिंग की तैयारी

किसी अभियान की तैयारी यदि उचित ढंग से कर ली जाये तो उसकी आधी सफलता सुनिश्चित हो जाती है। ट्रैकिंग पर निकलना भी इसका अपवाद नहीं है। भले ही पैदल चलने के लिए व्यक्ति को किसी खास प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता न हो परंतु जब वह ट्रैकिंग के लिए घर के बाहर कदम निकालता है तो उसे एक विशेष प्रकार के आचार-व्यवहार के लिए पहले से तैयार होना चाहिए। जिस प्रकार बच्चे को चलना सीखने के लिए दो-तीन वर्ष का समय लगता है, उसी प्रकार एक व्यक्ति को ट्रैकिंग में अभ्यस्त एवं निपुण होने के लिए दो-तीन वर्ष के प्रशिक्षण एवं अभ्यास की जरूरत होती है। चूंकि ट्रैकिंग पर्वतारोहण की पहली सीढ़ी है, इसलिए जो लोग पर्वतारोहण के क्षेत्र में जाना चाहते हों उनके लिए अच्छा सैलानी अर्थात ट्रैकर बनना अनिवार्य है। यहां हम उसी ट्रैकिंग की चर्चा करेंगे जिसे मनोरंजन के लिए एक खेल के रूप में अपनाया गया है। पहाड़ी, जंगलों एवं दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को अपनी दिनचर्या के रूप में प्रतिदिन मीलों पैदल चलना पड़ता है। इस प्रकार के पैदल भ्रमण को ट्रैकिंग नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के रूप में जब कोई व्यक्ति प्रातः सैर करने के लिए जाता है तो उसकी तुलना उस समय के साथ नहीं की जा सकती जब वह अपनी नौकरी के लिए कार्यालय जा रहा हो। भले ही दोनों स्थानों का मार्ग एक ही हो और व्यक्ति पैदल ही चल रहा हो। सुबह जब वह व्यक्ति मनोरंजन के लिए घर से बाहर निकलता है तो उसके मन में कार्यालय की कोई चिंता नहीं होती। पूछने पर वह स्वयं ही कहता है कि मैं सैर के लिए निकला हूं परंतु दो-तीन घंटों के पश्चात, वही व्यक्ति, उसी मार्ग पर चलता हुआ जब कार्यालय जा रहा होता है तो वह यह नहीं कह सकता कि वह सैर करने जा रहा है। यहां दोनों का अंतर स्पष्ट है। सैर पर जाना मनोरंजन है, जबकि कार्यालय जाना जीविकोपार्जन। दोनों के उद्देश्य भिन्न हैं।

अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो लोग दिनभर पहाड़ों पर उतरते-चढ़ते रहते हैं उन्हें ट्रैकर्स नहीं कहा जा सकता। हमारे देश में कितने ही ऐसे

क्षेत्र हैं जहां सड़कों, संचार के माध्यमों एवं बिजली इत्यादि की सुविधाओं का नितांत अभाव है। अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए इन लोगों को दूरस्थ इलाकों से मुख्य बस्तियों तक मीलों पैदल चलना पड़ता है। इसी प्रकार व्यापार की दृष्टि से की गयी यात्राएं भी ट्रैकिंग की श्रेणी में नहीं गिनी जा सकतीं। यहां पर ट्रैकिंग से हमारा अभिप्राय उस खेल से है जो भावी पर्वतारोहियों के निर्माण के लिए आवश्यक प्रशिक्षण और उनके मनोरंजन का साधन है।

ट्रैकिंग से हमारा अभिप्राय केवल पर्वतों पर घूमना ही नहीं है। मैदानी क्षेत्रों, जंगलों, बीहड़ों और समुद्र तटों के अतिरिक्त नदियों एवं झीलों के किनारे-किनारे भी ट्रैकिंग की जा सकती है। चूंकि भारत में ट्रैकिंग मुख्य रूप से पर्वतीय क्षेत्रों, वह भी हिमालय में की जाती है, इसलिए ट्रैकिंग का अभिप्राय पहाड़ों पर घूमना मान लिया जाता है जबकि यह सही नहीं है। भारत का संपूर्ण उत्तरी सीमांत, कश्मीर से लेकर सिक्किम तक, विभिन्न ऊंचाइयों की सुरम्य एवं सुहानी पर्वतश्रेणियों से बना है और इन पर्वतों के आकर्षक शिखर एवं गहरी घाटियां सैलानियों के लिए आदर्श ट्रैकिंग की परिस्थितियां प्रस्तुत करती हैं। इन पर्वतशृंखलाओं में कम ऊंचाई वाले स्थानों पर घास के सुंदर मैदान हैं जिनमें हजारों प्रकार के जंगली फूल, पेड़ और पौधे अपनी रंग-बिरंगी छटा बिखेरते हैं। जंगलों में तरह-तरह के वृक्ष अपनी



हरियाली से सैलानी का मन मोह लेते हैं। कलकल बहती हुई बर्फीले पानी की नदियां सैलानियों को एक नयी दुनिया में ले जाती हैं। इन भू-प्रदेशों में रहने वाले आदिवासी अपने-अपने कबीलों में पुरानी परंपराओं तथा रीति-रिवाजों को अपनाए हुए बहुत सादगी एवं शांति से अपना जीवनयापन करते हैं। आकर्षक कलाकृतियों वाले मंदिर और मठ भारत के विश्व गुरु होने की कहानी कहते हैं। इन मंदिरों एवं मठों में प्राचीन एवं दुर्लभ धर्म ग्रंथों का भंडार संग्रहित है।

हिमालय की ऊंची पर्वतश्रेणियों पर सुदृढ़ चट्टानें, तेज बहाव से बहती नदियां, चारों ओर बर्फ की सफेद चादर से ढंकी गगनचुंबी चोटियां, स्वच्छ एवं साफ नीला आकाश, झीलों का दर्पण के समान साफ पानी, गहरी घाटियां, कठिन दर्रे और यहां-वहां क्रीड़ा करते वन्य प्राणी, प्राकृतिक दृश्यों की मनोहारी छटा सैलानी को स्वर्गिक आनंद की अनुभूति करवाते हैं। यही कारण है कि देश-विदेश से प्रतिवर्ष हजारों सैलानी हिमालय के आकर्षण में बंधे ट्रैकिंग के लिए यहां खिंचे चले आते हैं। इसी प्रकार मैदानी इलाकों में नदियों के किनारे-किनारे, झीलों के चारों ओर तथा समुद्र तट के साथ-साथ ट्रैकिंग करने का अपना ही आनंद है।

इन समस्त क्षेत्रों में हजारों मार्ग ऐसे हैं जिन पर ट्रैकिंग की जा सकती है। ट्रैकर्स अपनी रुचि, क्षमता एवं समय के अनुसार इन मार्गों (ट्रैक्स) का चुनाव कर सकते हैं। हर प्रकार की रुचि वाले व्यक्ति के लिए मार्गों का अभाव नहीं है। ऐसे कठिन मार्ग भी हैं जहां पहुंचने में पर्वतारोहण की कुछ तकनीकों का सहारा लेना पड़ता है। कुछ मार्गों पर केवल खच्चरों की सहायता से ही यात्रा करना संभव है। कुछ रास्तों पर रात्रि विश्राम के लिए विश्राम-गृह उपलब्ध होते हैं तो कुछ पर कैंप लगाकर सोना होता है। कुछ मार्ग ऐसे भी हैं जहां स्थानीय लोगों की सहायता एवं सहयोग से यात्रा करना ही अच्छा रहता है। जो ट्रैकर्स आबादी वाले क्षेत्रों में से गुजरने वाले मार्गों पर यात्रा करते हैं वे स्कूलों के भवनों, पंचायतघरों तथा अस्पतालों में रात्रि विश्राम की व्यवस्था का प्रयास कर सकते हैं। ऐसे स्थानों पर स्थानीय लोग भी रहने और खाने का प्रबंध सस्ते दामों पर कर देते हैं। ऐसे भ्रमणकारियों को अपने साथ अधिक मात्रा में राशन ले जाना भी जरूरी नहीं होता क्योंकि स्थान-स्थान पर खाने-पीने की सामग्री मिल जाती है।

जो ट्रैकर्स आबादी रेखा से ऊपर यात्रा करना चाहते हैं उनके लिए खाद्य सामग्री साथ ले जाना आवश्यक होता है। खाद्य साम्रगी के साथ ही खाना पकाने के बर्तन और तंबू ले जाना भी अनिवार्य है। यह सारी व्यवस्था उन्हें वहीं से करनी पड़ती है जहां से वे यात्रा शुरू करते हैं। ऐसे मार्गों पर भ्रमणकारी को कुलियों (पोर्टर्स) एवं खच्चरों के अतिरिक्त स्वयं भी बोझ उठाने के लिए अभ्यस्त होना चाहिए। यात्रा प्रारंभ करने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि जिस मार्ग पर वे जाना चाहते हैं वहां कोई प्रतिबंधित क्षेत्र तो नहीं है। कुछ मार्गों के लिए पहले अनुमति लेना

अनिवार्य होता है। विदेशी ट्रैकर्स को इस ओर अधिक सावधानी बरतनी चाहिए। यात्रा आरंभ करने से पूर्व यदि उस मार्ग की पूरी जानकारी एकत्र कर ली जाये तो रास्ते में बहुत आसानी होती है।

ऊंचाई के अनुरूप ट्रैकिंग को दो वर्गों में बांटा जा सकता है। कम ऊंचाई और अधिक ऊंचाई के क्षेत्रों में भ्रमण। कम ऊंचाई वाले मार्ग सामान्यतः ऐसे क्षेत्रों से गुजरते हैं जहां बर्फ नहीं पड़ती। ऊंचे एवं कठिन दर्रे भी पार नहीं करने पड़ते। ऐसे मार्गों पर यात्रा करने के लिए न तो किसी विशेष तकनीक की आवश्यकता होती है और न ही विशेष प्रकार के उपकरणों की। ऐसी यात्राएं 4000 मीटर की ऊंचाई से नीची ही होती हैं। इन मार्गों पर रात्रि विश्राम गांवों के स्कूल भवनों, पंचायतघरों अथवा विश्राम-गृहों में किया जा सकता है। यदि ट्रैकिंग पार्टी के पास तंबू इत्यादि हों तो कैंप भी लगाया जा सकता है। प्रारंभ में व्यक्ति को इसी प्रकार की ट्रैकिंग करनी चाहिए। इन क्षेत्रों में यदि ऐसी यात्राओं का अनुभव प्राप्त कर लिया जाये तो बाद की कठिन यात्राओं में काफी आसानी होती है। ऐसे क्षेत्र की यात्रा केवल पैदल चलकर ही करनी चाहिए। हां, किसी कठिन परिस्थिति में व्यक्ति यातायात के साधनों का उपयोग भी कर सकता है।

ऊंचे मार्गों पर केवल अनुभवी लोगों को ही ट्रैकिंग के लिए जाना चाहिए। कठिन तथा दूसरों के सुझाये गये मार्गों पर वही लोग आनंद उठा सकते हैं जो स्वयं जाने का जोखिम उठा सकें, जो जहां मिला और जैसा मिला खाकर संतोष कर सकें, जहां भी रात्रि पड़े वहीं सो सकें तथा लंबी दूरी भी पैदल तय कर सकें। ट्रैकिंग मार्ग पर भी जो लोग सुख-सुविधाएं चाहते हों, उन्हें चाहिए कि मार्ग की विस्तृत जानकारी प्राप्त करके अपने पास रख लें। संभव हो तो मार्ग में जहां उन्हें ठहरना है वहां स्थान एवं भोजन की व्यवस्था पहले से ही कर लें। कुलियों और खच्चरों की उपलब्धता के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करके उनका प्रबंध कर लें। अपने आगमन की तारीख की पूरी जानकारी उन्हें दे दें। प्रतिदिन कितनी दूरी तय करनी है, और कहां से कितनी खाद्य सामग्री खरीदनी है, इस विषय में भी पूरा ब्यौरा बना लें। ऐसे लोगों को चाहिए कि पूरी योजना बनाने के बाद ही यात्रा प्रारंभ करें और मार्ग में अचानक आने वाली किसी परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए एक-दो दिन का अतिरिक्त समय निकालते हुए यात्रा पर निकलें।

जो लोग अधिक ऊंचाई वाले मार्गों का चुनाव करते हैं उन्हें कठिन पर्वत मार्गों पर ऊंचे दर्रे, बर्फ से लदी ढलानें, हिमनद और अन्य कठिन भू-प्रदेश पार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। ऐसे ट्रैकर्स को अपने साथ भारी गर्म कपड़े, कैंप लगाने का अच्छा और पर्याप्त सामान, बढ़िया उपकरण अर्थात आईस एक्स, स्लीपिंग बैग, जूते और रस्सी इत्यादि ले जाने जरूरी हैं। ऐसे मार्गों पर अनुभवी ट्रैकर्स को ही जाना चाहिए। ऐसे अभियान में दल के सदस्यों को सभी सामान अपने साथ ही

ले जाना होता है, क्योंकि रास्ते में कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। खाने-पीने के सामान के अतिरिक्त इन भू-प्रदेशों में आक्सीजन की भी कमी होती है। यदि अभियान दल अपने साथ कुछ आक्सीजन सिलेंडर रखें तो अच्छा रहता है।

ट्रैकिंग करने का उद्देश्य मनोरंजन तो स्पष्ट है, फिर भी व्यक्ति मनोरंजन के साथ अपनी रुचि के ऐसे अन्य कार्य भी कर सकता है जिनसे उसे अधिक खुशी मिलती है। भारत में मुख्य रूप से लोग पर्वतों की कठिन यात्राएं तीर्थयात्री के रूप में शताब्दियों से करते आये हैं।

प्राकृतिक छटा का आनंद उठाने वाले, असीम आकाश में पक्षियों की स्वतंत्र उड़ान से खुश होने वाले अथवा कलियों को अपनी डाली पर खिलते हुए देखने वाले प्रकृति-प्रेमी हजारों की संख्या में प्रतिवर्ष दलबद्ध होकर हिमालय और भारत के विभिन्न भागों की यात्राएं करते हैं। इन रमणीय स्थलों का सौंदर्य सैलानी को अपने आकर्षण में बांधे रखता है। पर्वत शिखरों को चूमती हुई सूर्य की पहली स्वर्णिम किरण, पहाड़ी नदियों का रहस्यमय कोलाहल, आकाश में बादलों के निरंतर बनते-बिगड़ते रूप, तारों से भरा नीला आकाश और सूर्यास्त का लुभावना रूप भ्रमणकारी के मन को मोह लेता है और व्यक्ति बार-बार इस प्राकृतिक छटा का रसपान करने के लिए व्याकुल हो उठता है। प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद गूंगे के गुड़ जैसा है जिसका वर्णन शब्दों में किया ही नहीं जा सकता। उसे केवल अनुभूत ही किया जा सकता है। अनेक कवियों ने प्राकृतिक सौंदर्य का विभिन्न दृष्टिकोणों से सजीव और संपूर्ण चित्रण किया है फिर भी प्रत्येक व्यक्ति को इस सौंदर्य की अनुभूति अलग-अलग होती है। उसे लगता है कि उस वर्णन में कुछ न कुछ कमी रह ही गयी है।

इन रमणीय स्थलों पर ट्रैकिंग के लिए जाते समय यदि ट्रैकर्स अपने साथ दूरबीन, पक्षियों एवं फूलों के संबंध में जानकारी देने वाली पुस्तक और कैमरा ले जायें तो आनंद दोगुना हो सकता है। फोटोग्राफर विभिन्न कोणों से प्रकृति के चित्र पूरी यात्रा में खींच सकता है। हर बार उसे प्रकृति के नये-नये रूपों के दर्शन होते हैं। चित्रकार की कल्पनाओं में कितने ही रंग बिखरने लगते हैं और जब ये रंग आकार लेते हैं तो विश्व को आश्चर्य में डाल देने वाली कला का सृजन होता है।

शहरी जीवन के कोलाहल एवं भागदौड़ भरे प्रदूषित जीवन से मुक्ति पाने के लिए भी अनेक लोग किसी एकांत मार्ग पर ट्रैकिंग के लिए निकल पड़ते हैं। जब कोई व्यक्ति शहर के शोर से दूर किसी पर्वत के शांत एवं एकाकी रास्ते पर टहलने निकलता है; किसी नदी के किनारे बालू पर चलता हुआ उसके बहाव को देखता है; किसी एकांत स्थान पर शांत वातावरण में बने छोटे से विश्राम-गृह में रात्रि व्यतीत करता है तो उसे एक ऐसा नया अनुभव होता है जो कभी-कभी उसके पूरे जीवन में परिवर्तन लाने वाला साबित हो सकता है। ट्रैकिंग पर घर से बाहर निकलकर प्रकृति की गोद में व्यक्ति अपने-आप में एक नयी ताजगी और उमंग का अनुभव करता है। जिन लोगों को बहुत

अधिक चलना रुचिकर नहीं लगता वे भी अपने कैंप में बैठे-बैठे अथवा कैंप के आसपास आराम से टहलकर बिना थके हुए प्राकृतिक आनंद प्राप्त कर सकते हैं। कैंप के शांत वातावरण में जब व्यक्ति आसमान में बहुत ऊंचाई पर पक्षियों को उड़ते हुए देखता है, अथवा कोयल की कूक सुनता है तो वह भाव-विभोर हो उठता है। जंगल में चारों ओर फैले सैकड़ों प्रकार के रंग-बिरंगे फूल, फूलों पर मंडराते भंवरे, पराग एकत्र करती तितलियां, दूर तक हरियाली की बिछी चादर, श्वेत परिधान पहने ऊंचे पर्वत शिखर तथा कलकल करते झरने किस सैलानी का मन नहीं मोह लेंगे !

प्राचीन सभ्यता, रीति-रिवाजों और परंपराओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हो रहा है। शहरों के कृत्रिम जीवन से भागकर लोग किसी शांत और एकांत स्थान पर चले जाना चाहते हैं। वनों एवं पर्वतों में रहने वाले छोटे-छोटे कबीलों के सीधे-सादे रहन-सहन के तरीके उन्हें लुभा रहे हैं। कबीलों में रहने वाले आदिवासी, उनकी वेषभूषा एवं खान-पान, बोलियां, रीति-रिवाज, सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं का अध्ययन करने के लिए अधिक से अधिक लोग ट्रैकिंग पर निकलते हैं। इन लोगों के जीवन पर किये गये अध्ययनों ने कई रहस्यों पर से पर्दा उठाया है। अतीत एवं वर्तमान के साथ ऐसे लोगों के संबंधों के विषय में जानना भी रुचिकर है। इन बीहड़ों, पर्वतों और वन प्रदेशों में कितने ही ऐसे समुदाय रहते हैं जो आधुनिक सभ्यता से बिलकुल अपरिचित हैं। वे लोग अपने आप में प्रसन्न हैं, जैसे उन्हें दूसरे लोगों से कुछ लेना-देना ही नहीं। वे लोग न तो अपनी परंपराओं को त्यागने के लिए तैयार हैं और न ही रहन-सहन के ढंग को। जिन्हें हम अंधविश्वास कहते हैं, वे उनके लिए आस्था के ऐसे आधार हैं जिनसे वे थोड़ा भी दूर होना नहीं चाहते। उनके जीवन को देखना, उनके धर्म और कला को समझना तथा रीति-रिवाजों के विषय में जानकारी प्राप्त करना अपने आप में ट्रैकिंग का उद्देश्य हो सकता है।

अपनी कुछ ऐसी ही यात्राओं के दौरान लेखक को ऐसे लोगों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ जो लोग बस अथवा सड़क तक के विषय में कुछ नहीं जानते। रेलगाड़ी का उन्होंने नाम तक नहीं सुना और विज्ञान के आविष्कार उन्हें स्वप्नलोक की बातें लगती हैं। हिमाचल प्रदेश के रोहतांग दर्रे के पार के क्षेत्रों के कई निवासी आज भी यह मानते हैं कि कुल्लू घाटी के पश्चात आसमान और जमीन आपस में मिल जाते हैं, इसलिए पृथ्वी का अंतिम छोर कुल्लू ही है। हरियाणा के कुछ ग्रामीण ऐसे भी मिले जिन्होंने कभी दिल्ली तक की यात्रा नहीं की। हिमाचल में मलाना गांव के निवासी आज भी अपने आप को सबसे अलग-थलग रखे हुए हैं और अपना अलग लोकतंत्र चलाते हैं।

मंदिरों, धार्मिक श्रद्धा केंद्रों और मठों का निर्माण, उनमें रखे हजारों ग्रंथ, इनकी स्थापत्यकला, मूर्तिकला और चित्रकला भी ऐसे विषय हैं जो कोई ट्रैकर अपने अध्ययन के लिए चुन सकता है। इन दूर-दराज के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के

जन्म और मृत्यु से जुड़े रिवाज, विवाह के प्रति उनका खुला दृष्टिकोण तथा उनका पारिवारिक जीवन आधुनिक सभ्यता में पले शहरियों के लिए एक अनोखा और हैरान कर देने वाला अनुभव हो सकता है। अत्याधुनिक संपन्न वर्ग के लोगों के जीवन में जो खुलापन होता है वैसा इन कबीलों में सदियों से चला आ रहा है। भारतीय शहरों में जहां यह खुलापन आलोचना का कारण बनता है वहां कबीलों में इसे सहज रूप से स्वीकारा जाता है क्योंकि इसमें कोई बनावट अथवा नकलीपन नहीं होता। यह उनका सहज स्वाभाविक जीवन होता है। ऐसे कबीलों के लोग खुशी और गमी दोनों ही मौकों पर मदिरापान करते हैं। विवाह के विषय में इनकी अपनी अवधारणाएं हैं। अनेक कबीलों में परिवार के सभी भाई एक ही महिला से विवाह करते हैं। उनका मत है कि इस प्रकार भूमि के बटवारे को रोकना संभव होता है। बहुपत्नी प्रथा भी अनेक स्थानों पर प्रचलित है। तलाक लेने में किसी प्रकार की असुविधा न होने के कारण यहां चार-पांच बार विवाह करना कोई विचित्र बात नहीं है। औरतों के लिए भी सिगरेट-शराब इत्यादि पीना आम बात है और समाज इसे बुरा भी नहीं मानता।

ट्रैकिंग उन लोगों के लिए असीम संभावनाओं वाला खेल है जो नित नये-नये जोखिमों का सामना करना चाहते हैं, जो किसी भी प्रकार की बाधा को नहीं मानते, जिनमें कुछ कर गुजरने की ललक है। ऐसा माना जाता है कि जवानी और जोखिम सदा-सदा के साथी हैं। इसी कारण जवानी का संबंध उम्र से नहीं बल्कि जोखिम उठाने की ललक से माना गया है। जिस समाज के लोग खतरों से खेलने के लिए जितने उतावले होंगे वह समाज उतना ही युवा माना जायेगा। ट्रैकिंग और पर्वतारोहण में जिस प्रकार के जोखिम की जरूरत होती है उतनी अन्य किसी भी खेल में नहीं होती। इसीलिए यह खेल व्यक्ति को सदा युवा बनाये रखता है।

जोखिम उठाने के मानदंड को सामने रखा जाये तो ट्रैकिंग इस दृष्टि से सर्वोत्तम खेल है। उद्देश्य की पवित्रता और ध्येय प्राप्ति की निष्ठा इस खेल के प्रमुख अंग हैं। इस खेल में एक खिलाड़ी की दूसरे के साथ कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती, इसलिए पूरे खेल में ईर्ष्या का पूरी तरह से अभाव रहता है। पूरा खेल खिलाड़ी को अपने-आप में मस्त रहकर स्वयं ही खेलना पड़ता है। अपने खेल को देखने वाला दर्शक भी वह खुद ही होता है। खेल के मैदान का दूसरा छोर तक दिखाई नहीं देता। उसकी हार पर न तो कोई आलोचना करने वाला होता है और न ही जीत पर प्रशंसा। उत्साह बढ़ाने के लिए अथवा ताली बजाने के लिए भी दूर-दूर तक कोई नहीं होता। खिलाड़ी स्वयं ही रैफरी होता है और अपनी हर चाल को वह खुद ही अनुशासित करता है। चूंकि छोटी सी गलती की भी बहुत बड़ी सजा मिल सकती है, इसलिए किसी प्रकार की लापरवाही की गुंजाइश ही नहीं होती। हर कदम पूरी सावधानी से उठाना होता है।

ट्रैकिंग में प्रवीण हो जाने पर अनुशासन, आत्मसंयम और नेतृत्व के गुण स्वतः ही व्यक्ति में आ जाते हैं जो उसे आम लोगों से अलग करते हैं। शायद इसी कारण ट्रैकर कभी बूढ़ा नहीं होता। अधिक आयु हो जाने पर भी वह मन से हमेशा जवान बना रहता है। किसी भी खतरे का सामना करने के लिए उसमें सदैव साहस बना रहता है। पर्वतारोहण से वह यह शिक्षा पाता है कि तूफानों से घिरे होने के बावजूद, जब पांव किसी गहरी घाटी के किनारे पर लड़खड़ा रहे हों तब भी शिखर पर पहुंचने का ध्येय सामने होना चाहिए। सतर्कता, निष्ठा और एकाग्रता के जो गुण व्यक्ति ट्रैकिंग अथवा पर्वतारोहण के माध्यम से प्राप्त करता है उनसे न केवल उसकी शारीरिक शक्ति में विकास होता है वरन नैतिकता और आध्यात्मिकता के गुण भी उसमें सहज रूप से आ जाते हैं। वह आत्मविश्वास से भर उठता है।

जिस देश के नागरिक शक्तिशाली होंगे वह देश भी शक्तिवान होगा। इस धारणा को पश्चिमी देशों ने पूरी तरह से अपनाया है। वहां के लोगों के लिए ट्रैकिंग आम जीवन का हिस्सा बन गयी है। वहां के लोग शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति विशेष रूप से जागरूक हैं। सप्ताह के अंत में अधिकतर लोग शहरी चहल-पहल से दूर किसी पर्वत पर, नदी के किनारे अथवा जंगल में जाकर कैंप लगाते हैं तथा आसपास के दुर्गम मार्गों की यात्रा करते हैं। अपनी छुट्टियां किसी शांत प्राकृतिक वातावरण में व्यतीत करके ताजगी प्राप्त करते हैं। जो लोग अधिक समय एवं धन व्यय कर सकते हैं वे अन्य देशों विशेष रूप से भारत, पाकिस्तान और नेपाल के हिमालय क्षेत्र की यात्राओं पर आते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि इस प्रकार शक्ति का संचय करके नये उत्साह के साथ वे अपने काम में जुट सकते हैं। भारत में खेल भावना को सामने रखकर ट्रैकिंग करना उतना लोकप्रिय नहीं है जितना पश्चिमी देशों में। हां, व्यापारिक, धार्मिक कारणों अथवा शिकार इत्यादि करने की दृष्टि से भारतीय बहुत पहले से ही ट्रैकिंग करते आये हैं।

एवरेस्ट विजय के बाद भारतीयों में इस खेल के प्रति झुकाव दिखाई देना शुरू हुआ। पर्वतारोहण में रुचि रखने वालों के लिए भी ट्रैकिंग का अनुभव अनिवार्य कर दिया गया है। स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में ट्रैकिंग क्लबों का गठन बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है। इनके माध्यम से कुछ लोग मिल-जुलकर ट्रैकिंग अभियानों का आयोजन करते हैं। वास्तव में ट्रैकिंग के लिए धन और समय दोनों की आवश्यकता होती है और एक ही वक्त दोनों की उपलब्धता कठिन ही होती है। जिनके पास समय होता है उनके पास धन नहीं होता और जो धनवान होते हैं, उनके पास समय नहीं होता। इस प्रकार इच्छा होते हुए भी व्यक्ति ट्रैकिंग के लिए नहीं निकल पाता। क्लबों की स्थापना के बाद इस विषय में कुछ आसानी हो गयी है। केंद्रीय एवं राज्य सरकारों के अतिरिक्त कुछ निजी कंपनियां भी ट्रैकिंग अभियानों को प्रोत्साहित करने के लिए धन उपलब्ध करवा रही हैं। कम बजट में

ट्रैकिंग करने की प्रवृत्ति भी निरंतर बढ़ रही है।

कुछ लोग ट्रैकिंग को पुलिस बलों अथवा सेना के जवानों का खेल समझते हैं जबकि वास्तविकता यह नहीं है। भारत में यह खेल इसलिए उपेक्षित रहा क्योंकि हम शारीरिक स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान नहीं देते। ट्रैकिंग तो ऐसा खेल है जिसे बुद्धिजीवी, कलाकार और व्यवसायी भी उसी प्रकार खेल सकते हैं, जिस प्रकार पुलिस बलों एवं सेना के जवान। ट्रैकिंग तो मात्र मनोरंजन और आनंद के लिए भ्रमण करना है और इसे कोई भी कर सकता है।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विशेष रूप से हिमालय में ट्रैकिंग के अनेकानेक स्थल हैं। यहां हर प्रकार के लोग ट्रैकिंग कर सकते हैं चाहे वे ट्रैकिंग शुरू करने वाले हों अथवा अनुभवी ट्रैकर। केवल मनोरंजन के लिए या किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए, युवा हो अथवा प्रौढ़, जोखिमभरी यात्रा करने के लिए अथवा प्रकृति की गोद में आराम करने के लिए, ट्रैकिंग व्यक्ति को प्रकृति के समीप लाती है। ट्रैकर अपने देश को दूसरों की अपेक्षा अधिक समझने लगता है। उसे पग-पग पर अनेकता में एकता के दर्शन होते हैं, जो कि भारतीय जीवन पद्धति का मूल है। संक्षेप में, ट्रैकिंग फुरसत का वक्त बिताने का बढ़िया तरीका है।

ट्रैकिंग पर जाने की तैयारियां उपरोक्त उद्देश्यों को सामने रखकर ही की जा सकती हैं। व्यक्ति अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समय और धन तथा आवश्यक सामग्री का प्रबंध करके यात्रा पर निकल सकता है। इन्हीं उद्देश्यों को सामने रखकर ट्रैकिंग पद्धति का चुनाव करना होता है और उसी के अनुरूप उसे तैयारी भी करनी होती है। ट्रैकिंग करने की अलग-अलग पद्धतियां हैं। अधिकतर विदेशी ट्रैकर यूरोपीय ढंग से ही भारत और नेपाल में ट्रैकिंग करना चाहते हैं जबकि यहां यह व्यावहारिक नहीं है। यूरोपीय भू-प्रदेशों, वहां के साधन-सुविधाओं में और भारत व नेपाल के साधन-सुविधाओं में बहुत अंतर है। दोनों प्रकार के क्षेत्रों की अलग-अलग विशेषताएं हैं। उन्हें ध्यान में रखकर ही पद्धति का चुनाव किया जाये तो अच्छा रहता है। ट्रैकर निम्नलिखित पद्धतियों में से अपने स्वभाव, उद्देश्य, समय और धन को ध्यान में रखते हुए किसी का भी चुनाव कर सकता है। सुविधानुसार इनका मिश्रण भी किया जा सकता है।

**स्वतंत्र विचरण :** इसे 'बैक पैकिंग' के नाम से जाना जाता है। इस पद्धति से ट्रैकर हर प्रकार से बंधन-मुक्त होकर, मनचाहे ढंग से स्वतंत्र भ्रमण करता है। हर आवश्यक वस्तु उसकी पीठ पर लदी रहती है। उसे अपना मार्ग स्वयं ही चुनना होता है। जहां स्थान मिले और उसकी इच्छा हो वह वहां डेरा डाल देता है। जब चाहे तब चल पड़ता है। जो मिल जाये खा लेता है। इस प्रकार की पद्धति आनंददायक होती है परंतु इसमें कठिनाइयां भी अधिक हैं। भारतीय भू-प्रदेशों के लिए इसे व्यवहारिक

नहीं माना जाता। यहां पर अभी ट्रैकिंग का पर्याप्त विकास नहीं हुआ है। न तो नियमित मार्ग हैं और न रास्तों पर आवश्यक सुविधाएं। ठहरने के स्थान भी न के बराबर हैं; और जो हैं वे अच्छे नहीं हैं। रास्तों पर पीने के पानी तक की व्यवस्था नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर ईंधन तक नहीं मिलता। मार्गों के नक्शे भी नहीं हैं। भाषा की कठिनाई के कारण ट्रैकर का मंजिल तक पहुंचना कठिन हो जाता है। दुर्घटना होने की स्थिति में भाषा एक बड़ी बाधा के रूप में सामने आती है। ऐसे भू-प्रदेशों में न केवल चिकित्सालयों का अभाव है बल्कि जरूरत पड़ने पर बचाव की सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं हैं। इस पद्धति में व्यक्ति हर बात के लिए खुद पर निर्भर रहता है, इसलिए जरूरत पड़ने पर उसे किसी प्रकार की सहायता मिलने में कठिनाई ही होती है।

**स्थान के अनुरूप :** इस पद्धति को 'लिविंग आफ द लैंड' कहा जाता है। इस पद्धति में व्यक्ति एक अथवा आवश्यकतानुसार अधिक कुली साथ लेकर यात्रा पर निकलता है। मार्ग के लिए उसे बहुत कुछ इन्हीं कुलियों पर निर्भर करना पड़ता है। रास्ते में जो भी भोजन उपलब्ध हो उसे उसी पर संतोष करना होता है। इस प्रकार यात्रा करने पर यह भय सदा बना रहता है कि कहीं मार्ग में अच्छे भोजन और साफ पानी का प्रबंध न होने के कारण, पूरी यात्रा का आनंद ही समाप्त न हो जाये। अच्छा भोजन और स्वच्छ पानी न मिलने पर व्यक्ति का स्वास्थ्य खराब हो सकता है। ऐसी पद्धति अपनाने वालों को ऐसे यात्रा-मार्गों का चुनाव करना चाहिए जहां न केवल अच्छे खाने-पीने का प्रबंध हो, बल्कि ठहरने की सुविधा भी मिल सके।

इस प्रणाली में भी कई अड़चनें आतीं हैं, इसलिए विदेशियों के लिए यह बहुत अच्छी नहीं कहीं जा सकती। भाषा की कठिनाई के कारण कई प्रकार की गलतफहमियां पैदा हो सकती हैं जो ट्रैकर का मन खट्टा कर सकती हैं। किसी गांव में किसी के घर पर ठहरना ट्रैकर के लिए असुविधाजनक हो सकता है। अभी इन दूरस्थ क्षेत्रों के गांवों में सुविधाओं का नितांत अभाव है। किसी छोटे से कच्चे मकान के धुएं भरे कमरे और एकदम विभिन्न प्रकार के वातावरण में व्यक्ति को ठीक से नींद नहीं आती, जो उसके स्वास्थ्य पर विपरीत असर डालती है। चूंकि व्यक्ति को प्रातः ही दूसरे पड़ाव के लिए यात्रा करनी होती है, इसलिए रात में अच्छी नींद आने से अगले दिन की यात्रा आरामदायक रहती है।

इस पद्धति में लोगों के रीति-रिवाज और खान-पान तथा रहन-सहन के तरीकों के कारण भी अड़चनें आती हैं। लेकिन चूंकि यूरोप के लोग ऐसे क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के जीवन के संबंध में अधिक से अधिक जानना चाहते हैं, इसलिए इन दिनों यूरोपवासियों के मध्य यह पद्धति लोकप्रिय हो रही है।

**स्वयं करना :** 'डू इट यूअर सेल्फ' पद्धति के अंतर्गत ट्रैकर न केवल हर प्रकार का प्रबंध खुद करता है, बल्कि सभी तरह की जानकारी भी अपने-आप प्राप्त करता है। अपनी सहायता के लिए वह किसी स्थानीय गाईड को साथ लेता है जो उसकी स्थानीय कठिनाइयों को सुलझाने में सहायता करता है। जो लोग कम धन व्यय करते हुए ट्रैकिंग करना चाहते हैं उनके लिए यह पद्धति अच्छी है। इस प्रकार यात्रा करने में कई बार गाईड एवं कुली समस्याएं भी पैदा कर देते हैं। इसलिए कुली एवं गाईड का चुनाव करते समय अतिरिक्त सावधानी बरतनी जरूरी है। इस बात की पूरी आशंका होती है कि मार्ग में कुली और गाईड ट्रैकर को मूर्ख बनाकर ठगने का प्रयास करें। जरूरी यह है कि यात्रा से पूर्व ही मार्ग और मार्ग में मिल सकने वाली सुविधाओं का पूरा ब्यौरा प्राप्त कर लेना चाहिए। ऐसा प्रबंध भी करना चाहिए कि कुली अथवा गाईड मार्ग में ही ट्रैकर को छोड़कर न लौट आयें।

**संस्था के माध्यम से :** किसी ट्रैकिंग ट्रैवल एजेंसी के माध्यम से यात्रा के प्रबंध करवाना हमेशा उचित होता है। मार्ग में प्रबंध में कोई गड़बड़ी हो अथवा कुली इत्यादि कोई गड़बड़ करें तो एजेंसी के मालिक को पकड़ा जा सकता है। इससे समय की बहुत बचत होती है और यात्रा सुगम और सुखद होती है। अनेक समस्यायों का तो ट्रैकर को पता तक नहीं चलता। यात्रा प्रारंभ होने से पहले ही संस्था यात्री के लिए हर प्रकार की सुविधा जुटा देती है। इन सारे प्रबंधों की जानकारी ट्रैकर को रहती ही है।

इन सभी पद्धतियों में इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि व्यक्ति जिस भी क्षेत्र में यात्रा करे वहां के संबंधित अधिकारियों को अपने विषय में सूचना देता रहे। कुली और गाईड का पूरा-पूरा विवरण भी ट्रैकर को अपने पास रखना चाहिए और उसकी जानकारी भी संबंधित व्यक्तियों को देते रहना उचित होता है। इससे संकट के समय सहायता पहुंचने में बहुत आसानी होती है।

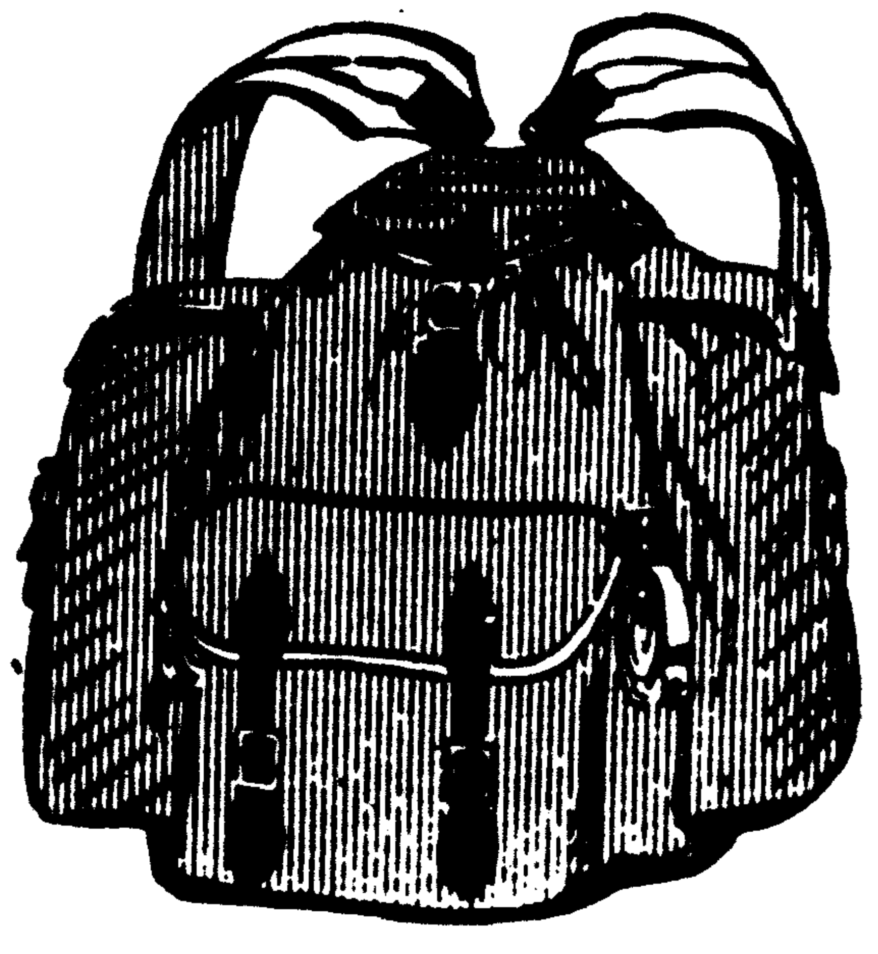
# 4

# उपकरण एवं वस्त्र

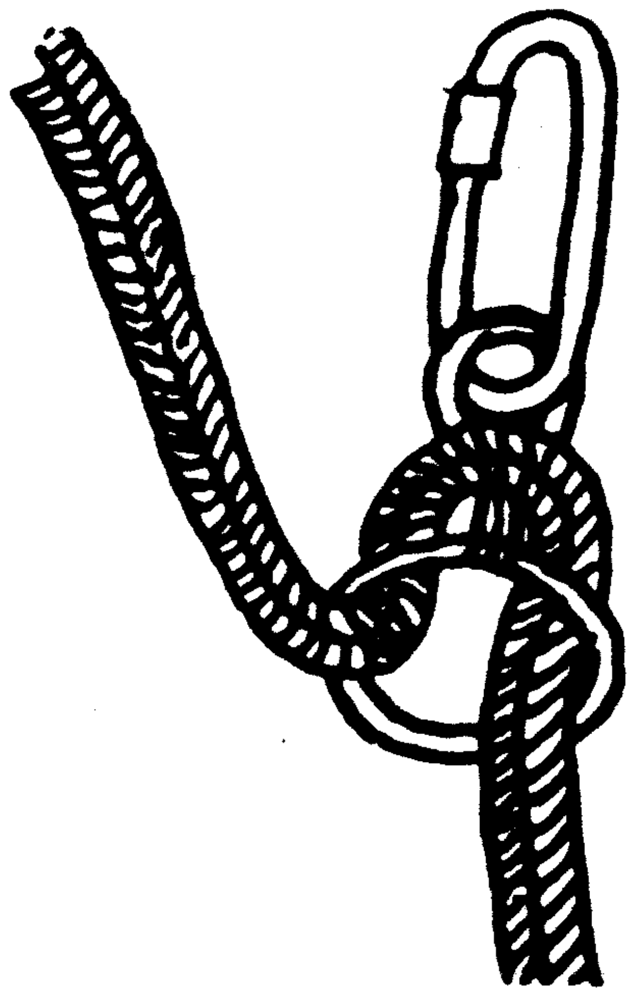
भ्रमण करने वाले व्यक्ति को कहीं जाने के लिए ऐसे वस्त्रों की आवश्यकता होती है जो मौसम के अनुरूप हों। यदि पर्वतों पर ट्रैकिंग के लिए जाना हो तो गर्म कपड़े और वर्षा से रक्षा के लिए बरसाती अथवा छाता इत्यादि साथ रखना अच्छा रहता है। ट्रैकिंग में लगभग उन्हीं वस्तुओं की आवश्यकता होती है जो हम प्रतिदिन की दिनचर्या में प्रयोग में लाते हैं। हां, व्यक्ति अपनी रुचि और ट्रैकिंग के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए आवश्यक उपकरण एवं वस्त्र साथ ले जा सकता है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि ट्रैकिंग पर जाते समय ऐसी चीजें साथ न ली जायें जो बहुत भारी और फैलाव वाली हों। कपड़े हल्के और मौसम के अनुकूल हों अर्थात जो ट्रैकर की सर्दी, बर्फ, वर्षा और तेज हवाओं से रक्षा कर सकें। वस्त्रों का चुनाव करते समय यात्रा मार्ग की भौगोलिक स्थिति का पूरा अध्ययन करना अच्छा रहता है।

यात्रा मार्ग में कई बार एक ही दिन में व्यक्ति को गर्मी, वर्षा और तूफान का सामना करना पड़ सकता है। इसलिए ऐसे वस्त्रों को साथ ले जाना चाहिए जो अलग-अलग मौसम में उसकी रक्षा करने में सक्षम हों। एक-दो वस्त्र गहरे लाल और पीले रंग के हों तो उचित रहता है क्योंकि इससे व्यक्ति को काफी दूर से भी देखा जा सकता है। किसी संकट अथवा दल से बिछुड़ जाने की स्थिति में ऐसे वस्त्र बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। जो भी उपकरण साथ में ले जायें उनकी क्वालिटी अच्छी होनी चाहिए। निम्न स्तर के उपकरण ट्रैकर का जीवन खतरे में डाल सकते हैं इसलिए इनका चुनाव पूरी सावधानी के साथ करना चाहिए। यद्यपि प्रत्येक ट्रैकर की कुछ खास निजी आवश्यकताएं हो सकती हैं, फिर भी निम्नलिखित वस्तुएं लगभग हर व्यक्ति के लिए आवश्यक होती हैं।

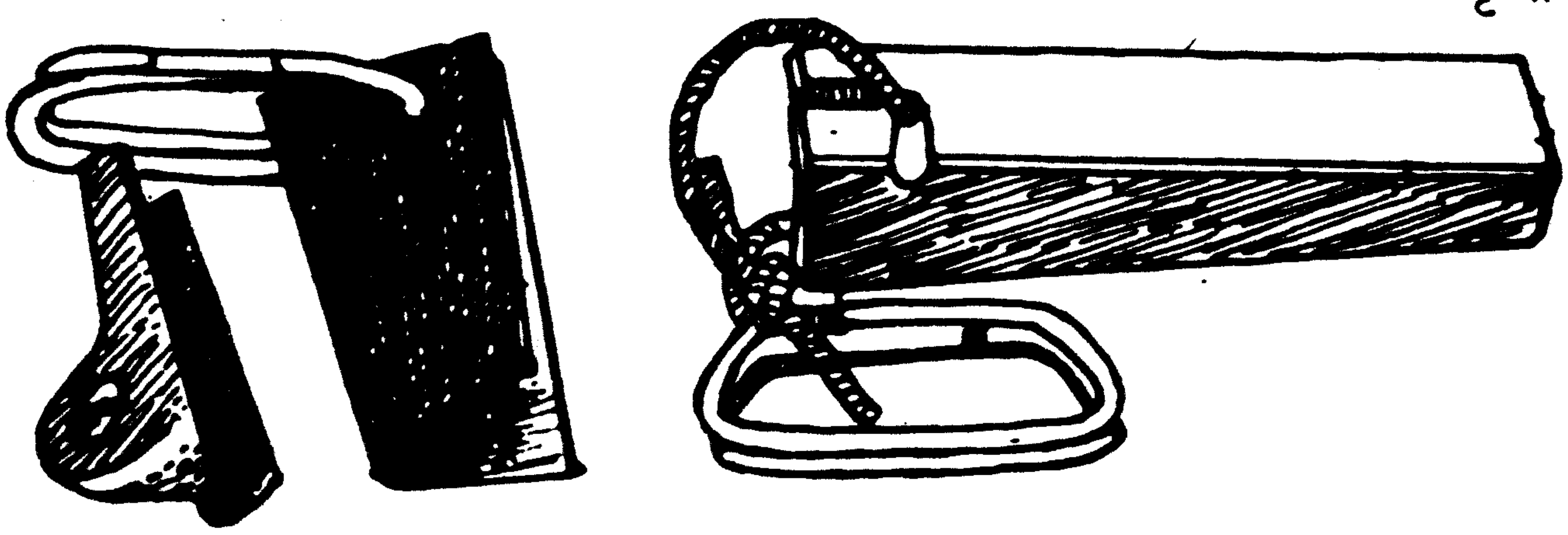
**वस्त्र :** ट्रैकर को हमेशा की तरह यात्रा मार्ग में पैंट, कमीज, बनियान, जांघिया, स्वैटर इत्यादि की जरूरत होती है। इसके अतिरिक्त बरसाती, वायुरोधक कोट अर्थात विंड



रकसैक



आठ की आकृति



वुडनवेजेस

प्रूफ कोट, दस्ताने, जुराबें, टोपी और मंकी कैप इत्यादि साथ ले जाना आवश्यक होता है। जब व्यक्ति पर्यटन के लिए निकलता है तो उसकी इच्छा होती है कि वह यात्रा के लिए नये-नये सुंदर वस्त्रों एवं वस्तुओं का प्रयोग करे। ट्रैकिंग में मामला उल्टा है। ट्रैकिंग करते समय उन वस्त्रों का पूरा-पूरा सदुपयोग किया जा सकता है जिन्हें आमतौर पर बेकार मानकर रख दिया जाता है। ट्रैकिंग का मार्ग ऊबड़-खाबड होता है। झाड़ियां व्यक्ति के कपड़ों के साथ बार-बार उलझती हैं। ऐसी स्थिति में नये कपड़े ले जाना बुद्धिमानी नहीं है। यात्रा मार्ग पर कोई भी व्यक्ति आपके कपड़ों पर टिप्पणी करने वाला नहीं होगा। स्थानीय लोग आमतौर पर इस बात में रुचि नहीं लेते कि आपने कैसे कपड़े पहने हैं और अन्य ट्रैकर तो उसी किश्ती पर सवार होते हैं जिस पर आप हैं। इस अवसर पर पुराने कोट, पैंट, स्वैटर और कमीज आसानी से काम में लाये जा सकते हैं। अच्छा तो यह है कि ऐसे कपड़े ट्रैकिंग पर ले जायें जिन्हें लौटकर फैंका जा सके। पर्वतों पर मौसम तेजी से बदलता है, इसलिए ट्रैकर को ऊनी कपड़े, विंड प्रूफ कोट, दस्ताने और छाता हमेशा अपने साथ रखना चाहिए। भले ही यात्रा प्रारंभ करते समय आसमान में तेज सूरज चमक रहा हो, व्यक्ति को

गरमी लग रही हो तथा मौसम भी गरमी का हो। ट्रैकर को आधी बांहों की कमीज और निकर के स्थान पर पूरी बाहों की कमीज और पैंट पहननी चाहिए। घने जंगलों से गुजरते समय ऐसे कपड़े कंटीली झाडियों और छोटे-मोटे कीट-पतंगों से ट्रैकर की सुरक्षा करते हैं।

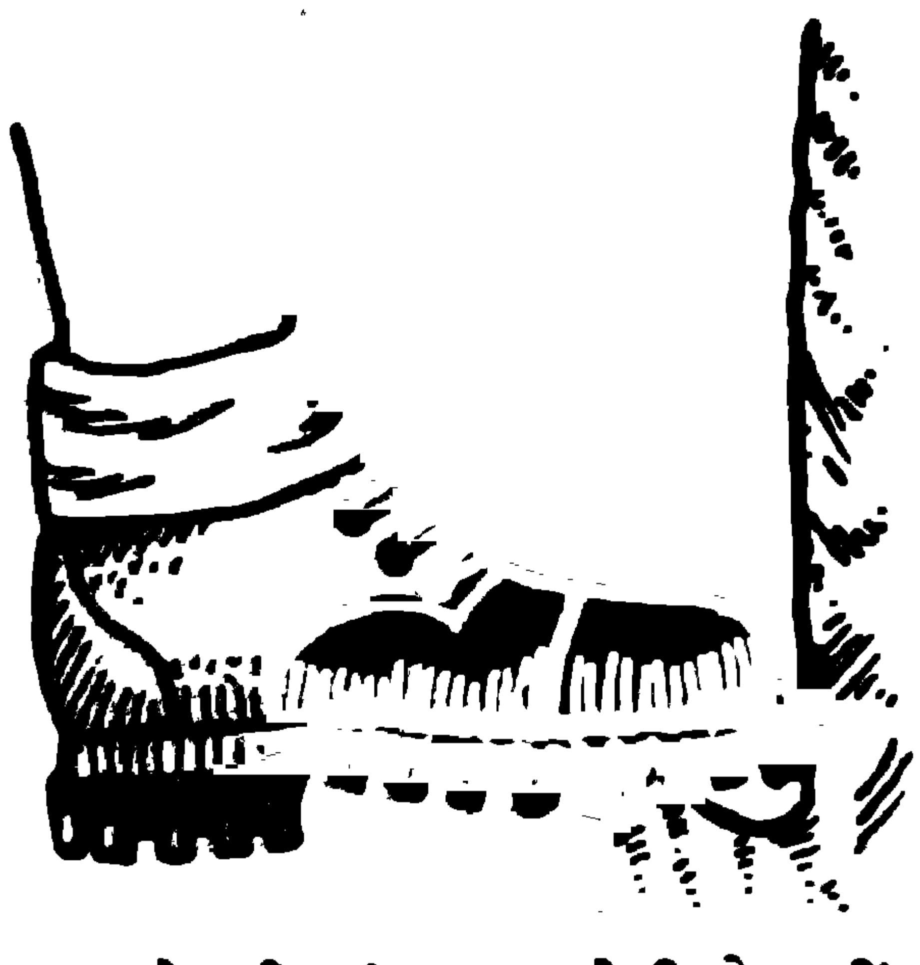
ट्रैकिंग में जल्दी मैले न होने वाले रंगों के कपड़े ले जाने चाहिए ताकि उन्हें निरंतर साफ करते रहने की समस्या से बचा जा सके। जैकेट, स्वैटर अथवा ऊपर पहने जाने वाले अन्य कपड़ों के रंग काफी गहरे होने चाहिए ताकि व्यक्ति दूर से ही पहचाना जा सके। संकट के समय ऐसे रंगीन कपड़े सहायक सिद्ध होते हैं तथा ये जल्दी मैले भी नहीं होते। पर्वतों पर सूर्य की किरणें सिर अथवा गर्दन पर न पड़ें, इसके लिए हैट का प्रयोग करना अच्छा रहता है और सर्दी से बचाव मंकी कैप द्वारा किया जा सकता है। ऊनी दस्तानें तथा जुराबें भी बहुत आवश्यक हैं। आम स्वैटर की बजाय बंद गले का स्वैटर अच्छा रहता है क्योंकि इससे गर्दन को अतिरिक्त सुरक्षा मिलती है। ठंडी हवा से गला बहुत जल्दी खराब होता है। इसलिए यदि बंद गले का स्वैटर न हो तो स्कार्फ प्रयोग में लाया जा सकता है। वायुरोधक कोट को साथ रखना अच्छा रहता है। सर्दी से बचने का सबसे आसान तरीका यह है कि केवल एक मोटे ऊनी वस्त्र के स्थान पर कई पतले गरम कपड़े पहने जायें। एक परत की अपेक्षा कई परतें शरीर को अधिक गरम रखती हैं।

यात्रा में छाता एक उत्तम साथी सिद्ध होता है। यह ट्रैकर की अच्छी तरह से रक्षा करता है—धूप में सूर्य की गरमी से रक्षा करता है तो बरसात में पानी से भी बचाता है। बंद करके छड़ी के रूप में इसका प्रयोग किया जा सकता है और आवश्यकता पड़ने पर एक पर्दे के रूप में भी। शौच इत्यादि के समय यह पर्दा काफी लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

**जूते और जुराबें :** जब तक खिलाड़ी के पैर मजबूत और स्वस्थ नहीं होंगे तब तक वह ट्रैकिंग जैसे खेल का आनंद तो उठा ही नहीं सकता। ट्रैकिंग तो मुख्य रूप से पैरों का ही खेल है। यदि पैरों में किसी प्रकार की भी तकलीफ हो तो ट्रैकिंग पर बिलकुल नहीं जाना चाहिए। पैरों की छोटी-सी समस्या भी आपको पूरी पार्टी के लिए भार बना देगी। आपका ही नहीं दल के अन्य सदस्यों का भी मजा किरकिरा हो जायेगा। एक अच्छे ट्रैकर के लिए यह आवश्यक है कि उसके पांवों में न तो कोई तकलीफ हो और न ही कोई गांठ अथवा घाव इत्यादि।

पैरों की रक्षा के लिए जरूरी है कि ट्रैकर के पास अच्छे मजबूत और आरामदायक जूते हों। जूतों का सावधानीपूर्वक चुनाव करना ट्रैकिंग की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। जूतों का चुनाव करते समय नीचे लिखी बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

ट्रैकिंग के लिए आजकल बाजार में कई प्रकार के जूते मिलते हैं। साधारण



हंटर शू भी अच्छा रहता है। यदि जूते चमड़े के हों तो नये न हों। यदि किसी मजबूरी में नये जूते लेने ही हों तो उन्हें तेल से अच्छी तरह चुपड़कर और कुछ दिन प्रयोग में लाने के बाद ही ट्रैकिंग पर ले जाने के उपयुक्त समझें। नया जूता पैर में काट सकता है और पांव में घाव हो सकता है। आवश्यक है कि ऐसे जूते को तेल में चुपड़कर नरम और आरामदायक बना लें। जूते किसी भी हालत में तंग नहीं होने चाहिए। तंग जूतों से जहां पांव में फफोले पड़ने की संभावना होती है वहीं इससे रक्त के प्रवाह में भी बाधा पड़ती है। अधिक चलने के कारण शुरू-शुरू में कुछ लोगों के पैरों में सूजन आ जाती है। ऐसी हालत में तंग जूते बहुत कष्टदायक हो जाते हैं। वास्तव में जूता इतना ढीला होना चाहिए कि पैर में दो जुराबें आसानी से पहनी जा सकें।

रास्ते में जूते अकसर गीले हो जाते हें। गीले जूतों को आग पर नहीं सुखाना चाहिए। अच्छा हो जूतों में अखबारी कागज अथवा सूखी घास ठूंसकर उन्हें कागज में लपेटकर स्लीपिंग बैग के नीचे अथवा भीतर रख दिया जाये ताकि अगले दिन आसानी से पहनें जा सकें। यदि जूते का तला नालीदार होगा तो वे ढलानों, घास अथवा चट्टानों पर फिसलेंगे नहीं।

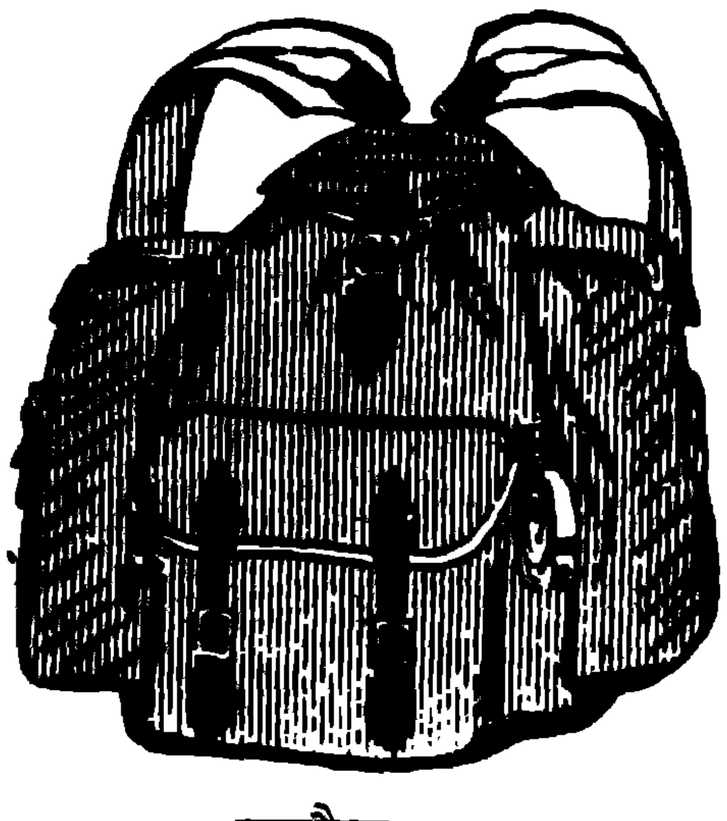
जूतों की एड़ी के ऊपर का भाग इतना ऊंचा होना चाहिए कि वह टखनों को ढंक ले। ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चलने के कारण पैर मुड़ने की आशंका हमेशा बनी रहती है। ऐसे जूते पैर में मोच नहीं आने देते और सूखी घास पर चलने के लिए भी यह अच्छे रहते हैं। सूखे और साफ-सुथरे जूते चलने में सहायक होते हैं।

पैरों में दो जुराबें पहनना अच्छा रहता है। दो जुराबों के कारण पैर गरम तो रहते ही हैं उन्हें आराम भी मिलता है। ट्रैकर को चाहिए कि वह पैर में दो जुराबें पहनकर ऊपर की जुराब को इस प्रकार से जूते के ऊपर मोड़े कि उसमें कंकर, पत्थर और घास के तिनके इत्यादि न जा सकें। जूते के फीते बहुत कसकर नहीं बांधने चाहिए, क्योंकि इससे रक्त के प्रवाह में अड़चन आने के कारण चलने में असुविधा होती है। हर दूसरे दिन जुराबों को बदलना चाहिए। गंदी जुराबों से पांव में छाले पड़ सकते हैं और इनसे दुर्गंध भी आती है। जुराबें साफ और सूखी होनी चाहिए। गीली जुराबें व्यक्ति के स्वास्थ्य को बिगाड़ सकती हैं।

आमतौर पर लोग कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों पर ही ट्रैकिंग के लिए जाते हैं। ऐसे क्षेत्रों के लिए किसी भी अच्छी कंपनी के साधरण हंटर शू पर्याप्त होते हैं। जिन लोगों को अधिक ऊंचाई वाले भू-प्रदेशों की ट्रैकिंग करनी हो, जहां ग्लेशियर और कठिन दर्रे पार करने हों, उन्हें विशेष रूप से बनाये गये जूते पहनकर ही जाना चाहिए।

**रकसैक :** रकसैक अथवा पिट्ठू ट्रैकर का विशेष साथी होता है। ट्रैकर को अपनी आवश्यकता की सारी चीजें इसी में भरकर पीठ पर लादनी होती हैं। मोटे तौर पर यह रकसैक ही ट्रैकर और पर्यटक का अंतर स्पष्ट करता है। रकसैक और पिट्ठू जिसे हैवर सैक भी कहा जाता है, एक प्रकार के ही होते हैं। दोनों के आकार एवं प्रयोग में अंतर होता है। पिट्ठू केवल कुछ ही वस्तुएं रखने के काम में आता है। ट्रैकिंग प्रारंभ करने वाले शुरू-शुरू में इसी से काम चला लेते हैं। बाद में जब लंबी और कठिन यात्राओं पर निकलना शुरू करते हैं तब रकसैक का प्रयोग करते हैं।

रकसैक आकार में पिट्ठू से बड़ा होता है। यह नाईलोन के कपड़े अथवा कैनवस का बना होता है। कंधों पर टांगने के लिए इसमें स्ट्रैप, अर्थात फीते लगे होते हैं। ट्रैकर एवं पर्वतारोही अपने कपड़े और उपकरण ले जाने के लिए इसे प्रयोग में लाते हैं। इस पर एक स्टील अथवा अल्मूनियम का फ्रेम भी लगा होता है। आजकल बहुत बढ़िया किस्म के रकसैक बाजार में मिलते हैं जिनमें उन स्थानों पर पैड लगे होते हैं, जिन पर विशेष रूप से बोझ पड़ता है। इन गद्दियों के कारण व्यक्ति को अधिक वजन उठाने में भी असुविधा नहीं होती। ये काफी हल्के और मजबूत होते हैं। रकसैक बिना फ्रेम के भी प्रयोग में लाये जाते हैं। मुख्य रूप से यह ट्रैकर की इच्छा और आवश्यकता पर निर्भर करता है कि वह किस प्रकार के रकसैक का चुनाव करे।


रकसैक

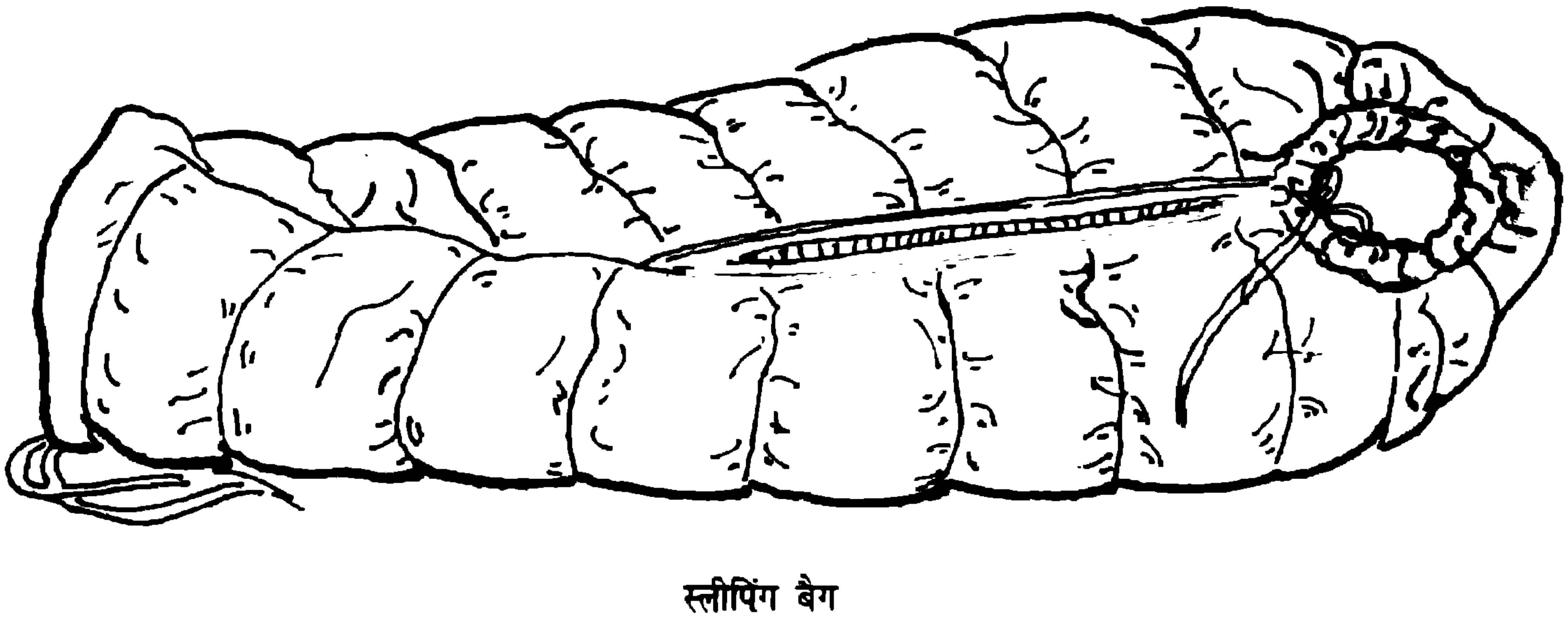
रकसैक में एक बड़ी जेब के अतिरिक्त कई छोटी जेबें किनारों पर होती हैं। इनमें जिप लगे होते हैं। एक बढ़िया रकसैक में बैग के नीचे फ्रेम पर तंबू अथवा स्लीपिंग बैग रखने का स्थान बना होता है। बाहर की ओर भी इसमें एक बड़ी जेब रहती है। फीतों एवं पीठ पर टिकने वाले भागों में गद्दी के कारण ये बदन पर चुभते नहीं। फीतों को अपनी सुविधानुसार छोटा बड़ा किया जा सकता है। कमर पर बांधने के लिए एक अलग से फीता भी होता है जो रकसैक को शरीर के निकट रखने में सहायक होता है। इसके कारण रकसैक इधर-उधर हिलता भी नहीं और यह व्यक्ति का संतुलन बनाये रखने में सहायक भी होता है। पहाड़ों पर चलते समय रकसैक का संतुलन बना रहे इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए। संतुलन के अभाव में, इधर-उधर फैला हुआ बोझ उठाना अपेक्षाकृत कठिन होता है। नदी-नाले पार करते समय ढीला-ढाला रकसैक दुर्घटना का कारण भी बन सकता है।

रकसैक विभिन्न आकारों में मिलते हैं और इनके प्रयोग के कारण इन्हें अलग-अलग नाम भी दिये गये हैं। ट्रैकिंग रकसैक, एसाल्ट सैक, केल्टी सैक और एवरेस्ट टाईप रकसैक इत्यादि। कुछ देशों में बोझ उठाने के लिए अगल से बनाये-गये

फ्रेमों का प्रयोग होता है, परंतु इन फ्रेमों के साथ भी बैग लटकाना पड़ता है।

रकसैक खरीदते समय इस बात की जांच कर लेनी चाहिए कि वह वाटर प्रूफ कपड़े का बना हो। कपड़ा मजबूत हो। फ्रेम का हल्का और मजबूत होना जरूरी है। फ्रेम में जोड़ न हों तो अच्छा रहता है। फ्रेम के किनारे धारदार होने की अपेक्षा गोलाई लिए होने चाहिए। रकसैक चौड़ा होने की अपेक्षा लंबा होना चाहिए ताकि उसका गुरुत्व बिंदु ऊंचा रहे। यदि रकसैक इस प्रकार का हो कि उसका अधिक से अधिक बोझ कंधों एवं रीढ़ की हड्डी पर रहे तो उसको उठाकर आराम से चला जा सकता है। रकसैक की सिलाइयों, फीतों के बकलों और जिपों को विशेष रूप से जांच लेना चाहिए, अन्यथा ये छोटी-छोटी बातें मार्ग में बड़ी समस्याएं बनकर सामने आती हैं।

**बिस्तर :** ट्रैकिंग पर साधारण बिस्तर अर्थात कंबल, दरी, चादर, गद्दा और तकिया इत्यादि ले जाना संभव नहीं होता। इसलिए ट्रैकर मुख्य रूप से स्लीपिंग बैग का प्रयोग करते हैं। यह बिस्तर थैलानुमा होता है जिसमें घुसकर ट्रैकर आराम से सो जाता है। इस बिस्तर का अस्तर पक्षियों के कोमल पंखों अथवा नाईलोन से भरा होने के कारण पर्याप्त नरम और गरम होता है। इसमें लेटने के बाद एक जिप द्वारा व्यक्ति अपने आपको भीतर बंद कर लेता है। इसमें सिर को ढंकने के लिए एक टोपी भी रहती है। स्लीपिंग बैग इतना गरम होता है कि पर्वतों की सर्दी में भी इसमें आराम से सोया जा सकता है। स्लीपिंग बैग विभिन्न साईजों में मिलते हैं। मौसम के अनुरूप इनमें पक्षियों के कोमल पंख अथवा नाईलोन की भराई होती है। ट्रैकिंग के काम आने वाले स्लीपिंग बैग अपेक्षाकृत अधिक हल्के होते हैं, क्योंकि इनमें कम सामग्री भरी होती है। ये बैग अधिक ऊंचाई वाले बर्फीलें क्षेत्रों में ले जाने योग्य नहीं होते। ट्रैकिंग में स्लीपिंग बैग की बहुत उपयोगिता है इसलिए लगभग हर ट्रैकर और पर्वतारोही अपना निजी स्लीपिंग बैग रखता है। हल्के, मजबूत और गर्म होने के कारण व्यक्ति इसमें अच्छी तरह से रात्रि व्यतीत कर सकता है। आजकल स्लीपिंग बैग एवं ट्रैकिंग के काम आने वाले अन्य उपकरण आसानी से किराये पर भी उपलब्ध हो जाते हैं।



स्लीपिंग बैग

ट्रैकिंग के मार्ग पर यदि सोने इत्यादि के लिए कोई भवन मिल जाये तो केवल स्लीपिंग बैग से गुजारा हो सकता है। जिन स्थानों पर तंबू लगाकर रहना होता है वहां तंबू में हल्की मैटरस का प्रयोग भी किया जाता है। बहुत कुछ स्थान और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कुछ लोग अपने साथ फोम की मैटरस ले जाते हैं तो कुछ हवा भरने वाले गद्दे। ये गद्दे मुख्य रूप से बर्फीले भू-प्रदेशों में प्रयोग करने के लिए होते हैं। ऐसे गद्दे हवा भरने के बाद जमीन से लगभग तीन इंच ऊंचे हो जाते हैं। इन गद्दों के कारण व्यक्ति ठंड से तो बचता ही है साथ ही उसे नरम और गुदगुदा बिस्तर भी मिल जाता है। ऐसे गद्दों पर शुरू-शुरू में सोना कठिन लगता है, परंतु धीरे-धीरे इसका अभ्यास हो जाता है। यदि ट्रैकर अपने साथ ऐसे गद्दे ले जायें तो उन्हें इनमें हवा भरने की व्यवस्था करने के अतिरिक्त पंचर लगाने का सामान भी साथ में ले जाना चाहिए।

यदि ट्रैकिंग आबादी वाले कम ऊंचाई के क्षेत्र में की जाये तो रात्रि विश्राम के लिए स्कूल भवन, पंचायतघर, विश्राम-गृह, छोटे-मोटे होटल और ऐसे ही अन्य स्थान उपलब्ध हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में ट्रैकिंग पार्टी को अपने साथ तंबू इत्यादि ले जाने की आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत अधिक ऊंचाई वाले भू-प्रदेशों में ठंडी और तूफानी रातों में विश्राम के लिए तंबुओं का ही सहारा लेना पड़ता है। कम ऊंचाई पर तो भारी तंबू भी वाहनों अथवा खच्चरों इत्यादि की सहायता से ले जाये जा सकते हैं, परंतु अधिक ऊंचाई पर यह भी संभव नहीं रहता। इसी कारण पर्वतारोहण के लिए विशेष रूप से हल्के एवं छोटे तंबू बनाये जाते हैं। ऐसे तंबू पर्वतारोही स्वयं अथवा कुलियों की सहायता से ले जाता है। भारत में ये तंबू मजबूत वायुरोधक और जलरोधक कपड़े से तैयार किये जाते हैं। ऐसे तंबुओं में प्लास्टिक की बिछावन भी लगायी जाती है। इस बिछावन के कारण जहां नीचे से आने वाली ठंड रुकती है वहीं अंदर हवा भी नहीं आ पाती।

ऐसे तंबुओं को अल्मूनियम के खंभों के सहारे खड़ा करके रस्सियों से बांध दिया जाता है। जहां सुविधाजनक पेड़ और चट्टाने हों वहां तंबू बांधने में उनका सहारा लेना भी अच्छा रहता है, क्योंकि ऐसे भू-प्रदेशों में कई बार तेज हवाएं और तूफान तंबुओं को उखाड़ फैंकते हैं। भार की दृष्टि से ये तंबू बहुत हल्के होते हैं। ये तंबू वायुरोधक नाईलोन के कपड़े से बनाये जाते हैं और इनका वजन एक किलोग्राम से पांच किलोग्राम तक होता है। इनका आकार दो, चार और छः व्यक्तियों के रहने के अनुरूप बनाया जाता है। तंबुओं को यदि ले जाना हो तो इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक व्यक्ति तंबू उठा सकता है जबकि दूसरा उसके खंभे (पोल्स) अपने साथ रख सकता है। सूखा मौसम होने पर केवल कैनवस की तिरपाल अथवा प्लास्टिक की बिछावन से भी काम चलाया जा सकता। बिछावन को बीच से रस्सी बांधकर और किनारों से तानकर तंबू के आकार में भी लगाया जा सकता है। दोपहर

में धूप से बचने के लिए शामियाने (चांदनी) की तरह भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

**अन्य वस्तुएं :** उपरोक्त आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त कई अन्य ऐसी महत्वपूर्ण वस्तुएं भी हैं जो ट्रैकर की यात्रा को सुविधापूर्ण बनाती हैं और संकट के समय सहायक सिद्ध होती हैं। कंपास अथवा दिशासूचक यंत्र तथा नक्शे ट्रैकर के लिए अनजान रास्तों पर गाईड का काम करते हैं। रास्ता भूल जाने की स्थिति में तो ये बहुत ही सहायक सिद्ध होते हैं क्योंकि इनके द्वारा ही व्यक्ति जान पाता है कि वह कहां है और उसे किधर जाना है। भटक जाने की हालत में सही दिशा का पता होने पर ही व्यक्ति कुछ कर पाता है। गलत दिशा अनुमान से बड़ी दुर्घटना होने की आशंका बनी रहती है। यद्यपि भारत में ऐसे स्थानों के बहुत बढ़िया नक्शे अभी उपलब्ध नहीं हैं जैसे कि पश्चिमी देशों में हैं फिर भी इन नक्शों से आवश्यक जानकारी तो प्राप्त हो ही जाती है। अब ये नक्शे पर्वतारोहण संस्थानों, पर्यटन सूचना केंद्रों और अन्य संबंधित संस्थाओं के पास आसानी से मिल जाते हैं। यात्रा पर जाते समय कंपास और नक्शा साथ अवश्य ही ले जाने चाहिए।

सीटी और टार्च तो ऐसी महत्वपूर्ण वस्तुएं हैं जो व्यक्ति की संकट के समय बहुत मदद करती हैं। ट्रैकिंग करते समय कई बार एक दल छोटी-छोटी टुकड़ियों में विभाजित हो जाता है। ऐसी हालत में सीटी और टार्च परस्पर संबंध बनाये रखने और अपनी स्थिति की जानकारी दल के अन्य सदस्यों को देने में बहुत सहायक होती हैं। इनसे व्यक्ति स्वयं भी जान सकता है कि दल के अन्य सदस्य कहां पर हैं। किसी दुर्घटना की हालत में दल के अन्य सदस्यों को न केवल इसके विषय में सूचित ही किया जा सकता है बल्कि उन्हें सहायता के लिए बुलाया भी जा सकता है। चिल्लाने की बजाय सीटी के संकेत कहीं अधिक साफ और बेहतर होते हैं। चिल्लाना कई प्रकार के भ्रम पैदा कर देता है और कई बार व्यक्ति चिल्लाने की हालत में भी नहीं होता। अंधेरा होने की स्थिति में टार्च भी इसी प्रकार सहायक सिद्ध होती है।

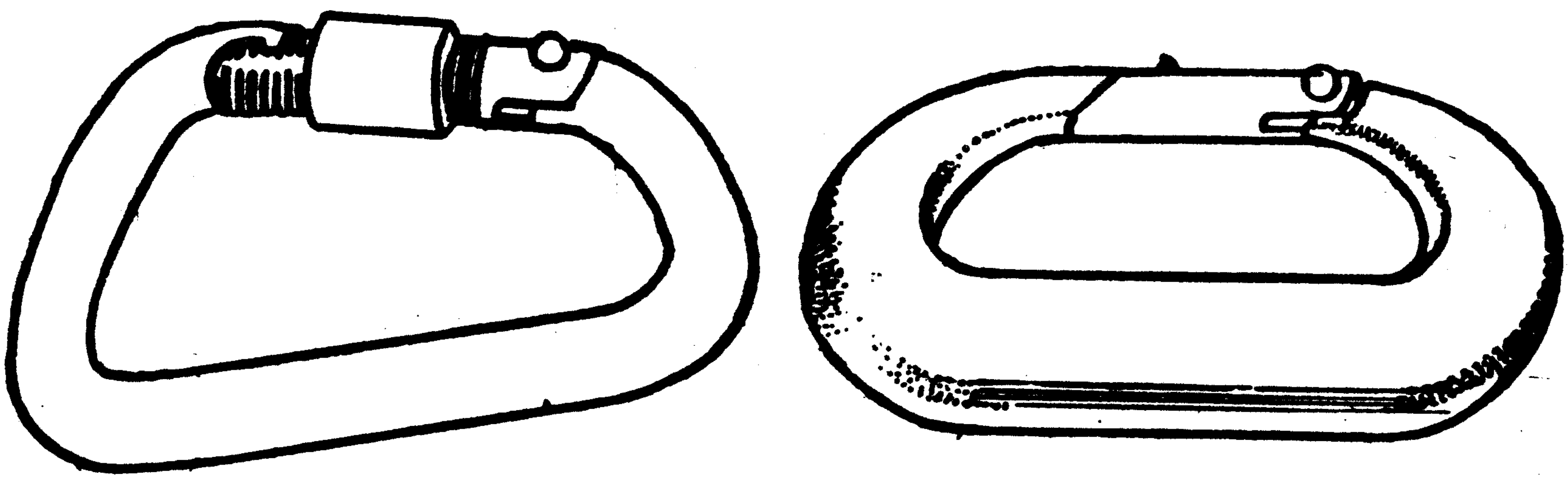
इस संदर्भ में यह जरूरी है कि यात्रा शुरू करने से पहले ही सीटी और टार्च के संकेत निर्धारित कर लिए जायें ताकि समय पड़ने पर किसी प्रकार की गलती न हो। रात्रि के अंधेरे और घने कोहरे की हालत में टार्च को दूर से संकेत देने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। इतना ही नहीं कई बार मार्ग में अचानक अंधेरा हो जाता है अथवा दल के एक दो सदस्य शेष सदस्यों के साथ तेजी से नहीं चल पाते और अगले पड़ाव तक पहुंचने में पीछे रह जाते हैं। ऐसी हालत में टार्च की रोशनी में मार्ग तय किया जा सकता है।

संकटकालीन संकेत उस समय दिये जाते हैं जब कोई सदस्य दल से बिछुड़

जाये अथवा दो विभिन्न टोलियां अलग-अलग स्थानों पर हों और किसी एक को मदद चाहिए हो। आमतौर पर संकेत इस प्रकार दिये जाते हैं। दल के सदस्य अपने लिए अलग से संकेत भी निश्चित कर सकते हैं :

1. टार्च को छः बार जलाना और बुझाना, अथवा छः बार लैंप या मोमबत्ती अथवा ऐसी ही किसी चीज को दिखाना जो व्यक्ति की उपस्थिति की जानकारी दे सके। छः बार सीटी बजाना, छः बार पटाखे छोड़ना अथवा छः बार चिल्लाकर भी यह कार्य किया जा सकता है। यह क्रिया हर एक मिनट के बाद उस समय तक दोहरायी जानी चाहिए जब तक कि कोई उत्तर न मिल जाये। रोशनी हो तो ऐसे संकेत किसी रंगीन वस्तु को हिलाकर भी दिये जा सकते हैं।
2. यदि ये संकेत प्राप्त हो गयें हों तो उन्हें इनका उत्तर तीन बार वैसे ही संकेत करके देना चाहिए। इससे पहला दल यह जान जायेगा कि उनके संकेत प्राप्त हो गये हैं और सहायता आ रही है। यदि किसी कारणवश संकेतों का काफी समय तक प्रत्युत्तर न मिले तो कोई अन्य साधन अपनाया जाना चाहिए। आवश्यक हो तो दो-तीन लोगों का एक दल शिविर के बेस कैंप में सूचना देने के लिए भेजना चाहिए।

सीटी और बैटरी की तरह से ही ट्रैकर को अपने पास चाकू और रस्सी भी रखनी चाहिए। अब अधिक से अधिक लोग अपने साथ हेलमेट भी ले जाने लगे हैं। लैंड स्लाईड अथवा गिरते हुए पत्थरों वाले स्थल पार करते समय ये बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। मार्ग में चलते समय भी यदि इसे पहनकर रखा जाये तो कई दुर्घटनाओं से बचा जा सकता है। रस्सी के ही साथ यदि कैराबिनर और स्लिंग भी रखें तो और भी अच्छा रहता है।



कैराबिनर

**आवश्यक सावधानियां :** ट्रैकिंग और पर्वतारोहण के लिए काम में आने वाले उपकरण क्योंकि व्यक्ति को बार-बार प्रयोग में लाने होते हैं इसलिए उनके रख-रखाव पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। महंगी होने के कारण ऐसी चीजों को बार-बार खरीदा भी नहीं जा सकता। ऐसी वस्तुओं को प्रयोग में लाते समय तो सावधानी बरतनी ही चाहिए पर जब इन्हें स्टोर में रखा जाये तब भी एहतियात बरतना जरूरी है।

**वस्त्र :** यात्रा में हमेशा पहनने के कपड़ों के दो जोड़े रखने चाहिए ताकि गीला अथवा गंदा होने की हालत में उन्हें बदला जा सके। सभी कपड़ों को गीला होने से बचाने के लिए यह जरूरी है कि प्रयोग में न आने वाले वस्त्र किसी प्लास्टिक के थैले में लपेटकर रखे जायें। वायुरोधक, नाईलोन के पंखों अथवा फोम वाले कपड़ों को आग पर नहीं सुखाना चाहिए। यदि बाहर मौसम खराब होने के कारण उन्हें सुखाना संभव न हो तो टेंट के अंदर रस्सी बांधकर उन्हें टांग देना चाहिए, भले ही इस प्रकार उनके सूखने में कुछ अधिक समय लगे।

**जूते :** जूतों को साफ-सुथरा रखना जरूरी है। उन पर निरंतर पालिश लगायी जानी चाहिए। जब बर्फ और वर्षा में इनका प्रयोग करना हो तो इन्हें चिकना करना अच्छा रहता है। जूतों को हमेशा सुखाकर ही रखना चाहिए। आग पर सुखाना ठीक नहीं; बल्कि इन्हें आग से दूर ही रखना चाहिए। सुखाने के लिए जूतों में जुराबें, कागज और घास इत्यादि ठूंसकर उन्हें स्लीपिंग बैग के नीचे रखना चाहिए। सूखने पर पालिश करनी चाहिए। स्टोर में रखने से पहले यदि इनमें कागज भर देंगे तो उनका आकार ठीक रहेगा। जूतों की अनिवार्यता को देखते हुए इनकी मरम्मत इत्यादि तुरंत करवानी चाहिए। इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि जूतों का चमड़ा सूखकर अकड़ने न पाये।

**स्लीपिंग बैग :** रात में ठीक से सोने के लिए जरूरी है कि स्लीपिंग बैग ठीक-ठाक हो। गीला तो कतई नहीं होना चाहिए। रकसैक के ऊपर रखते समय यदि स्लीपिंग बैग को एक प्लास्टिक के लिफाफे में लपेटकर रखा जाये तो बेहतर होता है। स्लीपिंग बैग को आग से दूर ही रखना चाहिए क्योंकि नाईलोन का होने के कारण इसके द्वारा जल्दी आग पकड़ने की संभावना बनी रहती है। तंबू के भीतर सिगरेट नहीं पीनी चाहिए। यदि पीना ही हो तो बहुत ही सावधान रहना जरूरी है। स्लीपिंग बैग में लेटने के पश्चात तो धूम्रपान कदापि नहीं करना चाहिए।

तंबू के भीतर मोमबत्ती जलाने से भी स्लीपिंग बैग खराब हो सकता है। टैंट के भीतर बहुत कम स्थान होने के कारण मोमबत्ती की लौ भी इतनी गरमी पैदा कर देती है जिससे स्लीपिंग बैग खराब हो सकता है। यदि स्लीपिंग बैग के भीतर

अलग से एक हल्के कपड़े का आवरण लगवा लिया जाये तो इसे गंदा होने से बचाया जा सकता है। इस आवरण को अलग से समय-समय पर धोया जा सकता है।

गीले स्लीपिंग बैग को पहली फुरसत में ही सुखा लेना चाहिए। गीला रहने से इसके पंखों के खराब होने का भय बना रहता है। इसकी जिप का प्रयोग ठीक से करना चाहिए। निरंतर मोम इत्यादि रगड़कर इसकी कार्यक्षमता बढ़ायी जा सकती है। गीली रहने पर जिप बहुत ही जल्दी खराब हो सकती है।

**तंबू :** पर्वतारोहण के काम आने वाले हल्के टैंटों में नाईलोन के कपड़े का आवरण होता है। टैंट के अंदर मोमबत्ती अथवा आग जलाने से इसके जलने की आशंका बनी रहती है। बहुत सावधानी बरती जाये तब भी गरमी से टैंट खराब हो जाता है। इसीलिए किसी भी हालत में टैंट में खाना नहीं पकाना चाहिए। इसी बात को ध्यान में रखते हुए अभियान दल अपने साथ रसोईघर के लिए अलग से टैंट ले जाते हैं। यह टैंट अपेक्षाकृत ऊंचा होता है और नाईलोन का नहीं होता। टैंट के भीतर जूते पहनकर नहीं आना चाहिए इससे भी तंबू के खराब होने एवं कटने-फटने का भय रहता है। तंबू को स्टोर में रखने से पहले पूरी तरह से सुखा लेना चाहिए। सुखाने का सबसे अच्छा तरीका है कि धूप में तंबू को उसी प्रकार लगाया जाये जैसे कि पर्वतों पर लगाया जाता है। पूरी तरह सूख जाने पर उसे अच्छी तरह से पैक करके स्टोर में रखना चाहिए। गीले टैंट को पैक करने से उसके खराब होने की संभावना रहती है, और उससे दुर्गंध भी आने लगती है।

खंभे (पोल्स) और खूंटियां (पेग्स) तंबू के साथ नहीं बांधनी चाहिए बल्कि उन्हें अलग से संभालकर रखना चाहिए। यदि इन चीजों को टैंट के साथ ही बांधा जायेगा तो तंबू के फटने की आशंका हमेशा बनी रहेगी।

ट्रैकिंग और पर्वतारोहण में काम आने वाले सभी उपकरण विशेष मानकों के अनुरूप बनाये जाते हैं क्योंकि इन्हीं उपकरणों पर ट्रैकर का जीवन टिका होता है। इसलिए उपकरण खरीदते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वे भारतीय मानक संस्थान द्वारा प्रमाणित किए हुए हों।



# 5

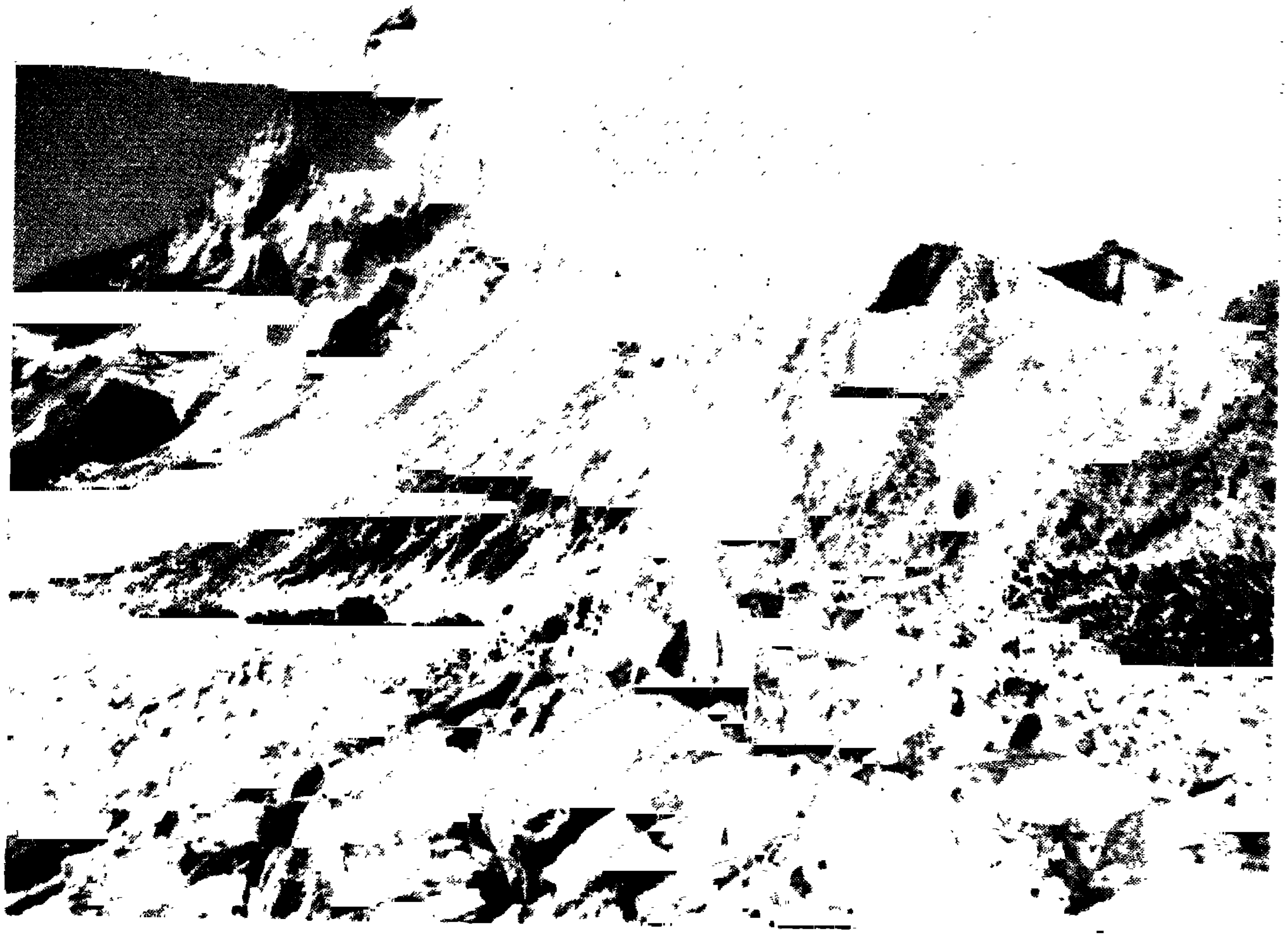
# रूपरेखा

आम जीवन में भी यदि किसी काम को योजनाबद्ध तरीके से किया जाये तो आसानी होती है। ट्रैकिंग में व्यक्ति को ऐसे मार्ग पर जाना होता है जहां कदम-कदम पर जोखिम एवं बाधाओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी हालत में यात्रा की पूरी रूपरेखा यदि पहले से ही तैयार कर ली जाये तो मार्ग में आने वाली कई दिक्कतों से बचा जा सकता है। ट्रैकिंग दल अथवा ट्रैकर को अनजाने भू-प्रदेशों की यात्रा पर निकलना होता है। दुर्गम भू-प्रदेशों, घने जंगलों और तेज बहाव वाली नदियों को पार करके मंजिल प्राप्त करनी होती है। यात्रा की रूपरेखा बनाते समय इन सब बातों पर विचार करना जरूरी है। जरा सी असावधानी न केवल पूरा कार्यक्रम खराब कर सकती है वरन कई बार इसके कारण प्राण भी संकट में पड़ सकते हैं।

ट्रैकिंग की योजना बनाने से अभिप्राय यह है कि जब यात्रा प्रारंभ की जाये उससे पहले सभी संबंधित पक्षों पर विस्तार से विचार-विमर्श किया जाये। जिस मार्ग पर जाना हो उस भू-प्रदेश की पूरी जानकारी ले लेनी चाहिए। जो लोग पहले उस भू-प्रदेश की यात्रा कर चुके हों उनके अनुभव और विचार जान लेना भी उचित है। मौसम, खाने-पीने की चीजों की उपलब्धता, ठहरने के स्थान, कुली, घोड़े, प्रतिदिन कितना फासला तय करना है, क्या-क्या साथ ले जाना है आदि के बारे में भी जान लेना जरूरी होता है। कौन-कौन दल का सदस्य होगा और उसका क्या दायित्व होगा, आदि बातें पहले से ही सुनिश्चित करके रूपरेखा तैयार की जानी चाहिए।

सबसे पहले यह निश्चित किया जाना चाहिए कि आखिर यह यात्रा क्यों की जाये। मनोरंजन अथवा छुट्टियां यात्रा का एक उद्देश्य हो सकता है। पूजा-अर्चना के लिए किसी धार्मिक स्थान पर तीर्थयात्रा की जा सकती है। शहरों की भागदौड़ से दूर कहीं शांत स्थान पर आराम करना भी एक उद्देश्य हो सकता है। कोई सर्वेक्षण कार्य, वनस्पतियों का अध्ययन, पक्षियों अथवा वन्य प्राणियों का अध्ययन, शिकार अथवा किसी कबीले के विषय में अधिक जानकारी, फोटोग्राफी अथवा चित्रकारी, ये सब नहीं तो किसी पर्वतशिखर का आरोहण अथवा मनोरंजन के लिए भ्रमण मात्र

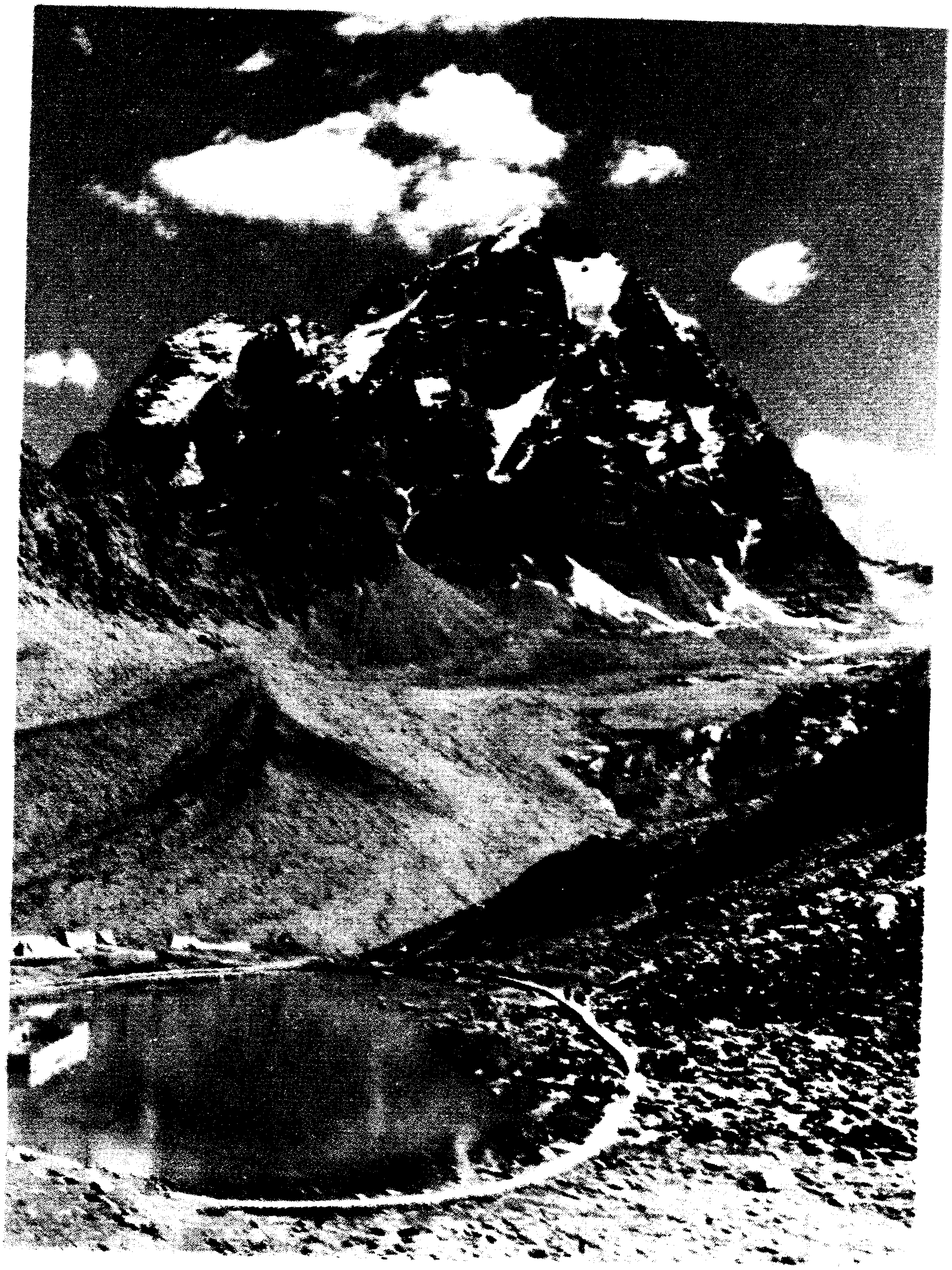




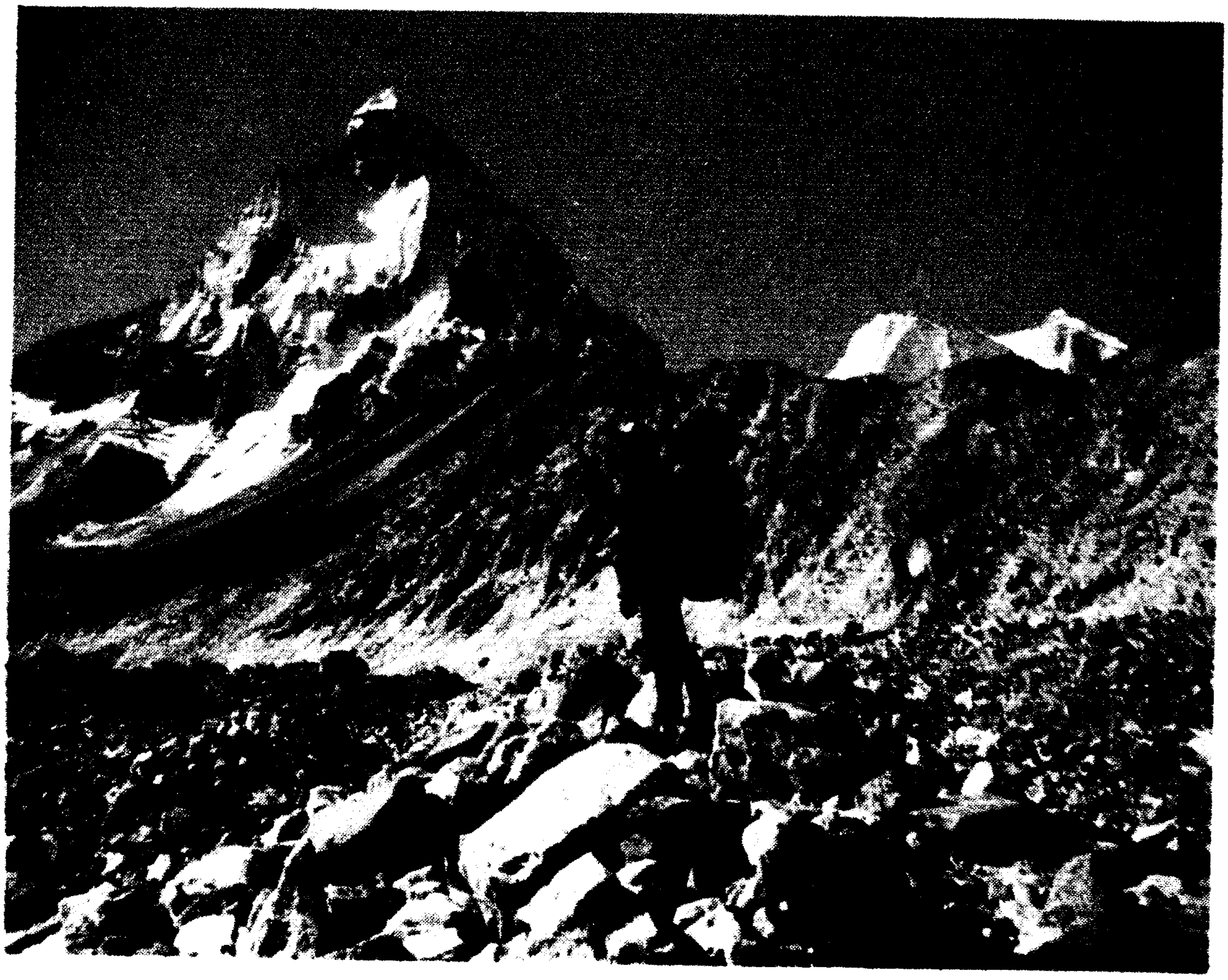
ट्रैकिंग पथ पर अपने लक्ष्य को निहारता ट्रैकर



रोहतांग दर्रे को पार करते हुए ट्रैकर



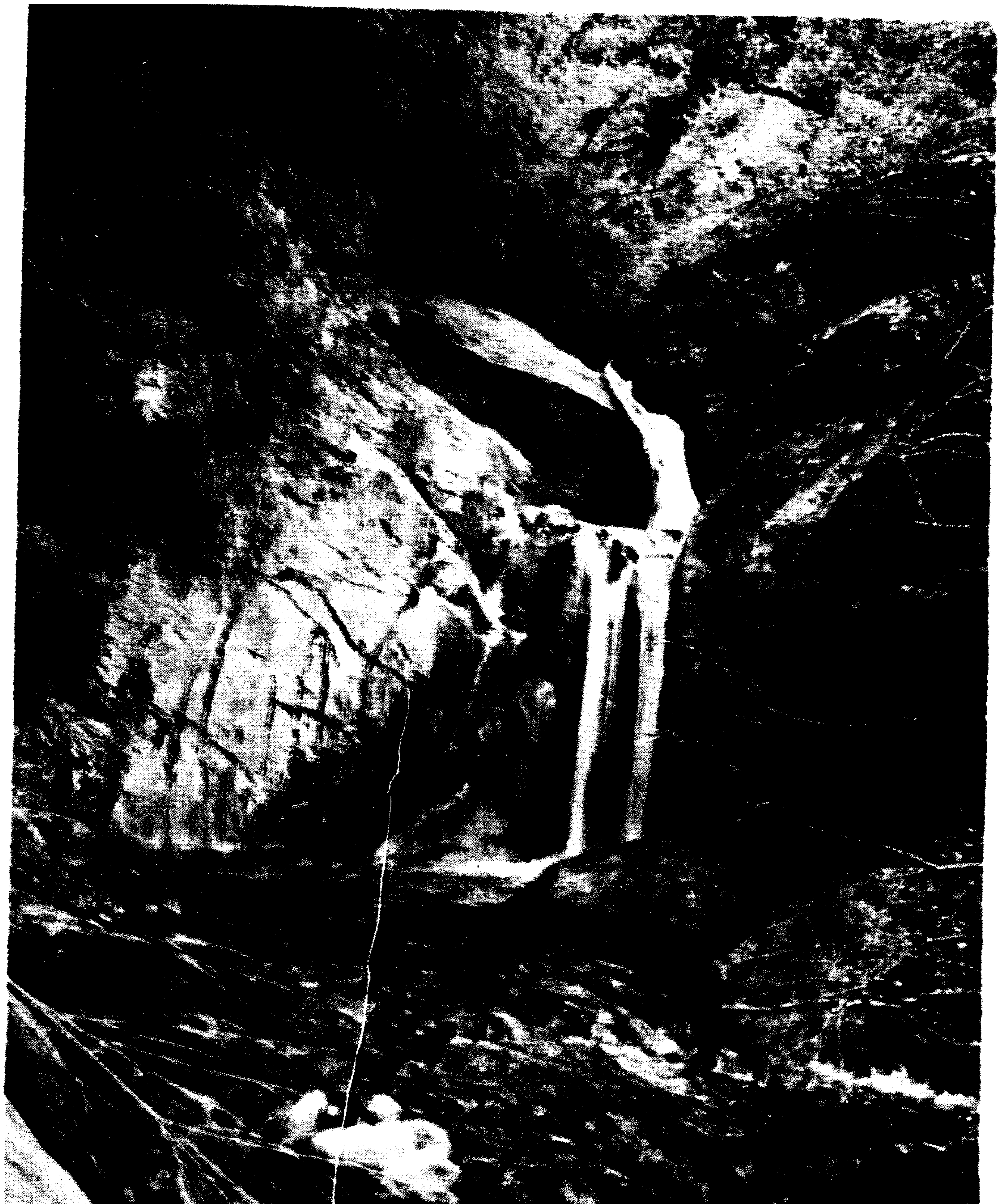
पर्वत का एक सुहावना दृश्य



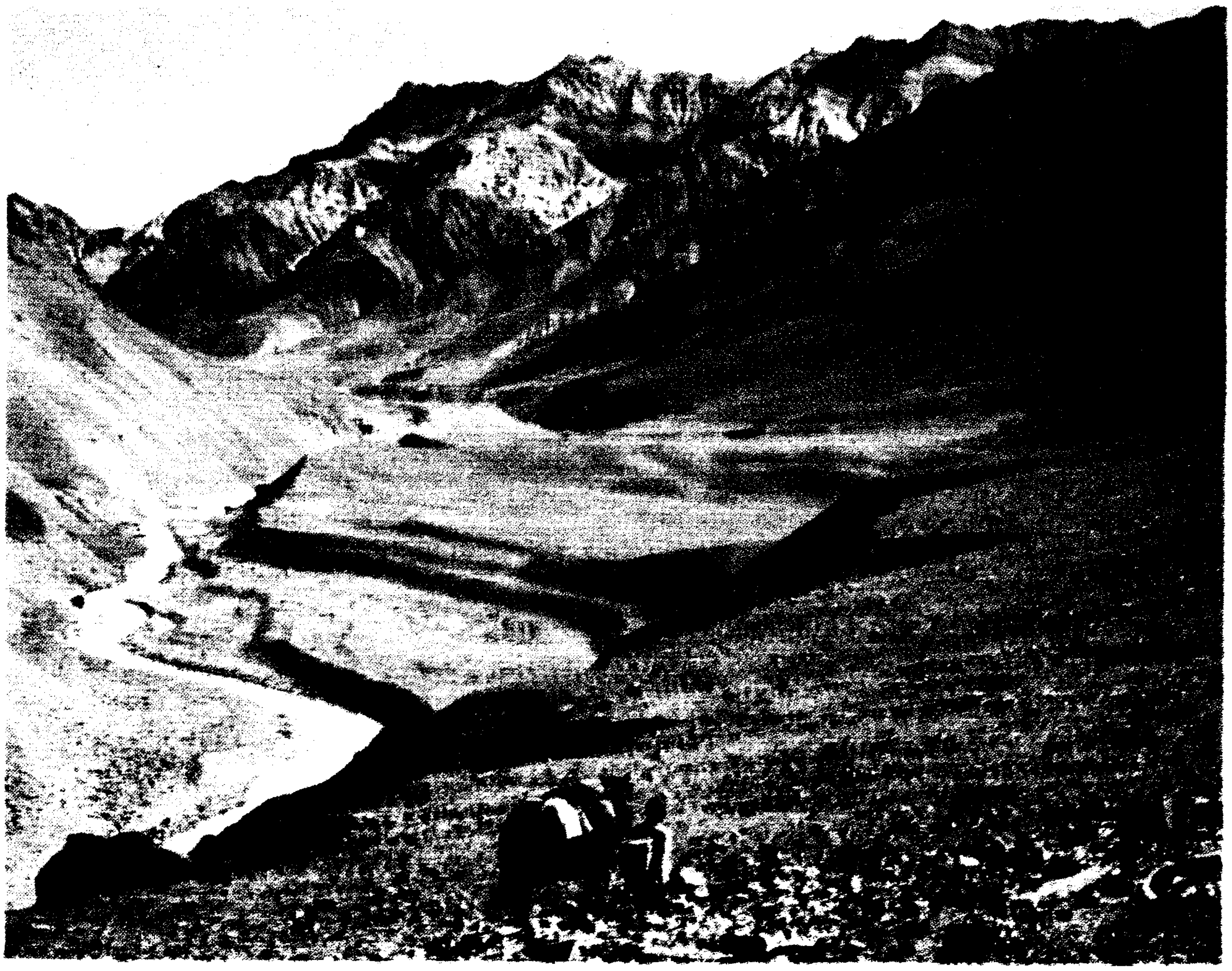
ट्रैकिंग पथ पर अपने लक्ष्य को निहारता ट्रैकर



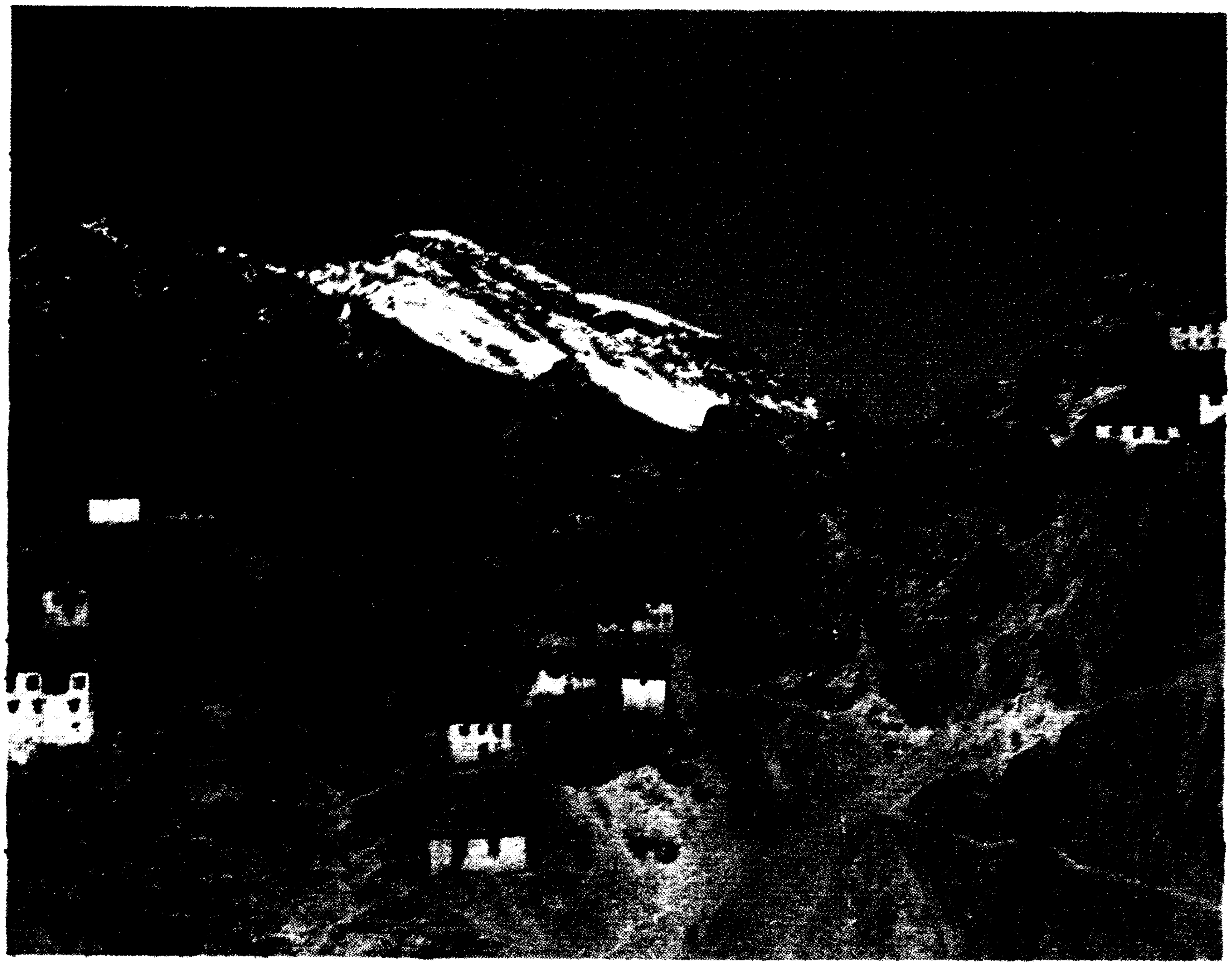
रोहतांग दर्रे को पार करते हुए ट्रैकर



राष्ट्रीय उद्यान का एक मनोहारी दृश्य



पिन घाटी राष्ट्रीय उद्यान



स्पीति में धनकड़ बौद्ध मठ



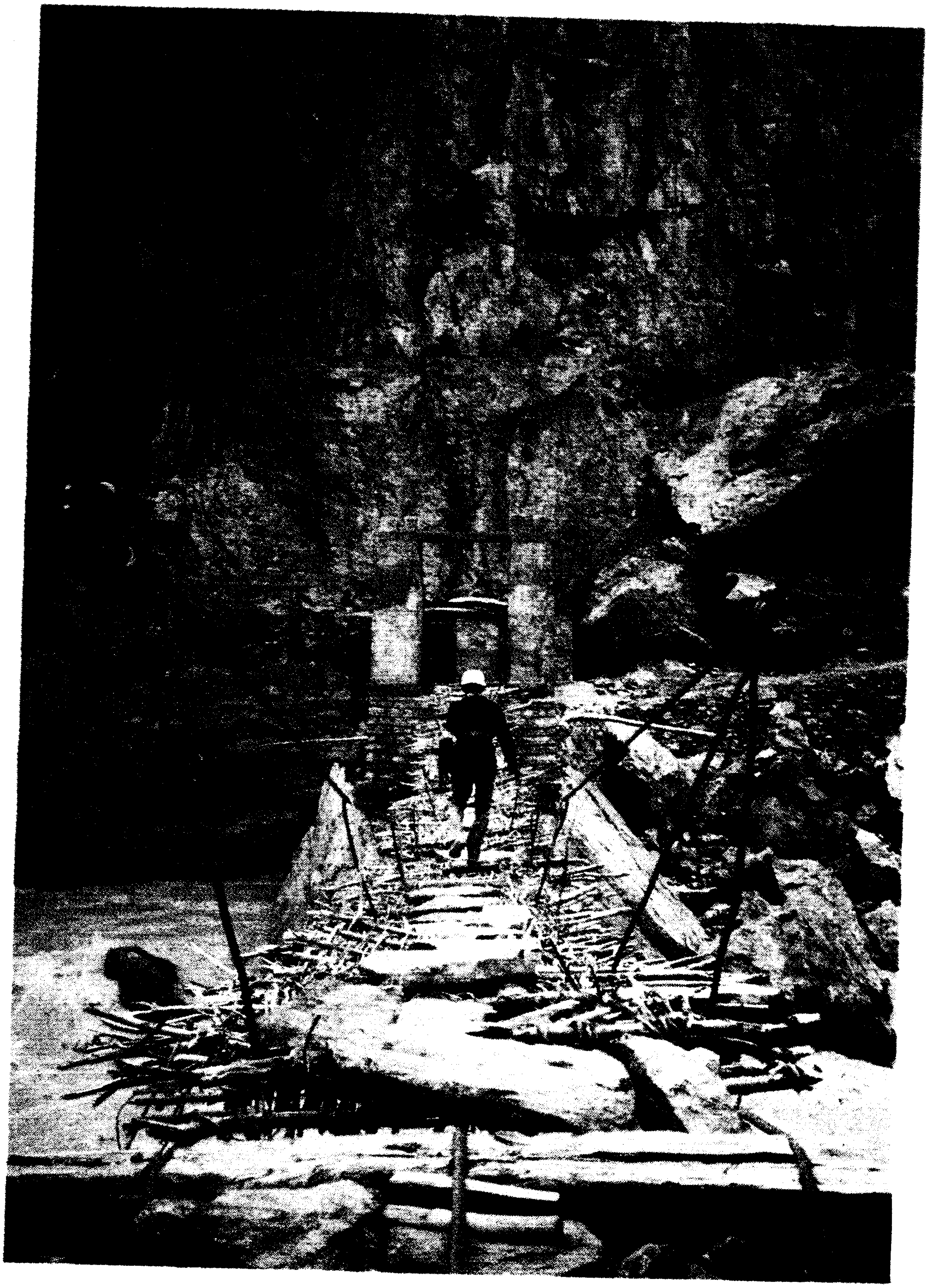
रज्जू मार्ग से नदी को पार करता हुए एक ट्रैकर



पर्वत शृंखला के मध्य एक ट्रैकर



मलाना गांव के निवासी



स्थानीय पुल पार करता हुआ एक ट्रैकर

इत्यादि के कारण भी व्यक्ति ट्रैकिंग के लिए निकल सकता है।

यात्रा का उद्देश्य निश्चित हो जाने के पश्चात अन्य बातों में विशेष कठिनाई नहीं आती। यहां पर हम केवल मनोरंजन के लिए ट्रैकिंग को ही अपना उद्देश्य मानकर चलेंगे और उसी में हर बात का समावेश करने का प्रयास करेंगे। ट्रैकिंग के लिए भी पर्वतीय भू-प्रदेशों को हम अपनी चर्चा का विषय बनायेंगे क्योंकि भारत में अभी तक ट्रैकिंग मुख्य रूप से हिमालय पर ही की जाती है। मनोरंजन के अतिरिक्त जो भी उद्देश्य होंगे उनके लिए अलग-अलग तरह के उपकरणों की आवश्यकता होगी, दल के सदस्यों की रुचि एवं शिक्षा इत्यादि भी उसी के अनुरूप होगी। उदाहरणतया यदि कोई व्यक्ति चित्रकारी के लिए पर्वतों पर जाना चाहेगा तो साथ में रंग, ब्रुश और कैनवस इत्यादि भी ले जाने होंगे। इसी प्रकार फोटोग्राफर कैमरे और लैंस के अतिरिक्त अन्य आवश्यक उपकरण साथ लेकर चलेगा।

जब यात्रा का उद्देश्य तय हो जाये तो उसी के अनुरूप सदस्यों के चयन की ओर ध्यान देना चाहिए। कैसे सदस्यों को साथ लिया जाये इस बात का ध्यान करना चाहिए। उनकी वायु, स्वभाव, अनुभव और रुचियां परस्पर मिलती-जुलती होंगी तो यात्रा में अधिक आनंद आयेगा। इस बात का प्रयास करना चाहिए कि सदस्यों की आयु में अधिक अंतर न हो, विशेष रूप से यदि यात्रा दुर्गम स्थानों पर करनी हो तो। एक युवा ट्रैकर अपनी शक्ति एवं उत्साह के कारण प्रतिदिन अधिक से अधिक दूरी पार करनी चाहेगा जबकि प्रौढ़ एवं वृद्ध व्यक्तियों के लिए उनकी गति के साथ चल पाना संभव नहीं होगा। यदि किसी कारणवश हर आयु के सदस्य दल में सम्मिलित हों तो दल के साथ एक-दो घोड़े अवश्य रखने चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर वृद्ध, बीमार अथवा दुर्बल सदस्यों को पड़ाव तक पहुंचाने में उनकी मदद ली जा सके।

सभी सदस्यों को मार्ग में आने वाली बाधाओं का सामना करने के लिए मानसिक और शारीरिक रूप से तैयार रहना चाहिए। यात्रा की रूपरेखा बनाते समय ऐसी संभावित बाधाओं को रेखांकित कर देना चाहिए। सभी सदस्यों में किसी कठिन परिस्थिति का मिलकर सामना करने की इच्छाशक्ति होनी आवश्यक है। तूफान, वर्षा, बर्फ, किसी सदस्य की बीमारी, कोई दुर्घटना अथवा किसी भी अन्य कारण से कुछ लोगों को मुख्य दल से अलग रहना पड़ सकता है। ऐसी स्थिति में विचलित होने की अपेक्षा दल को पूरा-पूरा सहयोग देने के लिए प्रत्येक सदस्य को तैयार रहना चाहिए दल के सदस्यों का चुनाव करते समय इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि उनमें सहयोग की भावना है अथवा नहीं। यदि प्रत्येक सदस्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग कर पूरे दल के हितों का ध्यान रखेगा और स्वयं कुछ असुविधा उठाने में भी नहीं झिझकेगा तो यात्रा की सफलता में कोई संदेह हो ही नहीं सकता।

**यात्रा-मार्ग का चुनाव :** जब सदस्यों का चुनाव हो जाये तो यह ज्ञात करना चाहिए कि सब लोग कितना समय ट्रैकिंग के लिए दे सकते हैं तथा इसके लिए कितना धन उपलब्ध हो सकता है। इन दोनों बातों को ध्यान में रखकर सबकी रुचि वाला मार्ग चुनना चाहिए। मार्ग का चुनाव करते समय यह भी ध्यान में रखना जरूरी होता है कि उस मार्ग पर कौन-कौन सी सुविधाएं मिल सकती हैं।

ट्रैकिंग का मार्ग तय करने में सबसे अधिक विवाद भिन्न-भिन्न रुचियों के कारण होता है। कुछ सदस्य पूर्वी हिमालय में कंचनजंघा अथवा दार्जिलिंग की यात्रा करके टाईगर हिल से सूर्योदय का स्वर्गिक सुख प्राप्त करने की इच्छा रख सकते हैं तो कुछ उत्तर प्रदेश के पहाड़ों पर फूलों की छटा एवं गंगा के किनारे-किनारे मनोरम प्रकृतिक दृश्यों को निहारना चाहेंगे। वहां पर स्थित अत्यंत पवित्र मंदिरों के दर्शन करना भी कुछ का अभीष्ट हो सकता है। इसी प्रकार कुछ लोग पश्चिमी हिमालय की यात्रा को पसंद कर सकते हैं। कुल्लू और मनाली की सुंदर वादियों में रहने वाले लोग उन्हें आकर्षित कर सकते हैं। विश्व के अद्भुत गर्म पानी के स्रोत देखने के लिए मनीकरण किसी की मंजिल हो सकता है तो कुछ पर्वतीय झीलों की सैर करना चाह सकते हैं। इसी प्रकार सदस्य रेगिस्तान, नदी अथवा समुद्र के किनारे या फिर किसी घने जंगल के रास्तों से यात्रा करने का कार्यक्रम भी बना सकते हैं।

पर्वतों पर गरमी के मौसम में ट्रैकिंग के लिए जाना बेहतर समझा जाता है। इससे एक तो व्यक्ति मैदानी गरमी में झुलसने से बचता है, दूसरा वह अधिक दूरी तक पर्वतों में जा सकता है। बर्फ पिघली होने के कारण उस समय यह सुविधा रहती है। साथ ही चारों और हरियाली छाई होती है। हिमाचल प्रदेश में लाहौल, स्पीति, पांगी और किन्नौर घाटियां, जम्मू कश्मीर में लद्दाख और जांसकर जैसे इलाके ऐसे हैं जो केवल मानसून में ही खुलते हैं। इन क्षेत्रों में बहुत कम वर्षा होती है। इसलिए ऊंचे दर्रों के खुलने से घाटी में प्रवेश करना आसान होता है। ऐसे क्षेत्रों में ट्रैकिंग जुलाई और अगस्त में ही की जाती है। सरदी के मौसम में व्यक्ति अपेक्षाकृत गर्म स्थानों और समुद्री तटों की ओर आकृष्ट हो सकता है।

**बजट :** सदस्यों का चुनाव, मार्ग का चुनाव तथा यात्रा की अवधि सभी इस बात पर निर्भर है कि अभियान के लिए कितना धन उपलब्ध है। यदि अधिक बजट है तो लंबी दूरी वाला मार्ग अधिक सदस्यों के साथ ट्रैकिंग के लिए चुना जा सकता है। इसी प्रकार कम बजट के लिए कम सदस्य और छोटा ट्रैक चुनना ही बेहतर रहता है। यदि स्वयं ही सारा व्यय वहन करना हो तो सदस्य आपस में धन संग्रह करके कोई छोटा ट्रैक निश्चित कर सकते हैं। आमतौर पर कालेज, विश्वविद्यालय एवं अन्य संस्थाएं ट्रैकिंग अभियान ले जाती हैं। यूथ होस्टल एसोसिएशन और एन.सी.सी. ऐसे अभियानों का कार्यक्रम निरंतर बनाते ही रहते हैं जिनमें हजारों

लड़के और लड़कियां सम्मिलित होते हैं। यदि विस्तार से प्रारूप बनाकर सरकार के पास भेजा जाये तो केंद्रीय और राज्य सरकारें भी कुछ वित्तीय सहायता ऐसे अभियानों के लिए देती हैं। कुछ बड़े-बड़े औद्योगिक घरानों ने भी इस खेल को प्रोत्साहित करने के लिए आर्थिक सहायता देनी आरंभ की है। अनेक सार्वजनिक प्रतिष्ठानों और बैंकों ने अपने अलग से ट्रैकिंग क्लब गठित किये हुए हैं। लगभग हर कालेज और उच्चतर माध्यमिक स्कूल में भी ऐसे क्लब युवकों को ट्रैकिंग के अवसर प्रदान करने हैं।

**आवश्यक वस्तुएं :** खाद्य सामग्री, खाना पकाने के लिए रसोई के बर्तन, कैंप लगाने वाले टैंट एवं संबंधित सामग्री, ट्रैकिंग के लिए आवश्यक उपकरण एवं वस्त्र, व्यक्तिगत आवश्यकता वाली वस्तुएं, फर्स्ट-एड का सामान एवं दवाइयां, कैमरा, दूरबीन, नक्शे, दिशासूचक यंत्र, स्लीपिंग बैग और रकसैक इत्यादि ऐसी चीजें हैं जिनकी आवश्यकता हमेशा होती है। इन वस्तुओं के विषय में निम्नलिखित जानकारी ट्रैकर के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

**खाद्य सामग्री :** ट्रैकिंग पर जाने का विचार बनाते समय व्यक्ति को यह बात समझ लेनी चाहिए कि मार्ग में उसे खाने के लिए मनपसंद व्यंजन नहीं मिल सकते। वह सब चीजें भी नहीं मिल सकतीं जो घर में मिलती हैं अथवा जो वह आमतौर पर खाता है। व्यक्ति को चाहिए कि वह यात्रा पर जाने से पूर्व अपने मन को पक्का कर ले कि वह वही खाना पूरे चाव के साथ खायेगा जो दल के अन्य सदस्य खायेंगे। मार्ग में हर व्यक्ति की रुचि के अनुरूप भोजन बनाया जाना असंभव सी बात है।

ट्रैकिंग करते समय अधिकतर डिब्बों में बंद भोजन खाकर ही संतुष्ट होना पड़ता है। ज्यादातर लोग ऐसा खाना पसंद नहीं करते परंतु यह भोजन अधिक पौष्टिक होता है। इस भोजन को आसानी से पकाया जा सकता है और भार में हल्का होने के कारण इसे साथ ले जाने में सुविधा रहती है। यदि रास्ता आबादी के बीच में से होकर जाता है तो मार्ग में आने वाले गांवों से ताजी सब्जियां, दूध-दही और अंडे इत्यादि सामान मिल सकता है परंतु दल को तब तक इस पर निर्भर नहीं रहना चाहिए जब तक कि पक्की जानकारी न हो। यदि मार्ग में ऐसी खाद्य सामग्री मिलती हो तो दल अपने साथ दलिया, चाकलेट, दूध पाउडर, सूप और जूस इत्यादि ले जा सकता है। यदि रास्ता आबादी की सीमा रेखा से ऊपर होकर गुजरता है तो दल के लिए हर वस्तु अपने साथ ले जाना अनिवार्य है। ऐसी हालत में दल को अपनी जरूरतों के अनुरूप खाने-पीने का सामान साथ ही रख लेना चाहिए।

भारत में अधिकतर विदेशी ट्रैकर छुट्टियां मनाने के लिए आते हैं। उनके पास धन और समय की कमी नहीं होती। वे लोग धीरे-धीरे घूमते हुए और स्थान-स्थान

पर कैंप लगाते ही आगे बढ़ते हैं। मार्ग में उनके लिए बढ़िया शिविरों एवं भोजन का प्रबंध होता है। ऐसे लोगों का प्रबंध ट्रैकिंग एजेंसी के माध्यम से होता है जो कि ट्रैकर के आने से पहले ही हर प्रकार की व्यवस्था कर लेते हैं। कुछ संस्थाएं तो ट्रैकर्स के लिए मेज-कुर्सी तथा शौचालय तक का प्रबंध भी करती हैं जिससे ट्रैकर्स को किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती। वे केवल अपना थोड़ा-सा व्यक्तिगत सामान रकसैक में डालकर आराम से ट्रैकिंग करते हैं।

कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जिनकी ट्रैकिंग में तो बहुत रुचि होती है परंतु वे अधिक धन नहीं जुटा पाते। मुश्किल से यात्रा की आवश्यकताओं के लायक ही खाने-पीने, ठहरने और कुलियों इत्यादि का प्रबंध करने में इन्हें कठिनाई होती है। इनके लिए हर बात का निर्णय सोच-समझकर करना जरूरी होता है। ऐसे लोगों को चाहिए कि वे अपने साथ हल्का परंतु पौष्टिक भोजन ले जायें। सत्तू, खिचड़ी, गुड़ और चना इनके लिए अच्छा आहार हो सकता है। यदि साधन हो तो चाय-मिश्रण, मक्खन, चाकलेट, मूंगफली, ज़ूस, सूप और काफी इत्यादि भी साथ रख सकते हैं।

इस प्रकार का भोजन यात्रा में बहुत अच्छा रहता है। भोजन बनाने में बहुत आसानी होती है। सत्तू में चीनी मिलाकर गरम अथवा ठंडे पानी में घोलकर प्रातःकाल चाय के साथ खाया जा सकता है। भुने हुए चने, गुड़, चाकलेट और बिस्कुट जेबों में रखे जा सकते हैं और उन्हें बिना समय गंवाए चलते-चलते ही खाया जा सकता है। शाम को कैंप में मक्खन के साथ खिचड़ी बहुत ही स्वाद लगती है। कार्नफ्लैक, अंडे और ताजी सब्जियों का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार का भोजन तैयार करने के लिए अधिक बर्तनों की जरूरत भी नहीं पड़ती। चाय-मिश्रण मार्ग की थकावट के बाद तुरंत गरमागरम चाय बनाने के लिए उत्तम है। इसके लिए केवल गरम पानी की ही आवश्यकता होती है।

**बर्तन :** जिन लोगों को ट्रैकिंग आराम और सुविधापूर्वक ढंग से करनी हो, उन्हें चाहिए कि रसोई बनाने के बर्तन साथ में ले लें। इन बर्तनों को ढोने के लिए कुलियों एवं घोड़ों का प्रबंध करना पड़ेगा। साथ में रसोइये को भी ले जाना जरूरी होता है। चाहे कम बजट से ट्रैकिंग की जाये अथवा अधिक बजट से पर्वतों पर खाना बनाने के लिए प्रैशर कुकर ले जाना बहुत आवश्यक होता है। ऊंचे स्थानों पर खाना देर में पकता है इसलिए प्रैशर कुकर काफी सहायक होता है। कम बजट में ट्रैकिंग करने वालों को बहुत कम बर्तन साथ में रखने चाहिए क्योंकि उन्हें सारा सामान स्वयं ही उठाना होता है अथवा एक-दो कुलियों से ही काम चलाना पड़ता है।

खाना बनाने के लिए ईंधन के रूप में किसी पेड़ को काटना बिलकुल वर्जित होता है। ईंधन के रूप में मिट्टी का तेल, पैट्रोल अथवा फिर गैस साथ में ले जाना

चाहिए। स्टोव, पैट्रोल के स्टोव और गैस के चूल्हे के कुछ आवश्यक अतिरिक्त पूर्जे भी साथ में रखने चाहिए। माचिस के अतिरिक्त लाइटर भी साथ रखें। गीली होने पर माचिस परेशानी पैदा कर सकती है। माचिस हमेशा प्लास्टिक के कवर में लपेटकर रखनी चाहिए। टिन कटर और चाकू भी मार्ग में बहुत सहायक होते हैं।

**कैंप लगाने का सामान :** आबादी वाले क्षेत्रों में ट्रैकिंग करते समय अभियान दल रात्रि विश्राम के लिए किसी विद्यालय के भवन, पंचायत घर, विश्राम-गृह अथवा किसी ऐसे ही स्थान पर ठहर सकता है। जहां ऐसी सुविधा न हो वहां पर तंबू लगाने पड़ते हैं। कम ऊंचाई वाले स्थानों के लिए खच्चर एवं कुली उपलब्ध हो जाते हैं इसलिए ऐसे क्षेत्रों में भारी टैंट भी ले जाये जा सकते हैं। अधिक ऊंचाई वाले रास्तों पर तो हल्के और मजबूत टेंट ही ले जाये जा सकते हैं। ऐसे तंबू आसानी से उठाये जा सकते हैं और इन्हें लगाने में भी कोई विशेष कठिनाई नहीं होती। यद्यपि ऐसे टैंटों में ग्राउंड शीट लगी होती है फिर भी हल्के मैटरस साथ ले जाना अच्छा रहता है। यदि मौसम साफ हो तो खुले आसमान के नीचे तारों की छाव में, किसी पेड़ के नीचे अथवा किसी गुफा में रात बितायी जा सकती है। जल रोधक तिरपाल अथवा प्लास्टिक की बिछावन को ऊपर तानकर भी सोया जा सकता है। यही तरीका वर्षा होने की हालत में रसोई बनाने के लिए उपयोगी सिद्ध होता है।

**व्यक्तिगत प्रयोग की वस्तुएं :** पहनने के वस्त्र, स्लीपिंग बैग, वायुरोधक कोट, पानी की बोतल, टार्च, नहाने और शेव करने का सामान और छाता इत्यादि वस्तुएं व्यक्ति को अपने निजी उपयोग के लिए अलग से चाहिए होती हैं। पहनने के लिए खाकी या बदरंग वस्त्रों का ट्रैकिंग के दौरान आराम से सदुपयोग किया जा सकता है। शेव का समान न भी ले जाया जाये तो अच्छा रहता है क्योंकि दाढ़ी चेहरे को धूप और ठंडी वायु से झुलसने से बचाती है और सन बर्न का भी भय नहीं रहता। कई प्रकार के झंझटों से मुक्ति भी मिलती है।

कप, प्लेट, टार्च, पेस्ट, ब्रश, डायरी और पढ़ने की सामग्री भी व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार रख सकता है। यदि आईस एक्स साथ में न हो तो एक मजबूत नुकीली छड़ी अवश्य ही साथ में रखें। नदी पार करने के लिए अथवा किसी कठिन ढलान को पार करने के लिए नाईलोन की रस्सी भी साथ में ले लें।

**दवाइयां :** किसी साधारण समस्या के लिए बीमार को दवाई देना आजकल कोई विशेष कठिन कार्य नहीं है क्योंकि बाजार में ऐसी बीमारियों की पेटेंट दवाइयां उपलब्ध हैं। दवाई के रैपर पर भी आवश्यक जानकारी छपी होती है। यदि दल में कोई डाक्टर अथवा ऐसा व्यक्ति हो जिसने प्राथमिक चिकित्सा की ट्रेनिंग ली हो तो बेहतर है।

यदि ऐसा कोई व्यक्ति साथ न हो तो यात्रा प्रारंभ करने से पूर्व किसी डाक्टर को मार्ग में होने वाली संभावित बीमारियों के संबंध में बताकर आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लें और उसे बीमारी के नाम, दवाई के नाम, मात्रा और आवश्यक सावधानियों सहित क्रमवार लिख लें।

यात्रा के दौरान आमतौर पर सिरदर्द, चक्कर आना, उल्टी होना, टट्टियां लग जाना, कब्ज, बुखार, गला खराब होना, पैरों में छाले पड़ जाना और जी मिचलाने की शिकायतें होती हैं। ये बीमारियां थकावट, सांस फूलने और मौसम के शीघ्रता से बदलने के कारण होती हैं। वृक्षों की सीमा रेखा पार करने के बाद हवा में आक्सीजन की कमी हो जाती है जिस कारण उपरोक्त परेशानियां पैदा होती हैं। यदि कोई व्यक्ति जलवायु के अनुरूप अभ्यस्त नहीं होता तो उसे काफी पेरशानी होती है और उस पर किसी दवाई का कोई प्रभाव भी नहीं होता। ऐसी हालत में जरूरी है कि उस व्यक्ति को पुनः निचले स्थान पर ले जाया जाये जहां पर्याप्त मात्रा में आक्सीजन उपबल्ध हो। ऐसे स्थान पर लौटते ही व्यक्ति स्वयं ही स्वस्थ्य होने लगता है।

मार्ग में स्वच्छ जल न मिलने के कारण भी कई बार बहुत परेशानी होती है। ट्रैकिंग करते समय व्यक्ति को बहुत अधिक पसीना आता है और कभी-कभी शरीर में जल की कमी का कारण भी बनता है। शरीर में जल की कमी भी व्यक्ति को बीमार कर देती है। ट्रैकिंग में पानी की बोतल अवश्य ले जानी चाहिए और प्रतिदिन यात्रा शुरू करने से पहले अपनी पानी की बोतल उबले पानी को ठंडा करके भर लें और दिनभर उसी का प्रयोग करें। पश्चिमी देशों के लोग अपनी बोतल में नींबू वाली चाय का प्रयोग करते हैं। ऐसी चाय ट्रैकर्स के लिए बहुत अच्छी होती है।

**कार्यक्रमः** दल को अपनी पूरी योजना बनाने के बाद प्रतिदिन का कार्यक्रम अलग से बनाना चाहिए। हर दिन दल को एक विभिन्न प्रकार का मार्ग तय करना पड़ सकता है। कभी मार्ग में कठिन चढ़ाई तो कभी तंग दर्रे आते हैं। कभी गहरी खाइयां तो कभी तेज बहाव वाली नदियां और नाले पार करने पड़ते हैं। कभी बीहड़ तो कभी जंगल, पथरीले और बर्फीले भू-प्रदेश लांघकर जाना पड़ सकता है। दल को यदि पहले से यह जानकारी हो कि कल की यात्रा कैसी होगी तो उसके लिए आवश्यक तैयारी की जा सकती है। हर पड़ाव पार करने से पहले वाली पूर्व संध्या को सभी सदस्यों द्वारा आने वाले मार्ग के विषय में विचार-विमर्श किया जाना चाहिए कि अगले दिन कैसा भू-प्रदेश पार करना होगा ? उसके लिए कैसे उपकरण एवं वस्त्रों की आवश्यकता होगी ? इस संबंध में दल के नेता द्वारा सदस्यों को विस्तार से बताया जाना चाहिए। हर व्यक्ति को उसके दायित्व सौंप दिये जाने चाहिए ताकि अगले दिन किसी प्रकार की हड़बड़ी न हो। हर आवश्यक वस्तु को पहले से ही निर्धारित

स्थान पर रख लेना चाहिए ताकि आवश्यकता पड़ने पर उसे ढूंढ़ने में कोई कठिनाई न हो। नक्शे में सभी महत्वपूर्ण स्थानों पर निशान लगा लेने चाहिए। मार्ग तय करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सीधे तथा छोटे मार्ग हमेशा सुविधाजनक नहीं होते। सीधी और कठिन चढ़ाई होने के कारण ये व्यक्ति को जल्दी थका देने वाले होते हैं। यदि कोई विवशता न हो तो ऐसे मार्गों की उपेक्षा करनी चाहिए। देखने में ये मार्ग बहुत आसान दिखाई देते हैं परंतु वास्तव में ऐसा नहीं होता।

इस बात का प्रयास करना चाहिए कि सभी सदस्य एक साथ ही यात्रा करें। यदि आगे-पीछे हो भी जायें तो थोड़ी-थोड़ी देर बाद पुनः एकत्र होकर आगे बढ़ना चाहिए। वर्षा, धुंध, ठंड, अंधकार, बर्फ अथवा ऐसी किसी भी अन्य कठिनाई को ध्यान में रखते हुए प्रतिदिन दो-तीन घंटे का अतिरिक्त समय अपने पास रखना चाहिए। पूरे दिन के लिए तय किये जाने वाले मार्ग की दूरी सभी सदस्यों की शारीरिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए निश्चित की जानी चाहिए। नेईस्मिथ का फार्मूला इस विषय में अपनाया जा सकता है। इसके अनुसार प्रत्येक तीन किलोमीटर के लिए एक घंटा और 600 मीटर की चढ़ाई के लिए एक घंटा निर्धारित किया जाये। यदि दल के पास अधिक सामान है तो उसके लिए अतिरिक्त समय की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार धुंध, अंधकार और तेज हवाओं के चलने अथवा ऐसी ही अचानक सामने आने वाली बातों के लिए भी अतिरिक्त समय रखा जाना चाहिए।

मार्ग में लगने वाले समय का अनुमान यदि पहले से ही लगा लिया जाये तो बहुत सी कठिनाइयों और निराशाओं से बचा जा सकता है। यदि अभियान दल का आकार बड़ा हो तो उसे छोटी-छोटी टुकड़ियों में विभाजित किया जा सकता है। हर टुकड़ी में शरीरिक दृष्टि से कुछ कमजोर और कुछ तगड़े व्यक्तियों को शामिल किया जाना चाहिए। इस बात के भी स्पष्ट निर्देश दिये जाने चाहिए कि प्रत्येक टुकड़ी के सदस्य एक साथ रहेंगे और अगले पड़ाव तक एक साथ ही पहुंचेंगे। आवश्यकता पड़ने पर तगड़े सदस्य कमजोर व्यक्ति का सामान उठाकर उन्हें साथ चलने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। जो सदस्य थक जायें उन्हें हर संभव सहायता से उत्साहित करते हुए साथ लेकर ही आगे बढ़ना चाहिए। ऐसे किसी व्यक्ति को किसी भी हालत में पीछे छोड़कर आगे नहीं बढ़ना चाहिए। न ही ऐसे किसी सदस्य का उपहास करना चाहिए।

ट्रैकिंग अपने आप में कला है। जो ट्रैकर इस कला के जानकार होते हैं उन्हें इस खेल में न केवल अधिक आनंद मिलता है बल्कि स्फूर्ति भी मिलती है। यदि प्राकृतिक सौंदर्य का पूरा-पूरा आनंद उठाना हो तो ट्रैकर के लिए यह आवश्यक है कि वह सुरक्षा के सभी नियमों का भली-भांति पालन करे। आवश्यक वस्त्र, उपकरण और अन्य वस्तुएं साथ में हों, हर प्रकार की बाधा का मुकाबला करने की तैयारी हो तो यात्रा आराम से तय की जा सकती है। मौसम, बीमारी और दुर्घटनाओं को

ध्यान में रखते हुए ही योजना बनायी जानी चाहिए। प्रत्येक ट्रैकर के मन में पर्वतों के प्रति पूरी श्रद्धा होनी चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर लौटने अथवा मार्ग बदलने में किसी प्रकार की झिझक अथवा लज्जा अनुभव नहीं की जानी चाहिए। ट्रैकिंग करते समय यदि उपरोक्त बातों को ध्यान में रखा जाये तो यात्रा की सफलता की संभावना तो बढ़ेगी ही, ट्रैकर भी अधिक आनंद उठा पायेंगे।

# 6

# पैकिंग और भार उठाना

किसी व्यक्ति अथवा दल को किसी प्रकार के भू-प्रदेश में किस रास्ते पर ट्रैकिंग करनी है, यह बात सबसे पहले निश्चित की जाती है। जब ट्रैकिंग पर जाने वाले सदस्य मार्ग तय कर लें, सभी आवश्यक उपकरण उपलब्ध हो जायें, खाद्य सामग्री और अन्य जरूरी चीजों को एकत्र कर लिया जाये, मार्ग की आवश्यकताओं के विषय में संबंधित व्यक्तियों को यात्रा की निर्धारित तिथियां सूचित कर दी जायें, तो मान लेना चाहिए कि अब दल यात्रा पर निकलने के लिए पूरी तरह से तैयार है। यात्रा पर जाने से एक दिन पहले सभी सदस्यों को एक स्थान पर एकत्र होकर विचार-विमर्श करना चाहिए। यात्रा की तैयारी की पूरी जानकारी इस बैठक में दी जा सकती है। साथ ही मार्ग में आने वाली संभावित कठिनाइयों पर भी चर्चा की जा सकती है।

युवा वर्ग के सदस्य ऐसी यात्रा को लेकर कुछ अधिक ही उत्साहित होते हैं। अपनी कल्पनाओं में वे मार्ग में मिलने वाले आनंद की रंगीन तस्वीरें बनाने लगते हैं। मार्ग में न जाने क्या-क्या कर गुजरने की उमंगें उनके दिल में पनपने लगती हैं। ऐसी हालत में वे जीवन की वास्तविकताओं और मार्ग की आवश्यकताओं को उपेक्षित कर बैठते हैं। क्या-क्या वस्तु उन्हें चाहिए इस ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। ऐसे सदस्यों को पैकिंग की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए ताकि किसी चीज के छूट जाने के कारण रास्ते में दल के लिए कोई समस्या पैदा न हो।

मार्ग के अनुरूप आवश्यक वस्तुओं का चयन, उनकी पैकिंग और उन्हें लेकर चलने पर यदि ध्यान दिया जाये तो यात्रा दुगनी आनंददायक हो सकती है। यदि एक दो व्यक्ति ही यात्रा पर जा रहे हैं तो उनकी आवश्यकताएं भिन्न होंगी। अगर 15-16 व्यक्तियों का दल जा रहा होगा तो उनकी जरूरतें अलग प्रकार की होंगी। इसी प्रकार यात्रा की अवधि भी महत्वपूर्ण होती है। यात्रा 5-7 दिन की होगी तो कम सामान चाहिए, जबकि 20-21 दिन वाली यात्रा में अधिक वस्तुओं की आवश्यकता होगी। यदि यात्रा लंबी है तो उसके लिए विभिन्न आकार-प्रकार के बर्तन और दूसरी चीजें ले जाना जरूरी होता है। किसी अभियान दल के लिए सारा सामान कुलियों

और खच्चरों की सहायता से ढोया जाता है। कुछ सामान विशेष रूप से व्यक्तिगत चीजें, सदस्य स्वयं उठाते हैं। इस बात का ध्यान रखना बहुत जरूरी होता है कि ठीक व्यक्ति के पास ठीक वस्तु हो ताकि जरूरत पड़ने पर उसे जल्दी से ढूंढ़ा जा सके। जब सदस्य अपनी-अपनी व्यक्तिगत वस्तुएं स्वयं उठा लेंगे तो बाकी सामान अच्छी तरह से पैक करके कुलियों द्वारा उठवाया जाता है। भारी सामान घोड़ों अथवा खच्चरों पर लादा जाता है। यदि सामान को ठीक ढंग से पैक करके लादा जायेगा तो यात्रा की शुरुआत ही सुविधापूर्ण और आनंददायक होगी। पैकिंग करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए :

**व्यक्तिगत वस्तुओं की पैकिंग :** हर रोज प्रयोग में आने वाली चीजों को रखने के लिए ट्रैकर के पास रकसैक का होना बहुत आवश्यक है। चूंकि ट्रैकर को मार्ग पर अपनी सभी वस्तुएं स्वयं ही उठानी होती हैं, इसलिए रकसैक सारे रास्ते उसका सबसे अच्छा साथी होता है। वास्तव में रकसैक तो एक ट्रैकर के लिए पूरा घर ही होता है। प्रातःकाल टूथ ब्रश की आवश्यकता पड़ती है तो रात में स्लीपिंग बैग की। दिनभर के लिए खाद्य सामग्री अथवा आराम के समय पढ़ने के लिए पुस्तक आदि सभी चीजें रकसैक में ही होती हैं। साबुन, तेल, नाश्ते का सामान, भोजन, बर्तन, कपड़े, बिस्तर, जूते सभी तो इसी में समाए होते हैं। अकेले यात्रा करने पर तो इसमें तंबू भी रखना पड़ता है।

रकसैक की पैकिंग बहुत सावधानी से करनी चाहिए ताकि जब भी किसी चीज की आवश्यकता हो उसे आसानी से निकाला जा सके। यह याद रखना भी जरूरी है कि रकसैक में कौन-सी चीज कहां रखी है। इसके अभाव में सारा रकसैक उथल-पुथल हो जाता है जिससे बहुत असुविधा होती है।

**वस्तुओं की सुरक्षा :** रकसैक में हर चीज इस तरह रखनी चाहिए कि वह खराब न हो। न तो उस पर मौसम का विपरीत असर हो और न टूटने-फूटने अथवा गिरने का डर। जिन वस्तुओं के भीगने का डर हो उन्हें अच्छी तरह प्लास्टिक के थैलों में लपेटकर रकसैक में रखना चाहिए। थोड़ी ठोकर से टूटने अथवा टेढ़ी-मेढ़ी होने वाली वस्तुओं को भी अच्छी तरह से लपेटकर कपड़ों की तहों में रखना चाहिए। अच्छा हो कि एक साथ काम में आने वाली वस्तुओं को प्लास्टिक के आवरण में लपेटकर बड़ी जेब में रखकर जिप को ठीक से बंद कर दिया जाये।

**संतुलन :** रकसैक की पैकिंग इस प्रकार की जानी चाहिए कि उसका संतुलन बना रहे, अर्थात वस्तुएं इस प्रकार से रखी जायें कि उनका भार सब ओर एक अनुपात से रहे। यदि सभी भारी वस्तुएं एक ही ओर रख दी जायेंगी तो रकसैक का संतुलन

बिगड़ जायेगा और ट्रैकर को उसे उठाने में भी कठिनाई होगी। वस्तुओं को ठीक से रखकर रकसैक के सभी फीते और जिप इत्यादि बंद कर दी जानी चाहिए ताकि रास्ते में किसी चीज के गिरने की संभावना ही न रहे।

**सुगमता :** जो वस्तुएं निश्चित रूप से रास्ते में नहीं चाहिए उन्हें रकसैक में सबसे नीचे रखना चाहिए। खाने का डिब्बा, पानी की बोतल, कैमरा और दूरबीन इत्यादि ऐसी चीजें हैं जिनकी रास्ते में बार-बार जरूरत होती है। ऐसी चीजों को रकसैक पैक करते समय सबसे बाद में ऊपर रखना चाहिए, ताकि इन्हें निकालते समय पूरा रकसैक न खोलना पड़े। कुछ ऐसी चीजें जिनकी रास्ते में अचानक जरूरत पड़ने की संभावना हो उन्हें रकसैक की बाहर वाली जेबों में रखना चाहिए। इसी प्रकार जरूरतों को ध्यान में रखते हुए अन्य जेबों में भी सामान रखा जाना चाहिए।

**सुविधा :** रकसैक को इस प्रकार से भरा जाना चाहिए कि उसे उठाना बहुत ही सुविधाजनक हो। वस्तुओं को उबड़-खाबड़ रूप सें ठूंसने की अपेक्षा सलीके से रकसैक के रिक्त स्थान के अनुरूप रखा जाना चाहिए। कपड़ों को तह कर रखना चाहिए। यदि रकसैक की पैकिंग सलीके से की जायेगी तो उसे उठाकर आराम से चला जा सकता है। वर्ना ट्रैकर दूसरे साथियों के साथ गति बनाकर नहीं चल पायेगा। इससे उसे भी झुंझलाहट होगी और दल का सारा कार्यक्रम गड़बड़ा जाने की आशंका भी बनी रहेगी।

रकसैक उठाने में यदि संतुलन, सुगमता और सुविधा का मेल होगा तभी यात्रा आरामदायक होगी। संतुलन बेहद जरूरी है क्योंकि इसके बिगड़ने से कभी भी दुर्घटना हो सकती है।

**प्रक्रिया :** रकसैक की पैकिंग करते समय सब सामान सलीके से लगाना चाहिए। सबसे पहले यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि रकसैक के फीतों और सिलाई की मजबूती ठीक है। साथ ही यह भी देख लेना चाहिए कि बकल और जिप ठीक ढंग से काम कर रहे हैं अथवा नहीं। यदि थोड़ा भी संदेह हो तो उसे ठीक करवाकर ही पैकिंग आरंभ करनी चाहिए। सबसे पहले एक बड़ा पोलीथीन बैग लेकर रकसैक के भीतर लगाकर एअर मैटरस को उसके तले पर बिछा देना चाहिए। बैग के दोनों ओर ऐसे वस्त्र और वस्तुएं रखें जिनकी जरूरत रास्ते में शायद न पड़े। खाने का डिब्बा, पानी की बोतल, अतिरिक्त जुराबें, दस्ताने, वायुरोधक कोट और टार्च आदि को बगल की जेबों में रखना चाहिए। कैमरा और दूरबीन को ट्रैकर अपनी गर्दन में लटका सकता है, ताकि मार्ग में जरूरत पड़ने पर बिना रुके हुए उनका प्रयोग किया जा सके।

पढ़ने की सामग्री, डायरी, पैन, साबुन, पेस्ट, ब्रुश और शेविंग किट को प्लास्टिक के किसी थैले में लपेटकर बाहरी जेब में रख लें। तंबू, स्टोव, बिछावन, डिब्बे बंद सामान, एअर मैटरस को ऊपर रख लें। रकसैक में नक्शे, कंपास, चाकू, टिन कटर, फर्स्ट एड बाक्स, मग, प्लेट और बरसाती इत्यादि भी रखने चाहिए। यदि फोम की चटाई हो तो उसे सबसे अंत में फ्लैप बंद करने से पूर्व रखें।

लंबी वस्तुएं जैसे कि तंबू के खंभे खड़े रखे जाने चाहिए। यदि उन्हें भूमि के समानांतर रखा जायेगा तो रास्ते में उनसे बहुत अड़चन होगी। विशेष रूप से संकरे मार्ग पर इससे संतुलन बिगड़ जाने पर दुर्घटना भी हो सकती है। असुविधा तो होती ही है। बहुत तंग रास्तों में गुजरने पर भी लंब रूप में रखे गये पोल कोई दिक्कत पैदा नहीं करते। जिन चीजों के भीग जाने का डर हो उन्हें प्लास्टिक के बैग में लपेटकर रखना चाहिए। सब सामान रखने के बाद बकल और जिप ठीक से बंद करने चाहिए।

रकसैक को ट्रैकर का सबसे अच्छा साथी इसलिए कहा जाता है कि इसमें सारा सामान रखकर वह इसे कंधों पर लटका लेता है। इससे जहां बोझ ले जाने में आसानी होती है, वहां ट्रैकर के हाथ भी खाली रहते हैं। पीठ पर बोझ लदे होने के बावजूद किसी दुर्घटना के समय व्यक्ति हाथों से अपने-आपको गिरने से बचा सकता है। फिसलने की स्थिति में किसी वस्तु को पकड़ सकता है। कैमरे से चित्र उतार सकता है, दूरबीन लगाकर पक्षियों की उड़ान का आनंद उठा सकता है। डायरी में कुछ नोट कर सकता है। और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह अपने सहयोगी का हाथ पकड़कर नदी-नाले अथवा कोई कठिन ढलाव पार कर सकता है। जो व्यक्ति रकसैक न खरीदना चाहें वे एक पिट्ठू और किट बैग खरीद सकते हैं। कुछ सामान पिट्ठू में और बाकी किट बैग में रखकर उसे पीठ पर लादा जा सकता है। किट बैग को चौड़ाई के बल फीतों के नीचे मजबूती से बांधें। कंधे के फीतों पर अतिरिक्त बोझ लटका लें। ऐसी हालत में कंधे वाले फीतों की मजबूती देख लेनी चाहिए कि वे अतिरिक्त बोझ को संभाल पायेंगे अथवा नहीं।

**अन्य वस्तुओं की पैकिंग :** कैंप लगाने, खाने और रसोई के काम आने वाले सामान को सावधानीपूर्वक लकड़ी, टिन के बक्सों एवं किट बैग में पैक करना चाहिए। आटा, चावल, दाल, चीनी, बेसन, सत्तू और सब्जियों को पहले प्लास्टिक के बैग में डालना चाहिए, फिर उन्हें किट बैग अथवा बोरी में बंद करना चाहिए। ऐसा करने पर वर्षा में भी इनके खराब होने का डर नहीं रहेगा। अतिरिक्त सावधानी के रूप में प्रत्येक कुली एवं खच्चर वाले को प्लास्टिक के कुछ अतिरिक्त आवरण दिये जाने चाहिए, ताकि वर्षा आने पर वे अपने-अपने सामान को ढंक सकें।

डिब्बा बंद सामग्री और ऐसी वस्तुएं जो टूट सकती हों, सावधानी से मजबूत टिन अथवा लकड़ी के बक्सों में, घास-फूस अथवा कागज रखकर पैक कराया जाना

चाहिए। बक्सों को बंद करने के लिए उनमें कब्जे और कुंडे हों तो सुविधा रहती है। बिना कुंडों के लकड़ी की पेटियों में पैक सामान एक बार खोलने के बाद दुबारा बंद करते समय परेशानी पैदा करता है। ऐसी पेटियों को उठाने और रखने में भी असुविधा होती है। इन बक्सों अथवा बोरियों का वजन 20-25 किलोग्राम से अधिक नहीं होना चाहिए। साधारणतया इतना ही वजन पहाड़ों पर कुली अपने व्यक्तिगत सामान के अतिरिक्त उठाते हैं। घोड़ों पर सामान ले जाना हो तो प्रत्येक बोझ का वजन 30-35 किलोग्राम तक हो सकता है ताकि एक घोड़े पर दो नग लादे जा सकें। पर्वतीय क्षेत्रों में एक घोड़े पर लगभग 50-55 किलोग्राम तक वजन लादा जाता है। पर सामान का फैलाव अधिक नहीं होना चाहिए।

अच्छी तरह से पैकिंग का महत्व तब मालूम होता है, जब कोई दल दिनभर की यात्रा के बाद थका-मांदा अपने रात्रि पड़ाव पर पहुंचता है। थकावट के कारण अधिकतर लोग किसी चीज को ढूंढ़ने में अतिरिक्त शक्ति लगाने की हालत में नहीं होते इसलिए जरूरी है कि हर बक्से, किट बैग और बोरी पर गाढ़ी लाल स्याही से नंबर एवं निशान लगा दिये जायें।

भीतर रखी सभी चीजों की दो सूचियां बनायी जानी चाहिए और उन पर लिखना चाहिए कि कौन-सी चीज किस बक्से अथवा बोरी में है, ताकि आवश्यकता पड़ने पर तुरंत जाना जा सके कि किस पैक में क्या सामान है ? एक सूची क्वार्टर मास्टर के पास रहनी चाहिए और दूसरी को फाईल में रखना चाहिए ताकि हिसाब-किताब बनाते समय कोई कठिनाई न हो।

कुछ अभियान दल राशन को दिनों के अनुसार विभाजित करके प्रत्येक दिन का अलग-अलग बक्सा बना लेते हैं। उन बक्सों पर दिन अथवा तारीख लिख दी जाती है और हर रोज बारी-बारी से बक्सों को खोलकर सामान का उपयोग कर लिया जाता है। इसमें दल की प्रतिदिन की आवश्यकताओं और खाने के मीनू के अनुसार ही सामान रखा जाता है। इस प्रणाली का सबसे बड़ा लाभ यह रहता है कि हर दिन एक बक्सा कम होता जाता है और दल को अनावश्यक बक्सों को ढोना नहीं पड़ता। यदि इस प्रणाली को अपनाना हो तो दल को चाहिए कि वह एक अतिरिक्त बक्सा रखे जिसमें से वक्त पड़ने पर सामान लिया जा सके और यदि किसी दिन कुछ बच जाये तो उसे इसी बक्से में रखा जा सके, क्योंकि जरूरी नहीं कि प्रतिदिन पूरा सामान उपयोग में आ ही जाये।

**भार ढोना :** पर्वतारोहियों और ट्रैकर्स को कई बार पहाड़ी ख़च्चर की संज्ञा दी जाती है। इसका कारण यह है कि उन्हें सदा ही पीठ पर बोझ उठाए यात्रा करनी होती है। कभी-कभी तो उसे अपने भार से भी अधिक वज़न उठाकर चलना पड़ता है। एक अच्छे ट्रैकर के लिए अच्छा भार वाहक होना बहुत आवश्यक है। यूरोप में क्योंकि

कुली इत्यादि उपलब्ध नहीं होते इसलिए प्रत्येक ट्रैकर को तंबू सहित अपना पूरा सामान स्वयं ही उठाना पड़ता है। भारत, नेपाल, चीन और पाकिस्तान में जहां मुख्य रूप से ऊंचे पर्वत हैं, अभी तक कुली सुगमता से मिल जाते हैं, परंतु इन देशों में भी समाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। ऐसा लगता है कि निकट भविष्य में यहां भी कुली उपलब्ध नहीं होंगे और यदि होंगे भी तो उनकी मजदूरी इतनी अधिक हो जायेगी कि आम आदमी के लिए उन्हें साथ ले जाना संभव नहीं रहेगा। ऐसी स्थिति में यहां पर भी ट्रैकर को अपना-अपना भार स्वयं ही ढोना होगा।

वास्तव में ट्रैकिंग के खेल में भार ढोने की तकलीफ को एक अनिवार्यता मान लिया गया है। इससे न तो बचा जा सकता है और न ही इसके बिना खेल का पूरा आनंद उठाया जा सकता है। कभी-कभी मजबूरी में भी व्यक्ति को अधिक भार ढोने के लिए बाध्य होना पड़ता है। ऐसे उदाहरण सामने आये हैं कि कई बार किसी छोटी-सी बात को आधार बनाकर अथवा किसी मामूली बात से नाराज होकर कुली ट्रैकर अथवा अभियान दल को बीच राह छोड़कर चल देते हैं। ऐसी स्थिति में यदि दल के सदस्यों को अधिक भार ढोने का अभ्यास होता है तो वे अनेक कठिनाइयों से बच जाते हैं और सामान को आपस में बांटकर यात्रा जारी रखते हैं। वर्ना या तो कुलियों की अनुचित मांगों को मानना पड़ता है या उनके गलत व्यवहार को अनदेखा करना पड़ता है। नहीं तो यात्रा बीच में ही स्थगित करनी पड़ती है। यद्यपि ऐसी स्थिति पर्वतीय नैतिकता और इस खेल के नियमों के बिलकुल विपरीत है, पर आज के भौतिकतावादी समाज में नैतिकता की परवाह कितने लोग करते हैं।

अधिक भार ढोना एक तकनीक तो है ही, साथ ही इसके लिए अभ्यास की भी आवश्यकता होती है। ट्रैकिंग के किसी अभियान पर जाने से पूर्व व्यक्ति पीठ पर बोझ ढोने का अच्छा अभ्यास कर ले तो उसे रास्ते में कोई तकलीफ नहीं होगी।

इस बात का प्रयास करना चाहिए कि अपने साथ स्थानीय कुलियों को ही ट्रैकिंग मार्ग पर ले जाया जाये। स्थानीय कुलियों को उस क्षेत्र की अच्छी जानकारी होती है अतः वे ज्ञानवर्धन में भी सहायक होते हैं। उनके माध्यम से ट्रैकर उस क्षेत्र के सामाजिक रीति-रिवाजों, भाषा, खान-पान और रहन-सहन की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी लोक कथाएं और किंवदंतियां होती हैं जो स्थान विशेष के साथ जुड़ी होती हैं। मार्ग में जब ट्रैकर को इनके संबंध में जानकारी मिलती है तो वह रोमांचित हो उठता है और उसकी स्मृतियां सदैव के लिए उस स्थान के साथ जुड़ जाती हैं। इस जानकारी को रिकार्ड कर लेना अथवा डायरी में नोट करना भी आनंद देता है।

स्थानीय कुलियों के लिए भोजन एवं ठहरने के स्थान का प्रबंध करना सुगम होता है। कुलियों की स्थानों एवं भाषा की जानकारी के कारण पूरी यात्रा सुविधापूर्वक

हो सकती है। इसका दूसरा पक्ष भी है—अपना क्षेत्र होने के कारण कई बार ये कुली दल को काफी तंग भी करते हैं। जहां उनको कुछ आर्थिक लाभ होता है वहीं दल को ठहरने एवं खाने के लिए ले जाते हैं। इससे अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

आवश्यक यह है कि ट्रैकर्स को ट्रैक की पूरी जानकारी होनी चाहिए। कहां पर रहने और खाने का अच्छा प्रबंध हो सकता है, इसकी सूचना भी उनके पास हो तो अधिक सुविधा रहती है। खाने का सामान तो हमेशा पास में होना ही चाहिए, क्योंकि कई बार किन्हीं कारणों से दल के लिए समय पर गंतव्य स्थान तक पहुंच पाना कठिन हो जाता है अथवा निश्चित स्थान पर आवश्यक सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाती। ऐसी हालत में भी अधिक भार ढोने की क्षमता सहायक ही होती है। संक्षेप में ट्रैकिंग करते समय भार ढोना एक अनिवार्यता है और प्रत्येक ट्रैकर यदि रकसैक को भार की अपेक्षा अपना मित्र मानकर यात्रा शुरू करेगा तो वह ट्रैकिंग का वास्तविक आनंद उठा पायेगा।

**भार उठाने का तरीका :** साधारणतया एक आम व्यक्ति अपने शरीर के कुल वजन का 40 प्रतिशत बोझ उठा सकता है। ट्रैकिंग करते समय भार उठाना एक तकनीक है जिसके लिए अभ्यास जरूरी है। इसी अभ्यास के कारण व्यक्ति अपने वजन से अधिक भार उठा लेता है। नेपाली और शेरपा लोग अकसर अपने वजन से अधिक बोझ उठाये हुए देखे जा सकते हैं। ये लोग अपनी पीठ पर लदे बोझ को माथे का सहारा देते हैं। इस तरह बोझ ढोने का उन्हें बचपन से अभ्यास होता है। पर्वतों पर रहने के कारण वे बचपन से अपनी दैनिक आवश्यकताओं की सामग्री दूर-दूर से इसी प्रकार लाते ले जाते हैं।

बोझ ढोने के लिए यह जरूरी है कि भारी सामान गर्दन के समीप रखा जाये। टैंट, स्टोव और डिब्बाबंद भारी वस्तुएं रकसैक के ऊपर रखी जानी चाहिए क्योंकि रीढ़ के मध्य से भारी सामान जितना ऊंचा होगा उतना ही उसे उठाने में सुगमता होगी। वजन के गुरुत्व आकर्षण (सेंटर आफ ग्रैविटी) का केंद्रबिंदु कंधों के बीच में पीठ पर होना चाहिए। सारा सामान बराबर अनुपात में बंटा होना चाहिए, ताकि रकसैक का संतुलन बना रहे। रकसैक ढीला और झूलता हुआ बिलकुल नहीं होना चाहिए। इससे संतुलन बिगड़ सकता है और व्यक्ति दुर्घटना का शिकार हो सकता है। पीठ पर भारी बोझा लादकर चलते समय जब कोई लकड़ी का पुल, तंग मार्ग अथवा ढलान पार करनी हो तो अतिरिक्त सावधानी से संतुलन बनाये रखना चाहिए।

एक सामान्य व्यक्ति कंधों पर बंधे फीतों के सहारे आसानी से 25 किलोग्राम तक भार उठा सकता है। कमर पर पेटी बांधकर अधिक बोझा उठाया जा सकता है, क्योंकि इस प्रकार कमर पर अधिक दबाव रहता है और कंधों पर कम। इस प्रकार बोझ उठाते समय व्यक्ति को थोड़ा आगे की ओर झुकना पड़ता है। यदि

और भी भारी बोझा उठाना हो तो माथे पर पट्टे लगाकर वजन को सहारा दिया जा सकता है। इस प्रणाली में व्यक्ति के लिए थोड़ी-थोड़ी देर बाद आराम करना उचित रहता है। पर्वतों पर अधिकतर लोग विशेष रूप से कुली, इसी प्रकार भारी वजन उठाते हैं।

प्रत्येक भू-प्रदेश की यात्रा पर अलग-अलग प्रकार की बाधाएं आती हैं। इसलिए उन पर पहले से ही विचार करना जरूरी होता है। मैदानों की अपेक्षा पर्वतों में ट्रैकिंग करना कठिन होता है। इसमें कदम-कदम पर सावधान रहना पड़ता है। पग-पग पर तंग रास्ते, नदियां और नाले तथा अनेकानेक प्राकृतिक बाधाएं खड़ी दिखाई देती हैं। ऐसी स्थिति में यदि निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाये तो मार्ग की कठिनाइयों पर सहज ही विजय पायी जा सकती है।

प्रायः दोपहर बाद पर्वतों पर मौसम बिगड़ने लगता है। वैसे तो पर्वतों पर मौसम हमेशा ही अनिश्चित रहता है परंतु दोपहर बाद तो मौसम ठीक होने पर भी बादल घिरने लगते हैं और चारों और अंधेरा छाने लगता है। मार्ग में प्रकाश की तो कोई व्यवस्था होती नहीं। तेज हवाएं चलने के कारण सरदी भी बढ़ने लगती है। ऐसी स्थिति में यात्रा करना कठिन होता है। इसलिए ट्रैकिंग के लिए दल को प्रातः बहुत जल्दी चल पड़ना चाहिए ताकि सांझ होने से पहले-पहले अगले पड़ाव तक पहुंचा जा सके। प्रातःकाल यात्रा प्रारंभ करने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इस समय हवा में एक ताजगी होती है जो व्यक्ति को स्फूर्ति से भर देती है। वातावरण बहुत प्यारा और सुहावना होता है। रात्रि विश्राम के बाद व्यक्ति भी एकदम तरोताजा और चुस्त होता है। रात्रि में सरदी के कारण बर्फ पिघलनी बंद हो चुकी होती है, इसलिए नदियों का बहाव थोड़ा धीमा होता है। आकाश साफ होने के कारण यह समय चित्र खींचने के लिए भी अच्छा माना जाता है। इस समय बहुत ही रमणीक एवं सुंदर दृश्य देखने को मिलते हैं। पशु-पक्षी अठखेलियां करते हुए बहुत ही अच्छे लगते हैं। जब यात्रा जल्दी आरंभ की जाती है तो अगले पड़ाव पर जल्दी पहुंचकर दल को तंबू इत्यादि लगाने और भोजन तैयार करने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है।

एक अच्छे ट्रैकर को अपनी यात्रा एक सी गति से पूरी करने की आदत डालनी चाहिए। अनुभवहीन ट्रैकर अपने उत्साह में पहले बहुत तेज चलते हैं और जल्दी ही थक जाते हैं। बाद में उनके लिए चलना कठिन हो जाता है। ट्रैकर को जल्दी चलने की अपेक्षा लंबे डग भरते हुए चलने का अभ्यास करना चाहिए। पैदल चलने का यह मूल सिद्धांत है कि पूरा पैर जमीन पर टिकाकर चला जाये। केवल पंजों के बल पर चलना ठीक नहीं होता। चलते समय अपनी बांहों को अधिक हिलाना-डुलाना नहीं चाहिए क्योंकि इससे अधिक शक्ति खर्च होती है और व्यक्ति जल्दी ही थक जाता है।

ऊंचाई पर चढ़ते समय थोड़ा-सा आगे को झुककर तथा पीठ पर भार का

संतुलन बनाये हुए पैर जमाकर चलना चाहिए। थोड़ी-थोड़ी देर बाद विश्राम करके फेफड़ों को आराम देना चाहिए। यानी सांस को व्यवस्थित कर लेना चाहिए। सीधी चढ़ाई चढ़ने की अपेक्षा तिरछा चलकर ऊपर पहुंचा जाये तो अच्छा रहता है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चलते समय सांस पर पूरा नियंत्रण रहे।

पेड़ों से गिरे पत्तों, गीली जमीन और घास पर चलते समय अतिरिक्त सावधानी बरतें क्योंकि इन पर से फिसल जाने की संभावना हमेशा बनी रहती है। इसी प्रकार ढलानों और पत्थरों पर जमे पानी, नदी के किनारे के पत्थरों एवं चट्टानों की फिसलन से भी सावधान रहें।

जब भी आराम करने का अवसर मिले, लेटकर अथवा बैठे हुए ही अपने पैरों को किसी पेड़ अथवा पत्थर पर ऊंचा टिका लें। इससे सांस पर काबू पाने और थकावट दूर करने में सहायता मिलेगी। भार उठाने एवं चलने के कारण हुई थकान बहुत देर तक नहीं बनी रहती। आराम करते समय भी बदन पर गर्म कपड़े पहने रखें। जहां अधिक हवा चल रही हो वहां पर लेटना अच्छा नहीं है।

ट्रैकिंग प्रारंभ करने से पहले ट्रैकर को अपने आपको वहां की जलवायु के अनुकूल बना लेना चाहिए। जहां से ट्रैकिंग शुरू करनी हो वहां के वातावरण में एक-दो दिन व्यतीत कर लेने और आसपास थोड़ा-बहुत घूमने से शरीर वहां की जलवायु का अभ्यस्त हो जाता है। बहुत से ट्रैकर इस प्रकार से शरीर को अभ्यस्त करने को महत्वपूर्ण न समझने की गलती करते हैं जिस पर उन्हें बाद में पछताना पड़ता है। यह बहुत ही आवश्यक है कि व्यक्ति मैदानी इलाके से ऊपर जाये तो उसे 2300 से 2500 मीटर की ऊंचाई पर रुककर एक-दो दिन अपने शरीर को अभ्यस्त करना चाहिए। इसी के बाद ऊंचे स्थलों की यात्रा पर निकलना अच्छा रहेगा। मैदानों से आते ही चढ़ाई शुरू कर देना उचित नहीं है।

पत्रकार होने के नाते लेखक को एक बार एक ऐसे दल के साथ जाने का अवसर मिला जिसे चंडीगढ़ से वायुयान द्वारा लेह और फिर तुरंत हवाई अड्डे से एक ऊंचे दर्रे पर ले जाया गया। लेखक के विरोध को सहज रूप से अनदेखा करके दल को जीपों में बिठाकर चढ़ाई प्रारंभ कर दी गयी व गंतव्य स्थान पर पहुंचने से पूर्व ही लगभग आधे लोग बेहोशी की हालत में पहुंच गये और ऊपर पहुंचने पर एक भी व्यक्ति ठीक से खड़ा होने की स्थिति में नहीं रहा। तुरंत ही वापस लौटकर कई लोगों को अस्पताल में भर्ती करना पड़ा। भाग्य से उस समय बड़ी मात्रा में आक्सीजन के सिलेंडरों का प्रबंध आयोजकों द्वारा किया गया था। बाद में लेखक को ज्ञात हुआ कि कुछ डाक्टरों ने भी आयोजकों को तुरंत ऊपर जाने के लिए मना किया था और उनकी जिद के कारण ही बड़ी मात्रा में सिलेंडर दल के साथ भेजे गये थे। यह भी पता लगा कि इसी प्रकार की गलती एक वर्ष पूर्व भी की गयी थी और कुछ लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा था।

प्रश्न किया जा सकता है कि ऊंचाई पर जीप के ड्राइवर और दल के साथ जाने वाले अन्य लोगों पर वहां के वातावरण का प्रभाव क्यों नहीं हुआ ? उत्तर है, वातावरण में अभ्यस्त अथवा अनुकूल होना। मानव शरीर की संरचना में यह कमाल है कि वह किसी भी स्थिति के अनुरूप ढल जाता है परंतु इसके लिए कुछ समय लगता है और अभ्यास की आवश्यकता भी होती ही है।

ऊंचाई पर पहुंचने के बाद कई बार कुछ व्यक्तियों को सिरदर्द, थकान और जी मिचलाने अथवा उल्टी होने की शिकायतें होने लगती हैं। वास्तव में ऐसे स्थान पर आक्सीजन पर्याप्त मात्रा में नहीं होती और ऊंचाई पर चढ़ने के कारण व्यक्ति थक जाता है। उसके शरीर को अधिक आक्सीजन की जरूरत होती है। ऐसी हालत में ट्रैकर को चाहिए कि वह धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढ़े। लंबे और गहरे सांस लेते हुए थोड़ी देर बाद आराम भी करना चाहिए। बीमारी की हालत में यदि पीड़ित व्यक्ति पर दवाई का कोई असर न हो तो उसे तुरंत कम ऊंचाई वाले स्थान पर ले जाना चाहिए। यहां हवा में काफी मात्रा में आक्सीजन होने के कारण व्यक्ति तुरंत ठीक होने लगता है। वास्तव में उसे कोई रोग होता ही नहीं। केवल ऊंचा स्थान, जलवायु परिवर्तन और आक्सीजन में कमी के कारण अस्थायी रूप से तबीयत खराब होती है। यहां यह ध्यान रखना जरूरी है कि ऐसी हालत में व्यक्ति को आगे ले जाना घातक सिद्ध हो सकता है। इसलिए उसे नीचे पहुंचने में किसी प्रकार की लापरवाही नहीं करनी चाहिए। इसके लिए एक-दो सदस्यों को पीड़ित व्यक्ति के साथ नीचे छोड़ना भी पड़े तो उन्हें छोड़ देना चाहिए।

मार्ग में कई ऐसे स्थान मिलते हैं जहां ऊपर से बहकर आने वाला चट्टानों का मलबा रास्ता रोके हुए पड़ा रहता है। ऐसे स्थानों पर चढ़ते-उतरते समय सावधानी से काम लेना चाहिए। यदि उस पर जाना अनिवार्य ही हो तो तिरछा चढ़ना इसके लिए सबसे उत्तम उपाय है। इसी रीति से दल के सदस्य मलबे के दोनों ओर से चढ़ते हुए एक बिंदु पर मिलते हैं। उतरते समय भी ऐसे स्थलों पर से फिसलकर नीचे आने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। ऐसे स्थलों पर से घिसटकर नीचे आना आसान और सुविधापूर्ण लगता है। समय भी कम लगता है, परंतु यह दुर्घटना का कारण भी बन सकता है, क्योंकि ऐसे स्थलों का अंत एकाएक होता है और व्यक्ति को संभलने का समय नहीं मिलता। कई बार तो व्यक्ति बहुत नीचे गहरी खाई में गिर सकता है।

ट्रैकिंग, पर्वतारोहण के लिए प्रारंभिक प्रशिक्षण है। जो व्यक्ति सफलतापूर्वक ट्रैकिंग करता है उसे समझ लेना चाहिए कि उसने अपनी मंजिल का आधा मार्ग तय कर लिया। ट्रैकिंग करते समय व्यक्ति को अपनी क्षमता का पूरा-पूरा ज्ञान हो जाता है जो भविष्य में उसके लिए बहुत सहायक सिद्ध होता है।

# 7

# दल का संगठन

भारतवर्ष में ट्रैकिंग की असीम संभावनाओं के बावजूद यह खेल अभी प्रारंभिक अवस्था में ही है। भारतीय युवा यदि अभी इसकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट नहीं हुआ तो इसका मुख्य कारण है हमारा सामाजिक परिवेश। भारत में माता-पिता अपने बच्चों को आवश्यकता से कुछ अधिक ही संरक्षण देते हैं। युवा होने पर भी यहां बच्चों को अपने आप निर्णय करने के योग्य नहीं समझा जाता। किसी प्रकार का जोखिम उठाने की आज्ञा तो माता-पिता कतई नहीं देते। इसके अतिरिक्त हमारा युवा वर्ग अपनी आर्थिक आवश्यकताओं के लिए माता-पिता पर ही निर्भर करता है। जब तक वह स्वावलंबी होता है, तब तक उसे गृहस्थी की समस्याओं में उलझा दिया जाता है। इसलिए उसके लिए किसी ऐसे खेल में रुचि लेना संभव नहीं होता जो जोखिम से भरा हो और साथ ही उसे लंबे समय तक घर से दूर रहना पड़े। युवतियों के लिए तो ऐसे खेल लगभग वर्जित ही हैं। इतना होने पर भी हमारा युवा वर्ग इसके प्रति आकर्षित हो रहा है। यह खुशी की बात है, परंतु देश की आबादी को देखते हुए इस खेल में दिलचस्पी लेने वालों की संख्या नगण्य ही कही जायेगी।



इस खेल में शक्ति, समय और धन तीनों बातों की जरूरत होती है और ये तीनों चीजें एक साथ बहुत कम लोगों के पास होती हैं।

इसी बात को ध्यान में रखकर विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, स्कूल, एन.सी.सी., यूथ होस्टल एसोसिएशन, केंद्रीय और राज्य सरकारें युवा वर्ग को उत्साहित करने के लिए स्वयं ऐसे अभियानों को आर्थिक सहायता देने लगी हैं। इससे युवा वर्ग में तो उत्साह आया ही है, माता-पिता को भी विश्वास होने लगा है कि किसी संकट के समय इन संस्थाओं की ओर से गये लोग उनके बच्चों की सुरक्षा करेंगे।

ट्रैकिंग की योजना बनाने की सामान्य प्रणाली यह है कि सबसे पहले दल के नेता का निर्णय किया जाये। यदि किसी अध्यापक अथवा अनुभवी ट्रैकर को दल का नेता बनाया जाये तो उचित रहता है। नेता सदस्यों की एक बैठक में विचार-विमर्श करके यात्रा पथ का चुनाव, यात्रा की अवधि और अनुमानित व्यय के संबंध में जानकारी एकत्र करता है। मार्ग में उपलब्ध सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए सदस्यों को अलग-अलग कामों का दायित्व सौंपा जाता है। किसी भी अभियान की सफलता तभी सुनिश्चित हो सकती है जब उसका हर सदस्य उसमें पूरी रुचि ले और अपने आपको प्रत्येक गतिविधि के साथ जुड़ा हुआ अनुभव करे।

आयु और क्षमता में अंतर होने के बावजूद दल के सभी सदस्य एक समान होते हैं। उनके अधिकार और दायित्व भी बराबर ही होते हैं। दल का संगठन बनाते समय केवल उन्हीं सदस्यों को अधिक दायित्व सौंपे जाने चाहिए जिन्हें ट्रैकिंग का अधिक अनुभव हो। दल का नेता, उपनेता और क्वार्टर मास्टर ऐसे ही लोगों को बनाया जाना चाहिए। अन्य सदस्यों को धीरे-धीरे अपने दायित्व संभालने का प्रशिक्षण देना भी जरूरी है। इस बात को ध्यान में रखते हुए सदस्यों की रुचि के आधार पर उन्हें भी अभियान दल के कार्यक्रमों के संचालन के साथ जोड़ना चाहिए। सभी सदस्यों की सक्रियता, सहयोग एवं दिया गया दायित्व पूरा करने की इच्छा किसी भी अभियान की सफलता की पहली शर्त है। अभियान के दौरान हर दूसरे दिन सदस्यों की ड्यूटी बदल दी जानी चाहिए ताकि हर एक को हर काम करने का अवसर बारी-बारी से मिल सके। परिस्थितियों को देखते हुए हर व्यक्ति को कोई न कोई काम करना ही चाहिए। काम करने की यह भावना और अनुभव व्यक्ति के लिए भविष्य में बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

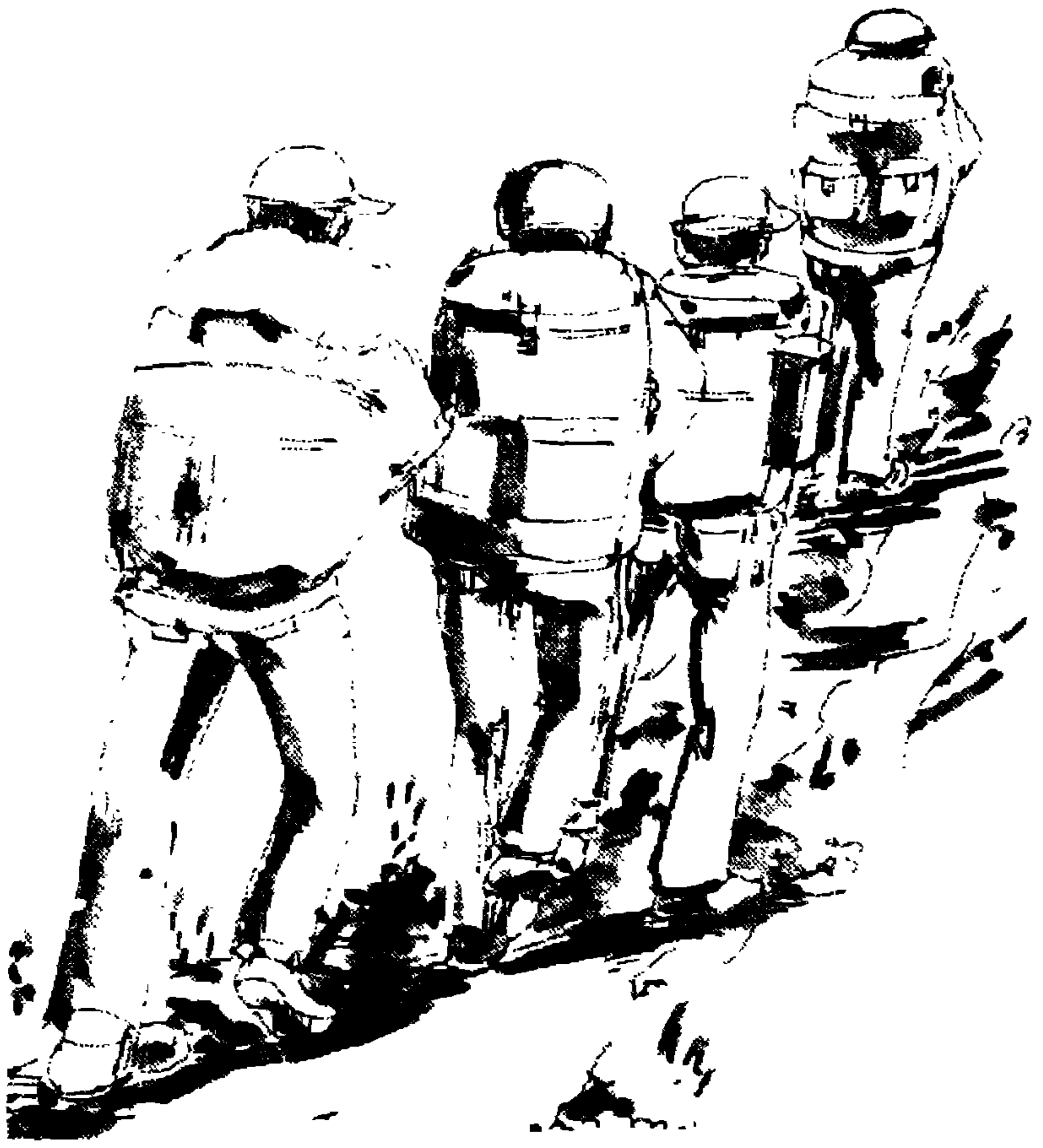
**नेता :** किसी भी अभियान दल के नेतृत्व की जिम्मेदारी केवल उसी व्यक्ति को दी जानी चाहिए जिसे उस क्षेत्र में काफी अनुभव हो। ऐसे व्यक्ति को रास्ते की पूरी जानकारी होनी चाहिए अर्थात उसे ज्ञात होना चाहिए कि मार्ग कैसे भू-प्रदेश से गुजरता है। वहां के लोग कैसे हैं ? उनका रहन-सहन, खान-पान और रीति-रिवाज कैसे हैं ? वे क्या भाषा बोलते हैं और मौसम कैसा रहता है ? रास्ते के महत्वपूर्ण एवं दर्शनीय स्थानों की जानकारी के अतिरिक्त उसे पता होना चाहिए कि मार्ग में कहां-कहां और

क्या-क्या सुविधाएं उपलब्ध हैं ? मार्ग में पड़ने वाले गांवों में यदि उसके कुछ लोग परिचित हों तो और भी अच्छा है।

नेता को सभी सदस्यों का पूरा विश्वास और सहयोग प्राप्त होना चाहिए। उसमें किसी भी स्थिति का धैर्यपूर्वक सामना करने की क्षमता होनी चाहिए। एक मनोवैज्ञानिक की तरह उसे हर सदस्य के मन की बात भांप लेने की कला आनी चाहिए। उसमें इतना आत्मविश्वास और धैर्य होना चाहिए कि वह बिना घबराहट प्रत्येक समस्या को इस प्रकार से हल करे कि उसका निर्णय और व्यवहार किसी भी सदस्य को बुरा न लगे।

दल के नेता को, मार्ग में केवल नेतृत्व ही नहीं करना होता वरन सदस्यों की हर प्रकार की समस्याओं की ओर भी ध्यान देना होता है। उसे इन समस्याओं का हल भी प्रस्तुत करना पड़ता है। प्राकृतिक बाधाओं के अतिरिक्त सदस्यों की थकान, घबराहट और परस्पर असहयोग की भावना से यात्रा के दौरान अनेक कठिनाइयां उठ खड़ी होती हैं। ऐसी कठिनाइयों और निराशाजनक परिस्थितियों में से गुजरते हुए उसे अपना दिमाग ठंडा बनाये रखने में निपुण होना चाहिए। सफलतापूर्वक हर कठिनाई को दूर करते हुए उसे निरंतर सदस्यों का उत्साह भी बढ़ाते रहना चाहिए।

किसी अभियान दल का नेतृत्व करना बहुत ही जिम्मेदारी का काम है। नेता की भूमिका इसलिए भी विकट होती है कि उनके पास आदेश मनवाने की शक्ति तो होती नहीं। उसे तो सारा काम अपनी सूझबूझ, निपुणता और दूरदर्शिता से ही निकालना होता है। एक अच्छा नेता पूरे अभियान के सफल संचालन के लिए अपने दायित्वों का अनेक लोगों में बंटवारा कर देता है और अपनी सहायता के लिए उपनेता भी नियुक्त करता है।



दल के नेता के लिए यह आवश्यक है कि यात्रा पर निकलने से पूर्व वह हर सदस्य के उपकरणों की स्वयं जांच-पड़ताल करके देखे कि उनमें कोई कमी तो नहीं है। यात्रा प्रारंभ करते समय उसे अपनी पूरी योजना सदस्यों को समझा देनी चाहिए। वह इस बात का भी ध्यान रखता है कि अपेक्षाकृत कमजोर सदस्यों को सबसे आगे रखा जाये ताकि पूरा का पूरा दल एक साथ आगे बढ़े और कोई भी निराश न हो। दल के नेता

द्वारा सदस्यों को रास्ते के दर्शनीय स्थलों की जानकारी दी जाती है और विश्रामस्थलों के विषय में बता दिया जाता है।

दल के नेता को हर संभव प्रयास करके दल के सभी सदस्यों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। समय-समय पर उसे मार्ग में अपनाए जाने वाले सुरक्षा के तरीकों के संबंध में बताते रहना चाहिए। यात्रा प्रारंभ करते समय उसे अपने अभियान के संबंध में पूरी जानकारी पीछे छोड़नी चाहिये तथा वापस लौटने की संभावित तिथि के बारे में भी बताना चाहिए। मार्ग में दल कहां-कहां रुकेगा, और उनसे कहां और कैसे संपर्क किया जा सकता है इस विषय में भी पूरी सूचना देनी चाहिए। दल के नेता का यह दायित्व है कि वह मार्ग में स्वयं चैक-पोस्ट, पुलिस चौकियों और डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय में अपनी यात्रा का ब्यौरा देता हुआ चले। उसे यह सूचना भी देते रहना चाहिए कि मदद के समय उन तक कैसे पहुंचा जा सकता है। नेता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हर आधे घंटे के बाद सदस्य कहीं रुककर अपने रकसैक इत्यादि ठीक कर लें और अनावश्यक वस्त्र उतार दें। उसे चाहिए कि प्रत्येक बाधा को पार करने से पहले वह पूरे दल को फिर से एकत्र करे और इस बात का अनुमान लगा ले कि क्या दल के सभी सदस्य इस बाधा को पार करने में सक्षम हैं। यदि इसका उत्तर हां में हो तभी उसे दल को आगे बढ़ने के लिए कहना चाहिए, अन्यथा उसे कोई दूसरा विकल्प खोजना चाहिए। बाधा पार करने के बाद भी सभी सदस्यों की स्थिति का आकलन करना अच्छा रहता है। उसे चाहिए कि वह मार्ग में हर महत्वपूर्ण जानकारी से दल के सदस्यों को अवगत करवाता हुआ आगे बढ़े।

**उपनेता :** दल के उपनेता का दायित्व भी नेता से कुछ कम नहीं होता, दरअसल उसे नेता से भी अधिक भाग-दौड़ करनी पड़ती है। इसलिए शारीरिक दृष्टि से सक्षम और भागदौड़ कर सकने वाले व्यक्ति को ही उपनेता बनाया जाना चाहिए। जब दल का नेता नेतृत्व करते हुए आगे-आगे चलता है तो उपनेता सबसे पीछे रहकर पूरे दल की देखभाल का जिम्मा संभालता है। उसे इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी सदस्य पीछे न छूट जाये। इसके लिए दल को एक साथ रखने के लिए उसे निरंतर प्रयास करते रहना चाहिए। किसी भी सदस्य के सामने जब कोई कठिनाई आती है तो उसका दायित्व है कि वह उसके विषय में नेता को सूचित करे।

किसी भी दल में अलग-अलग रुचियों, विषयों की जानकारी और अनुभव वाले लोग होते हैं। दल के उपनेता को चाहिए कि वह ऐसे लोगों को एक-दूसरे से मिलवाये अथवा स्वयं जानकारी प्राप्त करके दल के अन्य सदस्यों को भी बताये। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य को दूसरे सदस्य के ज्ञान का लाभ मिलता रहता है। यदि

कोई विशेष बात देखने में आती है तो उस विषय के विशेषज्ञ को चाहिए कि वह जानकारी सभी सदस्यों को दे। इस कार्य के लिए उपनेता एक विशेष भूमिका निभा सकता है। उपनेता का मुख्य कार्य दल के सदस्यों में तालमेल बिठाना ही है। इसके अतिरिक्त सदस्यों एवं नेता की अनुपस्थिति में उसे दल का नेतृत्व करना ही पड़ेगा, इस बात को ध्यान में रखते हुए उसे हर जानकारी अपने पास रखनी चाहिए।

**भोजनालय प्रबंधक :** ज्यों ही दल अपनी प्रारंभिक तैयारी की बैठक में सदस्यों की संख्या और दिन तय करता है, एक भोजनालय प्रबंधक अर्थात कवार्टर मास्टर की नियुक्ति भी कर दी जानी चाहिए। क्वाटर मास्टर को चाहिए कि वह खाने की समाग्री की सूची तैयार करके उस पर होने वाले व्यय का अनुमान नेता को बता दे। बाद में क्वार्टर मास्टर द्वारा ही मार्ग के लिए खाने-पीने की वस्तुएं खरीदी जाती हैं। वही यह भी निश्चित करता है कि कौन-सी खाद्य सामग्री साथ में लेकर चलना है और कौन-सी मार्ग में खरीदनी है। रसोई के लिए बर्तन एवं रसोइए इत्यादि का सभी काम क्वार्टर मास्टर के जिम्मे होता है। मार्ग में भी वह प्रतिदिन का मीनू निश्चित करके भोजन की व्यवस्था करवाता है। जहां वह अपने प्रत्येक कार्य के लिए दल के नेता को सूचित करता रहता है, वहीं एक-दो सदस्यों को अपनी सहायता के लिए भी नियुक्त कर लेता है।

**परिवहन अधिकारी :** दल में एक परिवहन अधिकारी भी नियुक्त किया जाना चाहिए जो यात्रा में होने वाले व्यय की जानकारी एकत्र करे। परिवहन अधिकारी इस बात की योजना बनाता है कि कहां से कहां तक यात्रा कैसे करनी है ? एक स्थान तक यदि बस अथवा रेल से जाना है तो वह किराये इत्यादि का पता करके आवश्यक सीटें आरक्षित करवा लेता है। मार्ग में कुलियों अथवा घोड़ों की आवश्यकता का अनुमान लगाकार वह इनका प्रबंध करता है। परिवहन की दृष्टि से जितना व्यय का संबंध होता है उसका लेखा-जोखा रखने का दायित्व परिवहन अधिकारी का ही होता है।

**वित्त अधिकारी :** यदि दल किसी संस्था से वित्तीय सहायता प्राप्त करता है तो वित्त अधिकारी की विशेष रूप से आवश्यकता होती है, क्योंकि ऐसी संस्था को यात्रा के अंत में आय-व्यय का पूरा ब्यौरा देना होता है। यात्रा से पहले भी अनुमानित खर्च की पूरी सूची वित्त अधिकारी ही बनाता है। वैसे भी अभियान पर होने वाले आय-व्यय का हिसाब-किताब रखना उचित रहता है। इससे जहां अन्य कई बातों में आसानी होती है, वहीं सदस्यों में परस्पर मन-मुटाव भी नहीं होता। हिसाब-किताब साफ रखने से किसी को इस बात की शिकायत नहीं रहती कि उनके द्वारा दिया

गया धन कहां गया ? यदि अभियान दल ने किसी सरकारी संस्थान से धन लिया है तो उनको अपना लेखा-जोखा किसी चार्टड एकाउंटेंट से ऑडिट करवाकर देना होता है। ऐसी स्थिति में वित्त अधिकारी को चाहिए कि वह जिसे भी पैसा दे उससे पूरा ब्यौरा प्राप्त करके लिख ले ताकि बाद में कोई समस्या ही न हो।

इसी प्रकार किसी दूसरे सदस्य को उपकरण खरीदने अथवा किराये पर लेने का दायित्व सौंपा जाना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को उन सभी जगहों की सूची बनानी चाहिए जहां से ये उपकरण प्राप्त किये जा सकते हैं। उसे मूल्य अथवा किराये का पूरा-पूरा ब्यौरा भी बनाना चाहिए।

**सदस्य :** दल का प्रत्येक सदस्य दल की इकाई होने के कारण सबसे महत्वपूर्ण होता है इसलिए अभियान की सफलता में उसका विशेष योगदान रहता है। सदस्यों को अपने दायित्वों का पूरी तरह से निर्वाह करना चाहिए। उन्हें दल के नेता के निर्देशों को पूरी तरह से अमल में लाना चाहिए। यदि किसी बारे में कोई संदेह हो, अतिरिक्त जानकारी चाहिए हो, अथवा उसके विषय में अपना अलग मत हो तो, शाम को अगले दिन के कार्यक्रम पर विचार-विमर्श करते समय अपनी बात सामने रखनी चाहिए। यदि हम दूसरों से सहयोग की अपेक्षा करते हैं तो हमें दूसरों को सहयोग देना भी चाहिए। इस आदर्श वाक्य को जीवन में तो हमेशा याद रखना ही चाहिए जबकि ट्रैकिंग के दौरान इसे एक क्षण भी भुलाना नहीं चाहिए। किसी दूसरे सदस्य अथवा नेता की पीठ पीछे बुराई नहीं करनी चाहिए। इससे यात्रा का सारा आनंद ही समाप्त हो जायेगा, क्योंकि इस प्रकार की बातों से गलतफहमियां पैदा होती हैं और आपसी व्यवहार में कटुता आने लगती है।

प्रत्येक सदस्य को ट्रैकिंग के नियमों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। नियमों का पालन करते हुए कहीं भी अकेले नहीं जाना चाहिए क्योंकि ऐसे में यदि कोई दुर्घटना हो जाये तो दल को उसकी जानकारी देने वाला कोई नहीं होगा। यदि कोई सदस्य अस्वस्थ अनुभव कर रहा है तो उसे तुरंत इसकी जानकारी दल के नेता को देनी चाहिए। तभी जल्दी से दवाइयों का प्रबंध किया जा सकेगा और ऐसे सदस्य को उठाकर साथ ले चलने की व्यवस्था भी करनी चाहिए।

किसी भी दशा में अपने-आपको दल से अलग नहीं मानना चाहिए। सारा का सारा कार्य दलीय भावना से किया जाना चाहिए। सुख और दुख में सारे सदस्य बराबर के भागीदार हों इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए। चूंकि यात्रा में प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग रुचियों, क्षमताओं एवं आयु वाले लोगों के साथ हर समय रहना है, खाना है, चलना है इसलिए परस्पर सहयोग की भावना हर सदस्य में बेहद जरूरी है। सहयोग की यही भावना भावी जीवन में सफलता की सीढ़ी सिद्ध हो सकती है।

पर्वतों पर ट्रैकिंग करना मैदानों की अपेक्षा कठिन होता है। पहाड़ों पर कदम-कदम पर नदी-नालों, ढलानों और तंग दर्रों को पार करना पड़ता है, इसलिए सदस्यों को परस्पर सहयोग एवं सद्‌भावना के साथ सावधानीपूर्वक दल के नेता के निर्देशों का पालन करते हुए यात्रा करनी चाहिए।

# 8
# बाधाएं

ट्रैकिंग करते समय ट्रैकर को कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। ट्रैकिंग करने के लिए जब व्यक्ति घर से बाहर कदम रखता है तो उसे ज्ञात होता है कि आने वाले 20-25 दिन उसे दल के अपरिचित सदस्यों के साथ दुर्गम स्थलों पर व्यतीत करने होंगे। उसे इस बात की जानकारी होती है कि घर से बाहर का जीवन घर जैसा सुविधापूर्ण नहीं होगा। खाने और रहने के संबंध में आने वाली कठिनाइयों के लिए वह स्वयं को तैयार करके ही बाहर निकलता है। इनके अतिरिक्त कठिन भू-प्रदेशों में तेज गति से बहने वाली नदियां, अनिश्चित मौसम, अलग-अलग व्यवहार करने वाले कबीले और प्रकृति के अजीबो-गरीब रंग भी बाधा के रूप में मिलते हैं। निराशा, असुविधा और असफलता से बचने के लिए यह जरूरी है कि ऐसी बाधाओं को पार करने की तैयारी पहले से कर ली जाये। यदि ट्रैकर के पास ऐसी जानकारी पहले से होगी तो वह अपने-आपको मनोवैज्ञानिक रूप से मुकाबले के लिए तैयार रखेगा।

एक अच्छे ट्रैकर के लिए आवश्यक है कि वह अपना हर कदम सोच-समझकर उठाये और कोई भी जोखिम उठाने से पहले पूरी स्थिति को माप-तोल ले। पर्वतों में अधिकतर दुर्घटनाओं का कारण दिखावा ही होता है। कभी-कभी अज्ञानता और हठधार्मिता भी ऐसी दुर्घटनाओं का कारण बनती है। ट्रैकिंग से संबंधित नियमों का पालन करने से कई दुर्घटनाओं से बचा जा सकता है। पर्वतों पर आने वाली समस्याओं और उनसे बचाव के तरीकों की पूर्व जानकारी भी इस प्रकार की दुर्घटनाओं को कम करने में सहायक हो सकती है।

**नदी-नाले :** पर्वतीय भू-प्रदेश में नदी-नालों की सुंदरता किसी भी ट्रैकर का मन मोह लेती है। इनकी कलकल करती ध्वनि व्यक्ति के कानों में मधुर संगीत भर देती है। परंतु यदि इन नदी-नालों को सावधानीपूर्वक पार न किया जाये तो ये जानलेवा भी हो सकते हैं। मैदानी क्षेत्रों के विपरीत ये नदी-नाले देखने में बहुत ही छोटे लगते



हैं जबकि इन्हें पार करना कठिन होता है। इनका बहाव तेज और पानी बर्फ की भांति ठंडा होता है। नदी-नालों में जो पत्थर होते हैं वे फिसलन से भरे होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि उनकी गहराई का अनुमान लगाना संभव नहीं होता। मैदानों की तरह यहां नदियों की तलहटी एक समान नहीं होती।

जो लोग पहली बार पर्वत पर आते हैं वे इन नदियों को बहुत छोटी समझकर इनकी उपेक्षा कर देते है। ऐसी नदियों को पार करना उन्हें चुटकियों का काम लगता है क्योंकि उन्होंने तो मीलों चौड़े पाटवाली नदियों को पार किया होता है। ऐसी हालत में दुर्घटनाओं की संभावना बढ़ जाती है, क्योंकि ऐसी किसी भी नदी में एक बार फिसलकर गिर पड़ने के बाद उठना कठिन होता है। नदी के तेज बहाव के कारण व्यक्ति बहुत तेजी से बहता हुआ चट्टानों से टकराता है। फिसलन और पानी की शीतलता के कारण उसका खड़ा हो पाना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में मौत भी हो सकती है।

**सावधानियां :** पर्वतों में नदी-नालों की चौड़ाई कम होती है। इसलिए अनेक स्थानों पर स्थानीय लोग लकड़ी अथवा पत्थर के पुल बना लेते हैं। नदी-नाले पार करने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि ऐसे पुलों की खोज करके इन्हें पार किया जाये। पार करने से पहले ऐसे पुलों की मजबूती की जांच अवश्य कर लेनी चाहिए। पुल न होने की स्थिति में ऐसे स्थान की खोज करनी चाहिए जहां इनकी चौड़ाई इतनी कम हो कि इन्हें कूदकर पार किया जा सके। यदि ऐसा स्थान दिखाई न दे तो रस्से



का पुल बनाकर इन्हें पार जाया जा सकता है।

रस्से की सहायता से नदी पार करने के लिए पहले किसी बड़े पेड़ अथवा चट्टान के साथ रस्से का एक सिरा मजबूती से बांधना चाहिए। दूसरे सिरे के साथ एक सदस्य को बांधकर नदी पार करने के लिए भेजना चाहिए। आवश्यकतानुसार वह व्यक्ति धीरे-धीरे चलता हुआ अथवा तैरकर नदी पार कर सकता है। जब वह व्यक्ति नदी में हो तो किनारे पर रस्सा पकड़ने वाले सदस्यों को चाहिए कि वे धीरे-धीरे किनारे पर रस्से को उतनी ही ढील दें जितनी नदी पार करने वाले सदस्य को चाहिए। अधिक ढील देने से दुर्घटना की संभावना रहती है और कम ढील देने से उसे नदी पार करने में दिक्कत होती है। जब वह दूसरे किनारे पर पहुंच जाये तब उसे चाहिए कि वह दूसरा सिरा किसी बड़े पेड़ अथवा पत्थर के साथ बांध दे। इस प्रकार नदी पर रस्से का पुल बनाया जायेगा जिसके सहारे सभी सदस्य नदी पार कर सकेंगे। अंतिम व्यक्ति रस्से को खोलकर अपनी कमर में बांध लेगा और पहले सदस्य की भांति अन्य लोगों की मदद से दूसरे किनारे पर पहुंचेगा।

यदि हर व्यक्ति नदी में से होकर दूसरे किनारे पर न पहुंचना चाहता हो अथवा पानी के बहाव या ठंडे होने के कारण कोई समस्या हो तो शेष सदस्य रस्से के पुल के सहारे नदी पार कर सकते हैं। इस विधि में भी उपरोक्त विधि के अनुसार ही पहला सदस्य नदी पार करता है। इस किनारे का रस्सा ऊंचाई पर बांधा जाता है, जबकि दूसरे किनारे पर पहुंचकर वह सदस्य रस्से को नीचे की ओर बांधता है। इस प्रकार रस्से में ढलान बन जाती है। अब प्रत्येक सदस्य रस्से में कैराबिनर (अंडाकार आकृति का अल्मूनियम अथवा लोहे का बना एक स्प्रिंगदार कड़ा होता है जिसे आसानी से रस्से में फंसाकर उसके सहारे लटका तथा फिसला जा सकता है) के साथ एक स्लिग (छः फुट की मजबूत रस्सी होती है जिसे बांधकर व्यक्ति उसमें बैठ सकता है) लटकाकर उसमें बैठकर दूसरे किनारे की ओर सरकना शुरू करता है। अंतिम सदस्य को रस्सा खोलकर पहले की भांति ही पानी में से होकर आना होता है।

नदी-नालों को घोड़े और खच्चर के सहारे से भी पार किया जा सकता है। जब दल के साथ घोड़े हों तो उनका उपयोग इसके लिए किया जा सकता है। पानी ज्यादा हो तो घोड़ों को नदी में नहीं उतारना चाहिए।

नदी-नाले पार करते समय सबसे बड़ी सावधानी यही है कि उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। दूर से देखने पर उनका सौंदर्य मन को भाता है, पर गलती होने पर वे निर्दयी सिद्ध हो सकते हैं। उन्हें पार करने के लिए हर प्रकार के सुरक्षा उपायों का प्रयोग जरूरी है।

**पर्वतीय मौसम :** पर्वतों पर किसी भी कार्यक्रम की सफलता अथवा असफलता मौसम पर निर्भर करती है। मौसम का मिजाज बिगड़ा हुआ हो तो अच्छे से अच्छा पर्वतारोही

भी आगे नहीं बढ़ सकता। पर्वतों पर मौसम हमेशा अनिश्चित रहता है और उसकी कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। इस पर मौसम क्षण-क्षण में बदलता है। कुछ ही देर में पसीना बहा देने वाला मौसम ठिठुरन पैदा करने वाला बन जाता है। तापमान इतनी तेजी से बदलता है कि मैदानी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए उसकी कल्पना करना भी संभव नहीं है।

वर्षा, तूफान, सरदी, अंधकार, कोहरा और बिजली ट्रैकर के मार्ग में बाधाएं बनकर खड़े रहते हैं। इन बाधाओं का मुकाबला करने के लिए आवश्यक वस्त्रों के अतिरिक्त ट्रैकर को मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से भी अपने आप को तैयार करना चाहिए। रेडियो पर मौसम के संबंध में जो भी भविष्यवाणी हो रही हो कम से कम पर्वतों में उन पर पूर्ण विश्वास न किया जाये क्योंकि पहाड़ों का अपना मौसम होता है।

**सावधानियां :** ट्रैकिंग पर जाने से पूर्व हर प्रकार के मौसम का सामना करने की तैयारी करनी चाहिए। उसी के अनुरूप कपड़े और दूसरी चीजें साथ लेनी चाहिए। भले ही ट्रैकिंग गरमी के मौसम में की जा रही हो, गरम कपड़े अवश्य ही साथ में रखने चाहिए। ऊनी स्वैटर, टोपी, मोजे, दस्ताने और वायुरोधक वस्त्र पर्वतों में बहुत सहायक होते हैं और मौसम में तेजी से होने वाले परिवर्तनों में व्यक्ति की रक्षा करते हैं। पर्वतों में रात के समय तापमान में बहुत गिरावट आती है। वर्षा की संभावना हमेशा बनी रहती है, इसलिए छाता एक सच्चा साथी सिद्ध होता है। यह न केवल बारिश, बर्फ और धूप से रक्षा करता है, बल्कि इसे एक छड़ी के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

कोहरे, बादलों और बर्फ के गिरने से कई बार एकाएक घना अंधेरा हो जाता है जो बहुत खतरनाक हो सकता है। ऐसी स्थिति में यात्रा स्थगित करके दल को एक स्थान पर रुक जाना चाहिए और मौसम साफ होने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। यदि शाम होने तक भी मौसम ठीक न हो तो वहीं रात व्यतीत करने के लिए कैंप लगा लेना उचित है। अगली सुबह अधिक दूरी तय करके पिछले दिन की कमी को पूरा किया जा सकता है, वर्ना तूफान में फंसकर भटकने से अथवा दुर्घटनाग्रस्त होने से पूरी यात्रा ही स्थगित करनी पड़ सकती है।

तूफान आये तो तुरंत आश्रय खोजना चाहिए और तब तक बाहर नहीं निकलना चाहिए जब तक तूफान समाप्त न हो जाये। ऐसी स्थिति में किसी गुफा का आश्रय बहुत ही अच्छा रहता है। कोई बड़ी-सी चट्टान भी छिपने का अच्छा स्थान हो सकती है। धैर्य नहीं खोना चाहिए, क्योंकि ऐसे तूफान बहुत अधिक समय तक नहीं रहते। यदि बिजली चमक रही हो तो किसी लंबे पेड़ अथवा नुकीली चट्टान के पास आश्रय नहीं लेना चाहिए क्योंकि ये बिजली को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। जब बिजली

गिरने वाली होती है तो धातु की वस्तुएं ध्वनि पैदा करती हैं और सिर के बाल खड़े हो जाते हैं। ऐसे समय में धातु की वस्तुओं से दूर ही रहना चाहिए। रात में भी धातुओं से बनी वस्तुएं अपने से दूर रखकर ही सोना चाहिए। बिजली खुले स्थान में खड़ी किसी नुकीली वस्तु पर गिरती है। इसलिए घुटनों और कोहनियों के बल किसी नीची जगह पर छिपना उचित होता है।

**भूस्खलन :** पर्वतों पर अधिक ढलाव, भारी वर्षा, बिजली गिरने और भूमि के कटाव से भूस्खलन अर्थात लैंड स्लाईड होता ही रहता है। भूस्खलन का अभिप्राय ऐसी धरती के खिसकने से है जो अपने साथ मिट्टी, पत्थर, पेड़-पौधे और पानी इत्यादि को ऊंचाई से नीचे की ओर लाती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति के लिए उस स्थान को पार करना कठिन हो जाता है जहां भूस्खलन हुआ हो। ट्रैकिंग के मार्ग में कहीं न कहीं ट्रैकर को लैंड स्लाईड का सामना करना ही पड़ता है। ऐसे स्थलों को बहुत ही सावधानी के साथ पार करना चाहिए। ऐसे भूस्खलन के कारण कई बार इतने बड़े-बडे पेड़ और पत्थर नीचे आने लगते हैं कि सहसा विश्वास ही नहीं होता। जब भी पर्वतों के ऊपरी भागों में वर्षा होती है अथवा तेज हवाएं चलती हैं तो भूस्खलन होने लगता है। तब बड़ी मात्रा में मलबा और पानी बहकर नीचे आने लगता है और मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इस अवरोध को पार करने के लिए ट्रैकर को बहुत अधिक सावधानी और सतर्कता की आवश्यकता होती है।

**सावधानियां :** लैंड स्लाईड के क्षेत्र को एक-एक करके पार करें। जब एक सदस्य इसे पार कर रहा हो तो अन्य सदस्यों को चाहिए कि वे उसे निर्देश देते रहें। ऊपर से आने वाले किसी पत्थर एवं अन्य ऐसी ही चीजों के प्रति उसे सचेत करें। खतरे की चेतावनी मिलते ही पार करने वाले सदस्य को तुरंत ही अपना बचाव करने के लिए आवश्यक कदम उठाने चाहिए। जब पहला सदस्य पार चला जाये तो उसे अपने दूसरे साथियों की इसी प्रकार से सहायता करनी चाहिए। इसी तरीके से एक-एक करके सभी सदस्यों को सावधानी से वह स्थान पार करना चाहिए। इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि दल के सभी सदस्य एक ही साथ ऐसे स्थान को पार करने का प्रयास न करें। ऐसे प्रयासों के गंभीर परिणाम हो सकते हैं। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अधिक बोझ पड़ने के कारण पूरा का पूरा मलबा नीचे गहरी खाई अथवा नदी की ओर सरक सकता है।

किसी कारणवश, जब कोई व्यक्ति ऐसे स्थल के आधबीच हो और ऊपर से कोई पत्थर अथवा पेड़ इत्यादि आने लगे अथवा पुनः लैंड स्लाईड शुरू हो जाये तो उसकी आवाज सुनते ही अथवा अपने साथियों से चेतावनी पाते ही उसे चाहिए कि वह अपने पास आने वाली वस्तु की गति का अनुमान लगाये और उसकी पहुंच

से दूर हो जाये। ऐसी दशा में व्यक्ति की सतर्कता और उसकी तत्काल निर्णय लेने की क्षमता, आने वाली वस्तु की गति एवं दिशा के संबंध में ठीक-ठीक अनुमान से ही उसके प्राणों की रक्षा हो सकती है।

यदि लैंड स्लाईड में पानी और कीचड़ की मात्रा अधिक हो तो उचित है कि पत्थरों पर चलते हुए अथवा छलांग लगाते हुए उसे पार किया जाये। ऐसी हालत में धरातल की मजबूती और मलबे की मोटाई का पहले से अनुमान लगा लेना आवश्यक है। एक-दूसरे को रस्सी से बांधकर लैंड स्लाईड पार करने की भूल कभी नहीं करनी चाहिए। एक-एक करके ही इसे पार करना उचित होता है, भले ही इसमें कुछ अधिक समय लगे। यदि एक ही रस्सी से अधिक लोग बंधे हों तो इस बात की पूरी संभावना है कि दुर्घटना होने पर वे सभी उसके शिकार हो जायें। एक व्यक्ति की गलती की सजा, अन्य सदस्यों को भी भुगतनी पड़ सकती है। अतः यदि संभव हो तो ऐसे स्थल को भी नदी-नालों की तरह से ही रस्सा बांधकर पार करने का प्रयास करना चाहिए परंतु एक समय में एक से अधिक लोगों द्वारा उसे पार करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

इस बात की कोशिश करनी चाहिए कि भूस्खलन के उद्गम के नजदीक से ही उसे पार किया जाये ताकि यदि कोई पत्थर ऊपर से आ ही गिरे तो उसकी गति कम होने के कारण कम से कम चोट लगने की संभावना रहे। यदि कोई सदस्य भूस्खलन के मध्य फंस ही जाये और सुरक्षा के लिए भाग पाना भी संभव न हो, तो उसे अपने



गिरते पत्थर

सिर पर रकसैक रखकर सिर पर आने वाली किसी भी चोट से अपने आप को बचाना चाहिए क्योंकि सिर पर लगने वाली चोट बहुत घातक सिद्ध हो सकती है। यदि संभव हो तो हैलमेट पहनकर अथवा सिर पर कोई चादर इत्यादि लपेटकर ही लैंड स्लाइड को पार करें।

**गिरते पत्थर :** भूस्खलन की ही भांति रास्ते पर ऊपर से गिरते हुए पत्थर ट्रैकिंग दलों के लिए गंभीर समस्याएं पैदा कर सकते हैं। ये पत्थर विभिन्न कारणों से गिरते हैं। भूस्खलन के कारण भी ये पत्थर निरंतर ऊपर से नीचे की ओर आते रहते हैं। रात में सरदी के कारण पत्थरों के नीचे पानी जम जाता है। दिन में सूरज की गरमी पाकर जब वह जमी हुई बर्फ पिघलती है तो पत्थर भी साथ में लुढ़कने लगते हैं। कई बार किसी पशु अथवा व्यक्ति के चलने से कुछ पत्थर अपने स्थानों से खिसककर लुढ़कने लगते हैं। कई बार टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर एक ही दल के सदस्य जब आगे-पीछे जा रहे होते हैं तो आगे जाने वाले लोगों के पैरों से खिसकने वाले पत्थर पीछे आने वाले सदस्यों के लिए मुसीबत पैदा कर देते हैं। बिजली गिरने से अथवा उसकी गर्जना से भी पत्थर गिरते हैं। ऐसे पत्थरों से ट्रेकर को अपना बचाव सावधानी से करना चाहिए।

**सावधानियां :** ट्रैकिंग करते समय आंख और कान पूरी तरह से खोलकर चलना चाहिए। ज्यों ही किसी पत्थर के लुढ़कने की आवाज आये, कोई सुरक्षित स्थान ढूंढ़कर वहां छिप जाना चाहिए। किसी गुफा में अथवा चट्टान या पेड़ के पीछे छिपना सुरक्षित रहता है। यदि ऐसा कोई स्थान आसपास न मिले तो पत्थर की गति एवं दिशा को देखते हुए अपना बचाव करें और सुरक्षित दिशा की ओर भागें। अपने आपको पत्थर के रास्ते से तुरंत हटा लेना चाहिए। यदि कुछ भी कर पाना संभव न हो तो सिर पर रकसैक रखकर सिर की रक्षा करनी चाहिए। ऐसी स्थिति में 'पत्थर-पत्थर' चिल्लाकर सभी लोगों को सावधान कर देना चाहिए।

पर्वतों की तंग घाटियों में आवाज की प्रतिध्वनि कई बार व्यक्ति को धोखा देती है। पत्थरों के गिरते समय इस विषय में विशेष रूप से सतर्क और सजग रहना चाहिए। कभी-कभी ऐसे स्थानों पर प्रतिध्वनि ट्रैकर को धोखा दे सकती है। ऐसा हो सकता है कि पत्थर किसी दिशा में गिरे और व्यक्ति को भान हो दूसरी दिशा का। अभ्यास से ट्रैकर सही दिशा का अनुमान आसानी से लगा लेते हैं। ऐसे खतरनाक क्षेत्रों में जहां ऐसे पत्थरों के गिरने की अधिक संभावना हो हैलमेट का प्रयोग करना चाहिए। ट्रैकिंग करते समय किसी भी दशा में न तो पत्थर फैंकना चाहिए और न ही लुढ़काना चाहिए। यदि अचानक व्यक्ति का पैर लगने से या किसी कारणवश कोई पत्थर लुढ़क जाये तो तुरंत 'पत्थर-पत्थर' चिल्लाकर आसपास के लोगों को सावधान कर देना चाहिए।

**फिसलना अथवा गिरना :** भले ही ट्रैकिंग पैरों से चलने का खेल है फिर भी यह आम रूप से सैर से अलग है। पर्वतों पर चलने के लिए एक विशेष तकनीक की आवश्यकता होती है। जहां मैदानों में भ्रमण का अर्थ है निश्चिंत होकर घूमना, पर्वतों में घूमने के लिए बहुत ही सावधानी की आवश्यकता होती है। जरा सी असावधानी के कारण फिसला हुआ पांव ट्रैकर को मौत के मुंह में धकेल सकता है।

जंगलों और पहाड़ी ढलानों में कई बार धरातल कीचड़, घास और पत्तों से ढंक जाता है। साधारण रूप से देखने पर कहीं कोई गड़बड़ दिखाई नहीं देती जबकि इन पत्तों के नीचे गहरी खाई अथवा दलदल हो सकती है। जहां ट्रैकर चल रहे हों, ऐसे ही अन्य खतरे भी छिपे हो सकते हैं। हर खतरे की संभावना को ध्यान में रखते हुए ही कदम आगे बढ़ाना चाहिए। रास्ते ऊंचे-नीचे होने के कारण कदम-कदम पर गिरने एवं फिसलने का खतरा होता है। हर कदम यह सुनिश्चित करने के बाद ही उठाना चाहिए कि आगे कोई खतरा नहीं है।

**सावधानियां :** दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों में यात्रा करते समय किसी छड़ी अथवा आईस एक्स से मार्ग की जांच करते हुए आगे कदम बढ़ाना चाहिए। खतरनाक ढलानों पर सीधे उतरने पर फिसलने अथवा गिरने की पूरी आशंका रहती है। ऐसी ढलानों पर थोड़ा लंबा और तिरछा रास्ता लेना चाहिए। दौड़ना तो बिलकुल नहीं चाहिए। जिन रास्तों पर पत्थर लुढ़कते हैं अथवा जहां बहुत से पत्थर पड़े हों वहां सावधानी से चलना चाहिए। ऐसे रास्ते पर फिसलकर नीचे आने का प्रयास तब तक नहीं करना चाहिए जब तक कि ट्रैकर इस विषय में बहुत अनुभवी न हो। अनुभवहीन व्यक्ति के लिए नीचे पहुंचने की जल्दी जानलेवा सिद्ध हो सकती है।

नदी-नालों के किनारे के पत्थर गीले और फिसलन भरे होते हैं। इसलिए उन पर पांव रखने से पहले पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। इन पर फिसलने से व्यक्ति पानी में गिर सकता है। ऐसे पत्थरों पर पांव रखना बहुत आवश्यक हो तो उन पर मिट्टी अथवा रेत डालकर उनकी फिसलन को कम कर लेना चाहिए।

**कीड़े-मकोड़े :** हिमालय के कुछ क्षेत्रों में जोंक एवं चिचड़ बहुतायत से पाये जाते हैं। पूर्वी हिमालय के जंगलों में जोंक बहुत अधिक मात्रा में होती हैं जो ट्रैकर्स के लिए काफी समस्याएं पैदा करती हैं। घने और सीलन भरे जंगल उन्हें विशेष रूप से प्रिय होते हैं। चिचड़ पालतू पशुओं के शरीर में पलते हैं। कुत्ते, बकरी, भेड़ें और गाय-भैसों के शरीर पर पलकर ये जंतु पेड़ों पर रहने लगते हैं। इसके अतिरिक्त मक्खी, मच्छर, अनेक प्रकार के कीट पतंगे, कानखजूरे और बिच्छू कई बार ट्रैकर्स की यात्रा का आनंद खराब कर देते हैं। इन सबमें जोंक ट्रैकर्स की परेशानी का सबसे बड़ा कारण होती है।

जोंक की सूंघने की शक्ति इतनी तेज होती है कि ज्यों ही कोई व्यक्ति पेड़ के नीचे से गुजरता है ये उसके शरीर पर गिर जाती है। जुलाई से नवंबर के मध्य इनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है क्योंकि वर्षा के कारण इन दिनों जंगल में अधिक सीलन होती है। जोंक अपने दांत व्यक्ति के शरीर में गड़ाकर उसका खून चूसने लगती है।

**सावधानियां :** जब भी अभियान दल ऐसे क्षेत्रों के लिए जाये, जहां ऐसे कीड़े पाये जाते हों, तो हमेशा नमक, तंबाकू और माचिस साथ रखनी चाहिए। यदि ये कीड़े व्यक्ति के शरीर पर चढ़ जायें तो उन्हें खींचकर उतारने का प्रयास बिलकुल नहीं करना चाहिए। इनके मुंह पर तंबाकू अथवा नमक बुरक देने पर ये अपने आप हट जाते हैं। माचिस की तीली इनके मुंह के पास जलाकर भी इन्हें हटाया जा सकता है। यदि इन्हें बलपूर्वक शरीर से अलग करने का प्रयत्न किया जाये तो इनके दांत व्यक्ति के शरीर में ही टूट सकते हैं। इन्हें अपने से दूर रखने के लिए ट्रैकर को चाहिए कि वे अपने पहनने के ऊपरी वस्त्र तथा कमीज, मोजे, टोपी और रूमाल इत्यादि को धोने के बाद नमक के पानी में डुबोकर सुखा ले। नमक उन्हें दूर ही रखेगा।

**जंगली जानवर :** जब ट्रैकिंग जंगलों के मध्य से होकर करनी हो तो वहां जंगली जानवरों के साथ आमना-सामना होने की संभावना होती ही है। आमतौर पर जंगली जानवर आदमी पर आक्रमण नहीं करते बल्कि शोर सुनकर भाग जाते हैं। हिमालय के जंगलों में कम ऊंचाई पर जंगली बकरी, जंगली भेड़, कस्तूरी मृग, काला भालू, बर्फ में रहने वाली लोमड़ी और चीता पाये जाते हैं। अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में लाल भालू और जंगली बकरा जिसे आई बैक्स कहते हैं, पाये जाते हैं। यद्यपि आज तक किसी ने यति को नहीं देखा फिर भी इस बात को लेकर अनेक प्रकार की लोककथाएं और किंवदंतियां हैं कि हिमालय की बर्फ से ढंकी ढलानों पर मनुष्य से मिलता-जुलता बहुत शक्तिशाली जीव यति पाया जाता है।

काले भालू को छोड़कर कोई भी दूसरा जानवर आदमी पर पहले हमला नहीं करता। एकाएक सामने पड़ने पर भालू बहुत ही भयंकर रूप से हमला करता है। मादा भालू यदि अपने बच्चों के साथ हो तो वह काफी खतरनाक हो सकती है। उसका आक्रमण इस कारण से भी भयानक होता है कि उसे यह भय रहता है कि कोई उसके बच्चों को उठाकर न ले जाये अथवा उन्हें मार न दे। खूब शोर मचाकर भालू को भगाने का प्रयास करना चाहिए परंतु यदि लगे कि भालू लड़ने की मुद्रा में है, तो अपना संतुलन बनाये रखकर बुद्धिमत्ता एवं फुर्ती से अपना बचाव करना चाहिए।

**सावधानियां :** अन्य जानवरों की तरह भालू व्यक्ति पर सीधी छलांग नहीं लगाता। वह अपनी पिछली टांगों पर खड़ा होकर अगली भुजाओं से आक्रमण करता है। ऐसी हालत में व्यक्ति के लिए अपना मानसिक संतुलन बनाये रखना और साहस से मुकाबला करना आवश्यक हो जाता है। ज्यों ही भालू अपनी टांगों पर खड़ा होकर आक्रमण करे, चालाकी से थोड़ा झुकाव देकर उसके सामने से एक ओर हट जाना चाहिए। वह पुनः उसी प्रकार खड़ा होकर उसी क्रिया को दोहराता है, ऐसे में दोबारा उसे उसी प्रकार धोखा देते हुए अपना बचाव करना चाहिए, साथ ही जोर-जोर से चिल्लाकर साथियों को सहायता के लिए पुकारना चाहिए। पास में यदि लाठी अथवा आईस एक्स हो तो थोड़े साहस के साथ उसके पेट पर वार करना चाहिए। भालू के शरीर का सबसे कोमल भाग पेट ही होता है। उस पर चोट लगते ही वह भाग खड़ा होता है।

यदि भालू का सामना होने पर भागकर बचाव करना उचित लगता हो तो व्यक्ति को नीचे की ओर भागना चाहिए। अगली टांगे छोटी होने के कारण वह ढलान पर तेजी से नहीं भाग सकता। इसके साथ ही नीचे की ओर मुंह करने के कारण उसकी आंखें उसके लंबे बालों से ढंक जाती हैं जो उसके तेज गति से भागने में रुकावट पैदा करती हैं। इसके विपरीत आदमी ऊपर की अपेक्षा नीचे की ओर अधिक गति से भाग सकता है।

भागने पर भी यदि भालू पीछा नहीं छोड़े तो किसी नजदीक के पेड़ पर चढ़ जाना अच्छा रहता है क्योंकि व्यक्ति के पेड़ पर चढ़ते ही भालू भी पेड़ पर चढ़ने का प्रयास करेगा। ज्यों ही वह कुछ ऊपर चढ़ जाये व्यक्ति को टहनियों के सहारे से नीचे उतरकर सुरक्षा के लिए भागना चाहिए। व्यक्ति को पेड़ से उतरता देखकर भालू भी नीचे उतरना प्रारंभ करेगा। भालू मनुष्य की भांति पेड़ से छलांग नहीं लगा सकता। वह उल्टा ही पेड़ पर से उतरता है और तब तक पेड़ को नहीं छोड़ता जब तक कि उसका पिछला भाग जमीन पर नहीं टिकता और उसे अपने आपको भूमि पर पहुंच जाने का पक्का विश्वास नहीं हो जाता। ऐसी स्थिति में उस पर वार भी किया जा सकता है। पर्वतों पर रहने वाले लोग इसी प्रकार भालू को मारते हैं।

**बीमारियां :** जलवायु के परिवर्तन के कारण पर्वतों पर ट्रैकर्स को बीमारी के रूप में कुछ शारीरिक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। पर्वतों में व्यक्ति को न केवल 7-8 घंटे चलना पड़ता है बल्कि भार भी उठाना पड़ता है। इससे उसकी सांस फूलने लगती है और वह जल्दी थकावट महसूस करने लगता है। अलग-अलग तरह के मौसम, खान-पान, रहन-सहन, छोटे और सीलन भरे स्थानों पर सोना इत्यादि कुछ ऐसे कारण हैं जो व्यक्ति को बीमार कर देते हैं। प्रतिकूल जलवायु भी व्यक्ति की बीमारी का कारण बन जाती है। सिर दर्द, चक्कर आना, जी मिचलाना, उल्टी आना,

खांसी-जुकाम, पेचिश और बुखार इत्यादि ऐसी बीमारियां हैं जो आमतौर पर ट्रैकर्स को जकड़ लेती हैं। इन सबका इलाज आम दवाइयों से संभव है।

**सावधानियां :** ट्रैकिंग प्रारंभ करने से पूर्व सभी आवश्यक दवाइयां साथ रख लेनी चाहिए। इस बारे में पहले भी बताया जा चुका है। यदि इन दवाइयों से भी रोगी ठीक न हो तो उसे नीचे ऐसे स्थान पर ले जाना चाहिए जहां अधिक आक्सीजन हो। वहां रोगी स्वयं ठीक होने लगता है। परंतु यदि यहां भी रोगी में ठीक होने के लक्षण दिखाई न दें तो उसे तुरंत अस्पताल ले जाना चाहिए।

**रोगग्रस्त पांव :** ट्रैकिंग पांव पर निर्भर रहने वाला खेल है। पांव में किसी प्रकार का रोग सारा आनंद ही समाप्त कर देता है। इस खेल को ठीक से खेलने के लिए जरूरी है कि खिलाड़ी के पांव पूरी तरह से निरोग हों। कई बार ट्रैकर्स के पांवों में छाले पड़ जाते हैं अथवा टखने में मोच आ जाती है। ऐसी स्थिति में वे पूरे दल के लिए एक समस्या बन जाते हैं। किसी एक व्यक्ति के पांव में थोड़ी सी तकलीफ भी पूरे दल की यात्रा को गड़बड़ा सकती है।

**सावधानियां :** ट्रैकिंग पर आने से पूर्व नये जूते पहनकर नहीं चलना चाहिए। पैरों में किसी प्रकार के छाले नहीं होने चाहिए और नाखून अच्छी तरह कटे हों। छाले हों तो उन्हें गरम सुई से फोड़ दें और ऊपर प्लास्टर लगा दें ताकि वे जल्दी ही अच्छे हो सकें।

ऐसे जूतों का प्रयोग करें जिनमें दो जुराबें पहनी जा सकें। दो जुराबें पहनने से पांवों की फफोलों से रक्षा हो सकेगी। गंदी और गीली जुराबें बिलकुल नहीं पहननी चाहिए। पर्वतों में नंगे पैर नहीं चलना चाहिए। ऊंचे-नीचे पत्थरों पर बेकार ही न चलें क्योंकि इससे पैर में मोच आने की संभावना रहती है। जहां भी पैर रखें, पूरी सावधानी के साथ देखकर रखें।

**संकटकालीन रात्रि पड़ाव :** पहाड़ों पर विभिन्न कारणों से कई बार ट्रैकर्स को ऐसे स्थान पर पड़ाव डालने के लिए बाध्य होना पड़ता है जहां ठहरने की पहले से कोई योजना नहीं होती। ऐसी हालत में उनके पास आवश्यक वस्त्र, तंबुओं और खाने के समान का समुचित प्रबंध न हो तो कठिनाई हो सकती है। अनुमान की गलती, मौसम की खराबी अथवा किसी दुर्घटना के कारण दल वहां नहीं पहुंच पाता जहां के लिए उसने कार्यक्रम बनाया होता है। कई बार ऐसा भी होता है कि कुछ अति उत्साही सदस्य बिना पूरा प्रबंध किए कैंप से यह सोचकर चल पड़ते है कि वे निश्चित समय से पूर्व लौट ही आयेंगे परंतु किसी न किसी मुसीबत में फंसकर ऐसा नहीं

कर पाते। ऐसी हालत में उन्हें रात्रि कहीं न कहीं व्यतीत करनी ही पड़ती है।

**सावधानियां :** यदि व्यक्ति को किसी भी कारण से रात्रि पड़ाव के लिए बाध्य होना पड़े तो आश्रय के लिए कोई अच्छा-सा स्थान तलाश करना चाहिए। आवश्यक ईंधन एकत्र करके आग जलाकर रात बिताने की कोशिश करनी चाहिए। यदि आग का प्रबंध न हो सके तो सारे कपड़े पहनकर रकसैक पर बैठ जाना चाहिए। रस्से का ढेर बनाकर उस पर बैठना भी ठीक रहता है। मुख्य बात यह है कि शरीर को भूमि की नमी से बचाया जा सके।

आग न जल रही हो तो सोना नहीं चाहिए परस्पर बातचीत करके एक-दूसरे को जगाए रखें। रात में सोने पर शरीर का तापमान बहुत कम हो जाता है जोकि काफी हानिकारक सिद्ध हो सकता है। प्रत्येक सदस्य को एक-दूसरे का मनोबल ऊंचा रखने का प्रयास करना चाहिए और सारी बातचीत इस प्रकार से करनी चाहिए ताकि वातावरण बोझिल न होने पाये। इस काम में साहसी व्यक्तियों के किस्से सुनाना सहायक हो सकता है। गीत इत्यादि गाकर वे लोग अपना मनोरंजन भी कर सकते हैं। रात को जागते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि रक्त संचार में कोई बाधा न आये। इसके लिए निरंतर किसी एक ही स्थान पर एक ही मुद्रा में बैठे रहना उचित नहीं है। थोड़ी-थोड़ी देर बाद हल्का व्यायाम शरीर के तापमान को ठीक रखने में सहायक होता है।

मुख्य अभियान दल से अलग होकर कभी इधर-उधर जाना हो तो अकेले कभी नहीं जाना चाहिए। इसके लिए एक छोटी टुकड़ी बनाकर जायें। खोने-पीने के लिए जो भी शक्तिदायक चीजें हों उन्हें भी साथ में रखें और आवश्यकता पड़ने पर धीरे-धीरे उनका प्रयोग करें। कुछ दवाइयां और कपड़े भी शरीर को गरम रख सकते हैं, इसलिए जाते समय उन्हें साथ में रखें। रात के पड़ाव में सभी लोगों को एक साथ ही रहना चाहिए।

ट्रैकिंग के मार्ग में आने वाली बाधाओं की सही-सही गणना नहीं की जा सकती। समय-समय पर ट्रैकर के सामने भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याएं आती हैं। ऐसी हालत में व्यक्ति को अपनी बुद्धि का प्रयोग करके उचित निर्णय करना चाहिए। प्राकृतिक, शरीरिक और भौतिक बाधाओं के अतिरिक्त कई बार मनोवैज्ञानिक बाधाएं भी उठ खड़ी होती हैं। बहुत छोटी-छोटी सी बातें, कई बार सदस्यों में मतभेद और वैमनस्य का कारण बन जाती हैं। खाना-पीना, बोझ उठाना, सोने के स्थान की कमी, नहाने-धोने में समय का लगना अथवा किसी सामूहिक निर्णय के लिए विचार-विमर्श करते समय गरमा-गरमी इत्यादि ऐसी बातें हैं जो पूरे दल की संपूर्ण यात्रा का मजा किरकिरा कर सकती हैं। इन बातों को गंभीरता से लेने से पहले यह जान लेना चाहिए कि ऐसा मुख्य रूप से थकावट और आक्सीजन की कमी के कारण होता है। थकान

और उस पर आक्सीजन की कमी व्यक्ति को चिड़चिड़ा बना देती है। इस बात को समझते हुए ही एक-दूसरे के साथ व्यवहार करना चाहिए। विभिन्न लोगों के स्वभाव भी अलग-अलग होते हैं इसलिए यदि कभी वाद-विवाद हो भी जाये तो उसे बहुत गंभीरता से नहीं लेना चाहिए।

ट्रैकिंग का आनंद ही तभी आ सकता है जब सभी सदस्यों में परस्पर सहयोग की भावना और तालमेल रखने की इच्छा हो। हर व्यक्ति को चाहिए कि वह दल के हितों के लिए व्यक्तिगत हितों का त्याग करने को तैयार रहे। मार्ग में आने वाली बाधाओं की पूर्व जानकारी, उनका सामना करने के लिए आवश्यक प्रबंध, खतरों के प्रति जागरूकता और संकट में तत्काल निर्णय करने की क्षमता अगर व्यक्ति में होगी तो यात्रा सुखद और आनंददायक होगी ही इसमें कोई संदेह नहीं है।

# 9

# नियम

जीवन के हर क्षेत्र में कुछ नियमों का पालन करना जरूरी होता है। खेल तो बिना नियमों के खेले ही नहीं जा सकते। चूंकि ट्रैकिंग भी एक खेल है, इसलिए ट्रैकर्स को भी कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है, भले ही अन्य खेलों की भांति ट्रैकिंग के सर्वमान्य निश्चित नियम नहीं हैं। अनेकानेक बार विचार-विमर्श होने के बाद भी इस खेल के संबंध में विस्तार से सर्वमान्य नियमों की सूची नहीं बनाई जा सकी। यही एक बात ट्रैकिंग को अन्य खेलों से अलग करती है।

ट्रैकिंग का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसमें भाग लेने वाले खिलाड़ियों की भी कोई सीमा नहीं होती। प्रत्येक ट्रैकर अपने ही ढंग से इस खेल को खेलने के लिए स्वतंत्र है और हर व्यक्ति के विचारों का अपना महत्व है। ट्रैकिंग के खिलाड़ी सैलानी होते हैं। वे स्वभाव से ही स्वछंद होते हैं, इसलिए उनके लिए किसी नियमावली पर एकमत होना कठिन दिखाई देता है। जो नियम हैं भी, उनके पालन में भी अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां देखने में आती हैं।

फुटबाल, हाकी, टैनिस और क्रिकेट जैसे खेलों की तरह ट्रैकिंग के मैदान की सीमा निश्चित करना संभव नहीं है क्योंकि पर्वत शृंखलाओं पर हजारों-लाखों यात्रा-पथ होते हैं। मैदानों में, जंगलों में, समुद्र और नदियों के किनारे तथा रेगिस्तानों में कहीं भी तो 'ट्रैकर्स' की कमी नहीं है। ट्रैकर्स का ट्रैकिंग पर जाने का ध्येय अपना-अपना होता है। अभियान दल के लिए ट्रैकर्स की संख्या तक निश्चित नहीं की जा सकती। एक अकेला आदमी भी ट्रैकिंग का उतना आनंद उठा सकता है जितना सौ व्यक्ति एक साथ। समय की भी कोई सीमा नहीं। कुछ दिनों के लिए ट्रैकिंग की जा सकती है तो कुछ हफ्तों और महीनों तक भी। कुछ-कुछ ट्रैकर्स तो वर्षों का कार्यक्रम बनाकर निकलने लगे हैं। लोगों ने ट्रैकिंग करते हुए पूरी दुनिया के चक्कर लगाये हैं।

इस खेल में हर बात व्यक्ति विशेष, उसकी रुचि, समय और धन की उपलब्धता पर निर्भर करती है। इस खेल की सबसे बढ़िया बात यह है कि व्यक्ति स्वयं खिलाड़ी है और खुद ही रैफरी भी। अन्य कोई व्यक्ति उसे नियमों में बांधने वाला नहीं।

उसे स्वयं ही इस बात का ध्यान रखना है कि कोई गलती न हो जाये। गलती का दंड भी उसे तत्काल मिल जाता है। अपनी गलती के कारण वह किसी दुर्घटना का शिकार हो सकता है। यदि कोई खिलाड़ी अच्छा प्रदर्शन करता है तो उसका उत्साह बढ़ाने वाला भी वहां कोई नहीं होता। वह स्वयं होता है और होता है असीम भू-प्रदेश अर्थात प्रकृति। यही दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने होते हैं। दोनों में कोई समानता भी नहीं होती। यदि खिलाड़ी कोई गलती करता है तो दंड पाता है और यदि अपने ध्येय में सफल होता है तो उसे आत्मसंतोष मिलता है और वह प्रकृति के प्रति कृतज्ञता से भर उठता है।

पर्वतारोहण और ट्रैकिंग से जुड़े बहुत से व्यक्तियों और संस्थाओं ने कुछ सामान्य नियम बनाने के अनेक प्रकार के सुझाव दिये। उन पर विचार-विमर्श के बाद भी ठोस रूप से कुछ सामने नहीं आया। नियमों की अपेक्षा कुछ ऐसे आदर्श जरूर रेखांकित किये गये जिनका पालन किसी नियम के अधीन करवाना संभव नहीं, फिर भी इसकी खेल भावना को बनाये रखने के लिए अधिकतर ट्रैकर और पर्वतारोही कुछ नियमों का पालन करते ही हैं। इसे पर्वतीय संहिता के रूप में भी जाना जाता है, परंतु इन्हें कहीं भी चुनौती नहीं दी जा सकती।

लोग आनंद प्राप्ति के लिए ट्रैकिंग करते हैं न कि किसी दुर्घटना का शिकार होने के लिए। इसलिए सभी ट्रैकर अपनी सुरक्षा के लिए ही इनका पालन करते हैं।

**रीति-रिवाज :** किसी परंपरा को लोगों द्वारा निरंतर व्यवहार में लाना ही रीति-रिवाज कहलाता है। ये रिवाज अलग-अलग लोगों के अलग-अलग हो सकते हैं। किसी एक कबीले के रिवाज दूसरे कबीले से एकदम विपरीत भी हो सकते हैं। भारत एक बहुत बड़ा देश है और इसमें हजारों प्रकार की जातियां और कबीले रहते हैं। उसके रीति-रिवाजों का अध्ययन अपने-आप में एक अलग विषय है। यहां पर हमारा अभिप्राय इतना ही है कि जब व्यक्ति ट्रैकिंग पर जाये तो मार्ग में जिन लोगों के साथ उसका संपर्क होना है उनके विषय में उसे थोड़ी-बहुत जानकारी हो और कुछ जानकारी वह स्वयं वहां प्राप्त करे। रिवाजों के संबंध में ट्रैकर्स की यह परंपरा है कि वे किसी के रीति-रिवाजों में कोई हस्तक्षेप नहीं करते और उनका यथासंभव आदर करते हैं। यहां पर हमारा मुख्य उद्देश्य उन्हीं प्रथाओं के वर्णन से है जिनका संबंध ट्रैकर्स अथवा पर्वतारोहियों के साथ है। यदि ट्रैकर्स इन प्रथाओं का आदर नहीं करेंगे तो उन्हें कुछ कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ सकता है और स्थानीय लोगों के आदर से वंचित भी होना पड़ सकता है।

आधुनिक युग में रहते हुए भी अनेक कबीलों में अभी भी पुरानी मान्यताएं प्रचलित हैं और लोग सदियों पुरानी बातों को किसी भी मूल्य पर छोड़ने को तैयार

नहीं हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले अधिकतर कबीले स्त्री प्रधान समाज हैं। दैनिक जीवन के अधिकांश कार्य उन्हीं के द्वारा संपन्न होते हैं। ऐसे समुदायों में स्त्री ही खेतों पर काम करती है, बच्चों का पालन-पोषण करती है, दुकान चलाती है और सामाजिक उत्तरदायित्वों का भी निर्वाह करती है। वह जब चाहे अपने पति को छोड़ सकती है। जब चाहे विवाह का बंधन तोड़कर किसी अन्य व्यक्ति से शादी कर सकती है। जिन लोगों को इन प्रथाओं की जानकारी नहीं वे सहज ही ऐसी स्थिति पर विश्वास नहीं करते।

पर्वतों पर ऐसे कबीले हैं जहां एक स्त्री परिवार में सभी भाईयों की पत्नी होती है। मुख्य रूप से यह प्रथा परिवार की एकता को बनाये रखने तथा संपत्ति और जमीन के बंटवारे को रोकने के लिए बनाई गयी थी। इन कबीलों में स्त्री की प्रभुत्ता को स्वीकार किया जाता है। सामाजिक उत्सवों और मेलों में वह बढ़-चढ़कर भाग लेती है और मनमाने ढंग से नृत्य करती है। कुछ कबीलों में महिलाओं के लिए बीड़ी, सिगरेट और शराब पीना एक आम बात है। बिना हिचक वहां यह सब सहज रूप से होता है, परंतु किसी बाहरी व्यक्ति की उपस्थिति को वहां पसंद नहीं किया जाता। ट्रैकर्स को चाहिए कि बिना निमंत्रण के उनके किसी भी समारोह में सम्मिलित न हों। यदि उनके ऐसे उत्सवों को नजदीक से देखने की इच्छा हो तो उनके साथ मित्रता करके उनका विश्वास जीतने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा करने से व्यक्ति उनके करीब आकर निमंत्रण प्राप्त कर सकता है। इसके लिए ट्रैकर्स को अपनी जिज्ञासा भी व्यक्त करनी चाहिए कि वह उनकी जीवन शैली को निकट से देखना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में ट्रैकर्स को चाहिए कि उनके रीति-रिवाजों के बारे में कोई अप्रिय प्रतिक्रिया व्यक्त न करें। जब तक वे लोग न चाहें उन्हें शहरों की चकाचौंध के संबंध में न बतायें। अपने तथा शहरी जीवन का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन न करें। ये लोग दूसरे लोगों की बातों पर सहज ही विश्वास कर लेते हैं। इसलिए उन्हें कोई ऐसा आश्वासन न दें जो बाद में उनके जीवन में कटुता भर दे।

पर्वतों में रहने वाले कबीलों के लोग सीधे-सादे, मैत्री भाव रखने वाले और अतिथियों का आदर करने वाले सरल स्वभाव के लोग होते हैं। वे अपने रीति-रिवाजों, धार्मिक आस्थाओं और सामाजिक मान्यताओं का पूरी तरह से पालन करते हैं। इस संदर्भ में उनके साथ कोई वाद-विवाद नहीं करना चाहिए, बल्कि उनकी सभ्यता, संस्कृति, परंपराओं, मंदिरों आदि का पूरा-पूरा आदर करना चाहिए।

चूंकि वे सब लोगों पर विश्वास करते हैं इसलिए विश्वासघात को बिलकुल पसंद नहीं करते। उनके शोषण का कोई भी प्रयास उन्हें क्रोधित कर सकता है। आमतौर पर वे अपना सामान खुला ही छोड़ देते हैं और घरों में ताले इत्यादि नहीं लगाते। यदि कोई बाहरी व्यक्ति उनके इस व्यवहार का अनुचित लाभ उठाने की कोशिश करता है तो वे उसे सहन नहीं करते।

ट्रैकिंग और पर्वतारोहण के कुछ ऐसे रीति-रिवाज भी हैं जिनका पालन नियम मानकर स्वयं ही करना होता है। किसी की गतिविधियों पर ध्यान रखने वाला वहां कोई नहीं होता। इसलिए जो भी काम किया जाये, किसी शिखर के आरोहण, अथवा कोई ट्रैक पूरा करने, आदि के बारे में खुद ही आवश्यक प्रमाण प्रस्तुत करने चाहिए। इसके लिए जरूरी चित्र और मार्ग का विस्तार से वर्णन प्रस्तुत करना अच्छा रहता है। प्रत्येक अभियान दल के नेता के लिए यह जरूरी है कि वह अपनी यात्रा का विस्तृत वृत्तांत प्रायोजक संस्था के अधिकारियों को प्रस्तुत करे जिसने दल को प्रायोजित किया हो। इसकी एक प्रति भारतीय पर्वतारोहण संस्थान को भी भेजी जानी चाहिए जो देश में पर्वतारोहण के विषय में होने वाली प्रत्येक गतिविधि का लेखा-जोखा रखता है।

यदि किसी अभियान दल को अपने उद्देश्य में सफलता न मिली हो तो उसे स्वीकार करने में किसी प्रकार की शर्म महसूस नहीं करनी चाहिए। इस संदर्भ में किसी प्रकार का झूठ बोलना पर्वतीय नैतिकता के खिलाफ है। अच्छा तो यह रहता है कि दल के सदस्य एक विस्तृत रिपोर्ट बनायें और उन कारणों का विशेष रूप से उल्लेख करें जो उनके मार्ग में बाधा बने। संभव हो तो आगे आने वाले दलों के लिए सुझाव भी देने चाहिए कि उन बाधाओं को पार करने के लिए वे क्या उपाय कर सकते हैं।

पर्वतीय मार्गों पर अकेले ही ट्रैकिंग करना अथवा किसी शिखर पर चढ़ना वर्जित माना गया है। इसमें बहुत सी बाधाएं आती हैं और किसी दुर्घटना के समय कहीं से सहायता मिल पाना भी संभव नहीं रहता। इतना होने पर भी लोग अकेले यात्रा करते रहे हैं और कई शिखरों पर सफलतापूर्वक चढ़े भी हैं। कितने ही लोग इस साहसिक और अतिरिक्त जोखिम भरे काम के लिए मौत के मुंह में भी गये हैं।

यदि कोई अकेला ऐसी यात्रा करना ही चाहे तो उसे चाहिए कि वह संबंधित अधिकारियों के पास अपना पूरा कार्यक्रम, लौटने की संभावित तारीख तक छोड़कर जाये और लौटने पर अपनी विस्तृत रिपोर्ट पेश करे। यह उसका नैतिक दायित्व है कि वह विस्तार से बताये कि कौन से मार्गों से निकलते हुए उसने कहां-कहां कैंप लगाये, एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव तक पहुंचने में कितना समय लगा और मार्ग में उसने क्या-क्या देखा ? रास्ते के महत्वपूर्ण स्थलों के फोटो भी उसे पेश करने चाहिए। ट्रेकिंग और पर्वतारोहण में काम आने वाले उपकरण काफी अच्छे बनाए जाने लगे हैं। इस तकनीक ने इतना विकास कर लिया है कि इनकी सहायता से अब अकेला व्यक्ति एवरेस्ट पर पहुंच चुका है। इतना होने पर भी अकेले ऐसी यात्राओं पर नहीं जाना चाहिए क्योंकि कोई छोटी सी दुर्घटना भी व्यक्ति को असहाय कर सकती है और उसके विषय में किसी प्रकार की जानकारी तक नहीं मिल पाती।

अपनी यात्रा अथवा सफलताओं के विषय में लंबे-चौड़े दावे नहीं करने चाहिए।

प्रचार के पीछे भी नहीं भागना चाहिए। नेता की आलोचना तो कदापि नहीं करनी चाहिए। दलबंदी करना तो इस खेल में सर्वथा वर्जित है। व्यक्तिगत स्पर्धा के लिए भी इस खेल में कोई स्थान नहीं है। यह एक सर्वमान्य नियम है कि यात्रा के संबंध में प्रेस इत्यादि को जो भी वक्तव्य देना हो वह केवल नेता के द्वारा ही दिया जाये। अन्य सदस्यों को तब तक इस बारे में चुप रहना चाहिए जब तक उन्हें इस विषय में कुछ बोलने के लिए न कहा जाये।

पर्वतों में मौसम के साथ होड़ नहीं करनी चाहिए। वहां मौसम अक्सर अनिश्चित रहता है। उसकी पूरी जानकारी दल की सफलता में सहायक हो सकती है। बदलते मौसम के अनुकूल ही वस्त्र पहनने में कोई झिझक महसूस नहीं करनी चाहिए। बरसाती, गरम कपड़े, दस्ताने, मौजे और वायुरोधक कोट इत्यादि सदैव अपने साथ रखें। उनकी पैकिंग इस प्रकार से करें कि आवश्यकता पड़ते ही उन्हें प्रयोग के लिए आसानी से निकाला जा सके। यदि ऐसे वस्त्र कहीं नीचे रखे हों तो भी उन्हें निकालने में किसी प्रकार की सुस्ती नहीं करनी चाहिए क्योंकि मौसम का प्रतिकूल प्रभाव किसी की भी तबीयत खराब कर सकता है। दल में यदि एक भी व्यक्ति की तबीयत खराब हो जाये तो उसके लिए पूरे दल के कार्यक्रम खराब हो सकते हैं।

ट्रैकिंग के लिए किसी यात्रा-पथ का चुनाव करते समय सदस्यों की शरीरिक क्षमता, इच्छाशक्ति और बाधाओं से जूझने का साहस नाप-तोल लेना चाहिए। यदि दल के सदस्य किसी कठिन घड़ी में घबरा जायेंगे तो बचाव कार्य एवं प्राथमिक चिकित्सा ठीक ढंग से नहीं हो पायेगी। इसके दुष्परिणाम भी पूरी पार्टी को भुगतने पड़ेंगे।

अभियान की सफलता का ध्यान किये बिना ही दल के प्रत्येक सदस्य को अपने नेता का धन्यवाद करना चाहिए। परस्पर सहयोग के लिए भी एक-दूसरे के प्रति आभार व्यक्त करने के बाद ही अपने-अपने घरों को लौटना चाहिए।

**प्रकृति प्रेमियों की प्रथाएं :** प्रकृति प्रेमी ट्रैकिंग की बढ़ती हुई गतिविधियों से परेशान हुए हैं। ट्रैकर, शिकारी और कैंपर अपनी यात्राओं के दौरान वनस्पतियों को हानि पहुंचाते हैं और जंगली पशु-पक्षियों का शिकार करते हैं। कई बार इनके द्वारा फेंके गये सिगरेट के टुकड़े अथवा कैंप में छोड़ी गयी जलती आग के कारण पूरे के पूरे जंगल स्वाह हो जाते हैं जिसके कारण राष्ट्र की ऐसी हानि होती है जिसे पूरा नहीं किया जा सकता। ट्रैकर्स अपनी आवश्यकताओं के लिए जंगलों में लकड़ी काटते हैं जिसके कारण प्रकृति का संतुलन बिगड़ता है। शिकारियों द्वारा किसी भी पशु-पक्षी का शिकार करने की आदत कई पशु-पक्षियों की नस्ल समाप्त होने का कारण बनी है।

ट्रैकर्स, शिकारियों और कैंपर्स को इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि उनके किसी भी काम से वनों, पशु-पक्षियों तथा वातावरण को कोई क्षति न पहुंचे।

आग के प्रति उन्हें विशेष रूप से सतर्क रहना चाहिए क्योंकि उनकी छोटी-सी भूल काफी घातक हो सकती है। उन्हें चाहिए कि वे किसी भी हालत में वृक्षों को काटने का अपराध न करें। हरे वृक्षों की ही नहीं, सूखे पेड़ों और जमीन पर गिरी हुई लकड़ियों की भी अपनी उपयोगिता है। इनका प्रयोग अनिवार्य होने पर ही बहुत सोच-विचार से करना चाहिए। ऐसे लोगों को चाहिए कि वे अपने साथ मिट्टी का तेल अथवा गैस इत्यादि ले जायें। कुलियों को भी निर्देश देना चाहिए कि ईंधन के लिए लकड़ियों का प्रयोग न करें। जंगली फूलों, वनस्पतियों और जड़ी-बूटियों की सुरक्षा का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

जंगलों को काटने की अपेक्षा प्रत्येक दल को ट्रैकिंग पर जाने से पूर्व ऐसे पेड़-पौधे ले जाने चाहिए जो मार्ग में रोपे जा सकें। इस संदर्भ में संबंधित अधिकारियों से परामर्श करके ही नये पौधे उगाये जाने चाहिए। ऐसी स्थिति में जब कभी व्यक्ति पुनः उस स्थान पर लौटकर जायेगा और वहां हरे-भरे पेड़ों को लहलहाते हुए पायेगा तो उसे परम आनंद की अनुभूति होगी। इस प्रकार उसे राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य पालन का सुख भी मिलेगा। ट्रैकर्स को चाहिए कि यदि मार्ग में किसी व्यक्ति द्वारा जंगलों को हानि पहुंचाते हुए देखें तो उसे रोकें और संबंधित अधिकारियों को भी इसकी सूचना दें।

ट्रैकर्स को अपने साथ किसी प्रकार का हथियार नहीं ले जाना चाहिए। उन्हें कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए जो सरकारी नियमों के विरुद्ध हो। इतना ही नहीं यदि कोई अन्य व्यक्ति उनका उल्लंघन कर रहा हो तो उसे भी रोकना चाहिए। इसके लिए संबंधित अधिकारी के पास शिकायत भी करनी चाहिए।

**प्रदूषण** : पर्वतों पर बढ़ते हुए प्रदूषण की समस्या दिन-प्रतिदिन गंभीर होती जा रही है। यूरोप में तो यह समस्या काफी विकट हो गयी है क्योंकि वहां अधिक से अधिक लोग सप्ताह के अंत में छुट्टियां मनाने तथा आराम करने के लिए ट्रैकिंग अथवा कैंपिंग के लिए जाते हैं। वहां पर बड़ी मात्रा में लोग इन गतिविधियों का आनंद लेना चाहते हैं, जबकि उतने स्थान उपलब्ध नहीं है। स्वाभाविक है कि इस भीड़-भाड़ के कारण ऐसे स्थल, मार्ग और पर्वत कूड़ा-करकट से भरे पड़े हैं। इस समस्या के समाधान के लिए उन्होंने ऐसे नियम बनाये हैं जिनके अंतर्गत ट्रैकिंग करके लौटने वाले लोगों को स्वयं प्रयोग की गयी सामग्री का कूड़ा-करकट साथ लाकर अधिकारियों को सौंपना पड़ता है, जो उसे नष्ट करने की उचित व्यवस्था करते हैं।

भारत में अभी इस समस्या ने उतना विकराल रूप धारण नहीं किया है। अभी यहां ट्रैकिंग पर जाने वाले लोगों की संख्या भी अपेक्षाकृत बहुत कम है जबकि ट्रैकिंग रूट बहुत ज्यादा उपलब्ध हैं। फिर भी हमें समय रहते सावधान हो जाना चाहिए। विदेशी पर्यटक अब यहां काफी संख्या में आने लगे हैं। वे इधर-उधर कूड़ा फेंकने

में नहीं हिचहिकचाते क्योंकि वे देखते हैं कि आम भारतीय को इसमें कोई आपत्ति नहीं होती। यह खुशी की बात है कि हमारी सरकार ने प्रदूषण की समस्या की ओर ध्यान देना शुरू किया है। इसकी रोकथाम के लिए सरकार ने अलग से एक पृथक मंत्रालय की स्थापना की है। यदि भारतीय स्वयं प्रदूषण की रोकथाम में रुचि लेंगे तो निश्चित रूप से विदेशी भी इस काम में उनका सहयोग करेंगे।

**नियम :** ट्रैकिंग करते समय भी अन्य खेलों के समान कुछ नियमों का पालन किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति ऐसे नियमों को अनदेखा करता है (क्योंकि वहां पर नियमों का पालन करवाने वाला कोई नहीं होता) तो उसके लिए उसे किसी न किसी रूप में हानि उठानी पड़ती है और उसकी सुरक्षा हमेशा खतरे में रहती है। ट्रैकिंग की अपनी एक विशेष तकनीक है जिसे अभ्यास से सीखा जा सकता है और अनुभव के बाद व्यक्ति एक अच्छा पर्वतारोही बन सकता है। पर्वतों में दुर्गम भू-प्रदेशों, असमतल मार्गों, कठिन ढलानों और तेज बहती हुई नदियों को पार करना होता है। इसलिए नियमों का पालन करना बेहद जरूरी होता है।

ट्रैकिंग करते समय बहुत अधिक तेज अथवा बहुत धीरे नहीं चलना चाहिए। मध्यम रफ्तार से बिना सांस फुलाये अपनी यात्रा पूरी करनी चाहिए। जब किसी कठिन चढ़ाई पर चढ़ना अथवा उतरना हो तो सीधे रास्ते की अपेक्षा तिरछा रास्ता अपनाना चाहिए। भागते हुए कभी भी किसी ढलान से उतरने का प्रयास नहीं करना चाहिए।

इस बात का पूरा प्रयास किया जाना चाहिए कि किसी अन्य दल अथवा व्यक्ति को पीछे छोड़कर आगे निकलने का अनावश्यक दिखावा न करें। यदि ऐसा करना जरूरी हो तो आगे जाने वाले व्यक्ति से इस बात की अनुमति ले लें। किसी के पीछे से आकर आगे निकलना एक प्रकार से अपनी क्षमता का अनावश्यक दिखावा करना होता है। यदि दूसरा व्यक्ति भी ऐसा ही करेगा तो इस स्पर्धा से दोनों को हानि हो सकती है। वैसे भी यह बात ट्रैकिंग की नैतिकता के विरुद्ध है।

ट्रैकिंग करते समय मार्ग में ऐसे स्थानों पर पड़ाव डालना चाहिए जहां पानी उपलब्ध हो। दल के सदस्यों की शारीरिक क्षमता को ध्यान में रखते हुए पड़ावों के मध्य दूरी निश्चित करनी चाहिए। किसी कठिन चढ़ाई के बाद दल को आराम करने, उपकरणों एवं वस्त्रों को ठीक करने का समय दिया जाना चाहिए। विश्राम के बाद तब तक तेज नहीं चलना चाहिए जब तक शरीर पुनः इसके लिए तैयार न हो जाये। इसके लिए शरीर का अभ्यस्त होना आवश्यक होता है।

पर्वतों में दूरी बहुत भ्रामक होती है। चूंकि व्यक्ति सामने ही पर्वतों को देख सकता है इसलिए ऐसा लगता है कि वे बहुत पास हैं, जबकि वास्तविकता इससे भिन्न ही होती है। अभ्यास से पर्वतों पर सही दूरी का अनुमान लगाया जा सकता

है। दूरी का सही अनुमान लगाकर ही वहां पहुंचने के लिए समय और गति निर्धारित की जानी चाहिए। पहाड़ों में दूरी को वहां पहुंचने के समय से नापा जाना चाहिए न कि किलोमीटरों में। इस संदर्भ में स्थानीय लोगों की बातों पर भी सहज विश्वास नहीं करना चाहिए। उनका चलने का तरीका अलग होता है। अच्छा यही रहता है कि अपने विवेक और नक्शे की सहायता से किसी स्थान पर पहुंचने की योजना बनायी जाये।

ट्रैकिंग के दौरान व्यक्ति को विभिन्न प्रकार के स्थानों से गुजरना पड़ता है। अतः इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जहां से भी निकले वहां मैत्रीपूर्ण व्यवहार करे। किसी भी स्थिति में स्थानीय लोगों को नाराज नहीं करे। यदि उन लोगों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जायेगा तो वे हर अजनबी को बुरा व्यक्ति समझने लगेंगे। उनके रीति-रिवाजों के प्रति पूरा आदर दिखाते हुए यदि ट्रैकर मैत्री और सद्भावना का परिचय देगा तो वह उनका विश्वास सहज ही जीत पायेगा।

रास्ते में मिलने वाले हर आदमी का अभिवादन करना एक अच्छी आदत है। पश्चिमी देशों में ऐसा न करना असभ्यता माना जाता है। यदि स्वयं पहल करके स्थानीय लोगों का अभिवादन उन्हीं की भाषा में किया जाये तो उन्हें बहुत अच्छा लगता है। रास्ते में चलते हुए भवन, पुल, खंभे, फसलें, स्मारक और पेड़-पौधों आदि को किसी भी प्रकार से क्षति नहीं पहुंचानी चाहिए।

ट्रैकिंग करते समय अथवा किसी ऊंचे स्थान अथवा शिखर पर पहुंचकर पत्थर इत्यादि फेंकना एक बुरी बात है, इससे हमेशा बचना चाहिए। ऐसा हो सकता है कि किसी व्यक्ति द्वारा फेंका गया पत्थर दूसरे के लिए दुर्घटना का कारण बन जाये। ऐसी दुर्घटना का शिकार उसी व्यक्ति के दल का कोई सदस्य अथवा राह चलता निर्दोष व्यक्ति भी हो सकता है। होना तो यह चाहिए कि यदि गलती से भी कभी कोई पत्थर खिसक जाये अथवा अपने स्थान से लुढ़कने लगे तो सभी लोगों को उसके प्रति सावधान करना चाहिए। 'पत्थर...पत्थर' चिल्लाकर लोगों को सचेत किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में यदि पत्थर गिरने की दिशा के संबंध में भी बता दिया जाये तो उचित रहता है। ट्रैकिंग करते हुए बेकार ही शोर-शराबा नहीं करना चाहिए। साधारण रूप से चिल्लाना किसी दुर्घटना में फंसकर सहायता मांगने का प्रतीक समझा जाता है। चिल्लाने की आवाज सुनते ही स्थानीय लोग अपना काम-काज छोड़कर उस स्थान की ओर भागने लगते हैं।

जहां पर रात में विश्राम किया जाये उस स्थान को छोड़ने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि वह पूरी तरह से साफ-सुथरा है और पीछे आने वाले व्यक्तियों अथवा दल को वहां ठहरने में कोई असुविधा नहीं होगी। जब तक दल वहां ठहरे दूसरों की शांति भंग नहीं करनी चाहिए।

रास्ते में यदि दल के सदस्यों को कोई ऐसी बात दिखाई दे जिसकी सूचना

देना देश हित में हो तो तुरंत संबंधित अधिकारियों को सूचित करके कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। यदि कुछ ठोस सुझाव हों तो देने में झिझक अथवा शर्म महसूस नहीं करनी चाहिए। हो सकता है अधिकारी उन सुझावों को व्यवहार में लाने के योग्य समझें और उनसे देश और समाज का भला हो।

ट्रैकिंग अभी भारत में शैशवावस्था में है। धीरे-धीरे लोगों का रुझान इस खेल के प्रति हो रहा है। ज्यों-ज्यों अधिक लोग ट्रैकिंग पर जाने लगेंगे इसके नियमों में विकास होगा। संक्षेप में ट्रैकिंग के लिए पर्वतों पर जाते समय इस आदर्श वाक्य को सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि, "वहां से छायाचित्रों के अतिरिक्त कुछ न लायें और वहां पर अपने पद्चिह्नों के अतिरिक्त कुछ भी छोड़कर न आयें।"

# 10

# शिविर

सभ्यता के प्रारंभ में ही मानव को अपने कुटुम्ब अथवा कबीलों के साथ भोजन की तलाश में दूर-दूर तक भटकना पड़ता रहा है। मार्ग में कैंप लगाकर पड़ाव डालने की उसकी आवश्यकता तभी से चली आ रही है। जब व्यापार करने के लिए व्यापारियों के दल, काफिले बनाकर एक स्थान से दूसरे स्थानों पर जाने लगे तब भी उन्हें मार्ग में शिविर लगाने आवश्यक प्रतीत हुए। कैंपों ने ही धीरे-धीरे मानव सभ्यता के विकास के आगामी चरणों में अस्थायी घरों और बाद में स्थाई मकानों का रूप धारण किया। जहां स्थाई घर बनाना संभव नहीं था वहां शिविर लगाकर ही गुजारा चलाया जाता रहा है। आज भी व्यापारी शिकारी और खोजी प्रवृत्ति के लोग जब अपनी लंबी और दुर्गम यात्राओं पर निकलते हैं तो रास्ते में जगह-जगह शिविर लगाते हैं। विशेष रूप से जंगलों, पर्वतों और रेगिस्तानों जैसे दुर्गम भू-प्रदेशों में तो यह लगभग अनिवार्य है।

शिविर लगाकर रहना, कैंप को व्यवस्थित रूप से चलाना, उसका रखरखाव, सुरक्षा और आसपास की सफाई इत्यादि गतिविधियों का अपना ही महत्व है। शिविर अपने-आप में एक पूरी पुस्तक का विषय है। यहां पर हमारा अभिप्राय केवल ट्रैकिंग के दौरान लगाये जाने वाले शिविरों से ही है। ये कैंप एक स्थान पर एक-दो दिन के लिए ही लगाये जाते हैं। शुरू में कैंप को मात्र कहीं थोड़े समय के लिए ठहरने के स्थान से अधिक महत्व नहीं दिया जाता था। अब ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि व्यक्तित्व के विकास में कैंप महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसी कारण कैंपिंग को एक अलग गतिविधि के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। ट्रैकिंग की ही तरह भारत में अभी इसका अधिक प्रचलन नहीं हुआ है परंतु यूरोप में तो यह लोगों के जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी है।

यूरोप में बच्चे के संपूर्ण विकास के लिए माता-पिता स्वयं रुचि लेकर उसे कैंपिंग से परिचित करवाते हैं। प्रायः हर परिवार छुट्टियां व्यतीत करने के लिए घर से दूर निकल जाता है और कुछ दिन कैंपों में रहकर न केवल अपनी थकान मिटाता

है, बल्कि शहरी कोलाहल से दूर रहकर प्रकृति के सौंदर्य का आनंद भी उठाता है।

शिविरों में रहना स्वास्थ्य के लिए अच्छा माना जाता रहा है। अब इसके द्वारा होने वाले मानसिक एवं बौद्धिक विकास के महत्व को भी स्वीकार किया जाने लगा है। 1958 में भारत सेवक समाज द्वारा कानपुर में कैंप जीवन के संबंध में एक अधिवेशन किया गया था। इसमें भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने दो दिन तक रहकर कैंप जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया था। बाद में उन्होंने इस विषय पर अनेक सुझाव भी दिये और कहा कि कैंप जीवन में शारीरिक क्षमताओं के विकास से अधिक ध्यान व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर देना चाहिए। उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया था कि कैंप जीवन में व्यक्ति को परस्पर सहयोग करके एक साथ रहना, एक साथ काम करना, नियमानुसार दिनचर्या को चलाना, अनुशासन का पालन करना, धार्मिक मान्यताओं का सम्मान करना और स्वावलंबी बनना सीखना चाहिए। उन्होंने बताया कि यदि कैंप में रहने के बाद लोगों में उपरोक्त गुणों का विकास हो जाये तो वे अपने मौहल्ले, नगर, प्रांत और देश के लिए आदर्श सिद्ध हो सकते हैं।



एन.सी.सी., यूथ होस्टल, एन.एस.एस. स्काउट एवं कैंपिंग एसोसिएशन बहुत बड़े पैमाने पर युवकों को प्रशिक्षित करने के लिए शिविर लगाते हैं। हर वर्ष हजारों युवक-युवतियां इनमें जाते हैं परंतु अभी तक उपरोक्त आदर्शों का व्यवहार में प्रदर्शन बहुत कम दिखाई दिया है। इतना जरूर है कि जो युवक कैंप जीवन के अभ्यस्त होते हैं वे अन्य युवकों से अपेक्षाकृत अधिक अनुशासन का पालन करते हैं और जीवन के अनेक क्षेत्रों में कुछ कर दिखाने की ललक उनके मन में पैदा हो जाती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि कैंप जीवन को प्रत्येक छात्र के लिए अनिवार्य बनाने के प्रयास किये जायें।

ट्रैकिंग के दौरान भी ट्रैकर्स को 5-7 से लेकर 25-30 दिन तक कैंपों में रहना पड़ता है। ट्रैकिंग का भरपूर आनंद उठाने के लिए यह जरूरी है कि ट्रैकर्स को कैंपिंग के संबंध में पूरी जानकारी हो। कैंप कहां और कैसे लगाना चाहिए और किस प्रकार उसका संचालन किया जाना चाहिए, ट्रैकर्स के लिए यह सब जानना आवश्यक है।

कैंपिंग के संबंध में निम्नलिखित जानकारी को यदि ध्यान में रखा जाये तो यात्रा और अधिक आनंददायक बन सकती है :

**स्थान का चुनाव :** शिविर लगाने के लिए स्थान का चुनाव करना बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसलिए कैंप लगाने का निर्णय करने से पहले स्थान का पूरी तरह से निरीक्षण कर लेना चाहिए। पानी की उपलब्धता को सबसे पहले ध्यान में रखना चाहिए। पानी खाना बनाने और पीने के लिए तो चाहिए ही, पानी न हो तो पूरी दिनचर्या अस्त-व्यस्त हो जाती है। जहां सफाई और कपड़े इत्यादि धोने के लिए पानी काफी मात्रा में हो शिविर वहीं लगाना चाहिए।

शिविर स्थल जितना अधिक समतल होगा उतना ही बेहतर होगा। यदि समतल न हो तो कम से कम उसे समतल करने की गुंजाइश अवश्य होनी चाहिए। शिविर स्थल आबादी से थोड़ा हटकर ही होना चाहिए। ऐसी जगह का चुनाव करना चाहिए जहां तूफान आने अथवा भूस्खलन की कोई संभावना न हो। नदी अथवा झील के किनारे यदि कैंप लगाना हो तो थोड़ी दूर पर ही लगाना चाहिए क्योंकि कई बार वर्षा के कारण इनके किनारे टूट जाते हैं और कैंप में रहने वाले लोगों का जीवन संकट में पड़ जाता है। यदि आवश्यक हो तो शिविर लगाने से पूर्व संबंधित अधिकारियों से कैंप लगाने की आज्ञा अवश्य ले लेनी चाहिए। अब कुछ मार्गों पर स्थानीय प्रशासन अथवा लोगों ने कुछ ऐसे शिविर स्थलों का विकास भी कर लिया है जो बहुत सुविधाजनक हैं। ऐसे स्थल किराये पर उपलब्ध हो सकते हैं। जहां ऐसे स्थान उपलब्ध हों वहां इनका प्रयोग सुविधापूर्ण रहता है।

**शिविर लगानाः** समतल स्थान पर तंबू आराम से लगाये जा सकते हैं और इस कारण

इनमें आराम से सोया जा सकता है। ट्रैकिंग के दौरान सदस्यों को यदि ठीक से सोने का अवसर मिल जाये तो यात्रा की सफलता सुनिश्चित हो जाती है।

रसोईघर का तंबू सोने-बैठने के तंबुओं से हटकर लगाया जाना चाहिए। लेकिन यह देख लें कि पानी जरूर कहीं पास में हो। पानी के प्रयोग के अनुरूप ही स्थल निश्चित किये जाने चाहिए। सफाई करने, नहाने और कपड़े धोने का स्थान अलग-अलग होना चाहिए। कैंपिंग क्षेत्र में सबसे ऊपर का स्थान पीने के पानी के लिए रखा जाना चाहिए और किसी भी सदस्य के लिए इस स्थान से ऊपर जाकर पानी का प्रयोग करना वर्जित कर देना चाहिए। पानी को प्रदूषण से बचाने का हर संभव प्रयास करना चाहिए। शौच इत्यादि का स्थान थोड़ी दूर पर सबसे नीचे की ओर निश्चित किया जाना चाहिए। इन सभी स्थानों पर साईन बोर्ड लगा देने चाहिए।

तंबुओं से पर्याप्त दूरी पर ही आग जलाई जानी चाहिए ताकि कोई चिंगारी छिटककर उन्हें नष्ट न कर सके। कैंप-फायर के अवसर पर भी यह सावधानी बरतनी चाहिए। आसपास के वन को भी आग से पूरी तरह से सुरक्षित रखने के प्रयास करने चाहिए।

यद्यपि कैंप लगाने में कुली सहायता करते हैं फिर भी हर सदस्य को इसमें रुचि लेनी चाहिए और कैंप लगाना सीखना चाहिए। जो अनुभवी सदस्य हैं उन्हें नये-नये सदस्यों को इस विषय में प्रशिक्षित करना चाहिए। पहले तंबू को जमीन पर खोलकर बिछा देना चाहिए और जहां-जहां पोल गाड़ने हों वहां उन्हें रख देना चाहिए। आवश्यक गहराई तक गड्ढे खोदकर तंबू खड़ा करके उसे रस्सियों से कसकर बांध देना चाहिए। तंबू लगाते समय सूर्य की रोशनी और हवा के रुख का भी ध्यान रखना चाहिए।

**शिविर संहिता :** कैंप में अनावश्यक शोर मचाकर अन्य सदस्यों, आसपास के रहने वाले निवासियों और पशु-पक्षियों की शांति भंग नहीं करनी चाहिए। यदि स्थानीय लोग कैंप में आयें तो उनका घर आये मेहमान की तरह से सत्कार करना चाहिए। उनकी कुशल-क्षेम के अतिरिक्त आसपास के क्षेत्रों की समस्याओं के संबंध में पूछना चाहिए और उन्हें जीवन के संबंध में विविध प्रकार की जानकारी देनी चाहिए। आवश्यकता हो तो दवाइयां इत्यादि देकर उनकी सहायता करनी चाहिए। किसी भी बात पर उनका उपहास नहीं करना चाहिए।

दल के सदस्यों को चाहिए कि वे पानी को हर प्रकार के प्रदूषण से बचायें क्योंकि निचले स्थानों पर रहने वाले अनेक लोगों को उसी पानी का प्रयोग करना होता है। खेतों में खड़ी फसलों, पेड़-पौधों और वनस्पतियों को किसी प्रकार से हानि न पहुंचायें। पानी पर बने बांधों और पुलों, स्थानीय स्मारकों, मंदिरों और गुफाओं को किसी प्रकार से नुकसान न पहुंचायें।

सोने से पूर्व कैंप-फायर अवश्य बुझा दें। जहां पर स्थानीय लोगों की भावनाएं रात्रि में आग बुझाने के विरुद्ध हों, उन्हें भी इससे होने वाली हानियों के विषय में समझा दें। स्थानीय लोगों के सामाजिक रीति-रिवाजों का आदर करते हुए ही उन्हें हर बात समझा दें और ऐसी कोई बात न करें जिससे उनकी भावनाओं को ठेस लगे।

शिविर स्थल को पूरी तरह से साफ-सुथरा रखें। जब दल वह स्थान छोड़कर जा रहा हो तो उसे यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि पूरे स्थान की सफाई हो चुकी है। पीछे आने वाले दलों को भी उस स्थान का प्रयोग करना होता है, इसलिए ऐसे स्थलों को साफ छोड़ना जरूरी होता है।

यदि दल किसी भवन में रात्रि विश्राम के लिए ठहरे तो उस भवन की सफाई भी उसी का दायित्व है। जिस भवन में ठहरें उसका निर्धारित किराया जाने से पहले अवश्य ही चुकता कर दें।

रात को भवन के सभी दरवाजे ठीक से बंद कर लें ताकि कोई आवारा अथवा जंगली जानवर भीतर न आ सके। यदि दल के साथ कुत्ते भी हों तो उन्हें पूरी तरह से नियंत्रण में रखें।

जिस भवन में ठहरें वहां के प्रबंधक को भवन की सफाई करने में दल के सदस्यों को पूरी तरह से सहयोग देना चाहिए। भवन को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचाई जानी चाहिए। वहां से किसी वस्तु को हटाना अथवा उतारना नहीं चाहिए। किसी दीवार इत्यादि पर अपना नाम लिखना बिलकुल उचित नहीं। भवन में रसोई और शौचालय की सफाई पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। जाते समय भवन को उसी हालत में छोड़ना चाहिए जैसी हालत में दल उसमें आकर रहना चाहता हो।

**सफाई :** गंदगी से कई प्रकार की बीमारियां फैलने का भय बना रहता है। बढ़ता हुआ प्रदूषण भी इसमें सहयोग करता है। ऐसी हालत में कैंपों की सफाई पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। कैंप की सफाई में न केवल शिविर की सफाई बल्कि व्यक्तिगत और रसोई इत्यादि की सफाई भी शामिल है।

**व्यक्तिगत सफाई :** ट्रैकिंग शुरू करने से पहले ही सदस्य को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि उसे कोई छूत की बीमारी तो नहीं है। ट्रैकिंग के दौरान हर समय बहुत से लोगों को लंबी अवधि तक एक साथ रहना होता है, ऐसी हालत में छूत की बीमारी अन्य सदस्यों को भी लग सकती है।

लंबी और कठिन यात्रा के कारण, ट्रैकिंग के दौरान पूरा शरीर पसीने से लथपथ हो जाता है जिसके कारण शरीर से गंध निकलने लगती है। इसलिए यह आवश्यक

है कि अपने शरीर की, हर रोज अच्छी तरह से सफाई की जाये। यदि दिन में गरमी हो तो स्नान कर लेना चाहिए, नहीं तो गीले तौलिए से पूरे शरीर की सफाई करनी चाहिए। गर्मियों में तो प्रातःस्नान दिन भर तरो-ताजा बनाये रखता है। हाथ-पैरों की सफाई पर विशेष ध्यान देना जरूरी है। नाखून हमेशा कटे हुए रखें और साफ जुराबें ही पहनें।

पानी की बोतल अथवा पानी पीने के प्रयोग के लिए रखे गये मग को शौच इत्यादि के लिए प्रयोग में नहीं लाना चाहिए। शौच के लिए यदि अलग से पानी की व्यवस्था न हो तो टायलेट पेपर का प्रयोग करें और हाथों को साबुन से साफ करें।

बर्फ में ट्रैकिंग करते समय साबुन से मुंह नहीं धोना चाहिए क्योंकि इससे त्वचा में जलन होने लगती है। कुछ ट्रैकर पर्वतों में प्राकृतिक रूप से रहने की बात करते हैं। अर्थात नहाने, धोने और शेव इत्यादि करने से छुट्टी। परंतु यह तब तक संभव नहीं है जब तक इसके लिए व्यक्ति मानसिक रूप से तैयार न हो। लंबे मार्गों पर तो यह वैसे भी संभव नहीं है।

**रसोईघर की सफाई :** साफ-सुथरे रसोईघर की अनिवार्यता से किसे इंकार हो सकता है ? रसोईघर के बर्तन गरम पानी में साबुन अथवा बर्तन धोने का पाउडर मिलाकर साफ करने बहुत जरूरी हैं। पर्वतों में बिना गरम पानी के बर्तनों पर से चिकनाई दूर करना संभव नहीं होता। खाना बनाने वाले रसोइये और उसके सहायकों की सफाई पर भी ध्यान देना जरूरी है। उनके नाखून कटे हुए और साफ हों। उन्हें चाहिए कि खाना बनाने से पूर्व वे अच्छी तरह से हाथ धोकर रसोई पकाने का कार्य शुरू करें। खाना बनाते अथवा परोसते समय उन्हें बीड़ी-सिगरेट इत्यादि नहीं पीनी चाहिए।

पर्वतों पर दाल, चावल जैसी साधारण खाद्य सामग्री भी जल्दी नहीं पकती। कम पके हुए पदार्थ बीमारी का कारण बन सकते हैं। इसलिए खाना बनाने के लिए प्रेशर कुकर का प्रबंध अवश्य करना चाहिए।

रसोईघर के पास ही रसोई का कूड़ा-करकट फेंकने के लिए एक गड्ढा खोद लेना चाहिए और शिविर का स्थान छोड़ने से पहले उसे अच्छी तरह से मिट्टी और पत्थरों से ढंक देना चाहिए।

पानी को हमेशा छानकर और उबालकर ही पीना चाहिए। पानी में पोटाशियम परमेगनेट डालकर प्रयोग में लाया जाये तो अच्छा रहता है। यदि शिविर आबादी से नीचे की ओर लगा है तो सीधा नदी से लाया गया पानी नहीं पीना चाहिए।

हर ट्रैकर को खाना बनाना आना चाहिए। शिविर में इस अवसर का लाभ उठाते हुए पहले रसोईये की मदद करते हुए इस काम को सीखा जा सकता है।

**सामान्य बातें :** कुछ साधारण परंतु बहुत ही महत्वपूर्ण बातें हैं जिनका ध्यान ट्रैकर्स को शिविर में रहते हुए निरंतर रखना चाहिए। शिविर लगाने से शिविर बंद करने तक इन बातों को व्यवहार में लाना बहुत आवश्यक है।

कैंप में शौचालय और स्नानागार का स्थान थोड़ा हटकर निश्चित करना चाहिए। शौच के लिए कैंप से दूर गड्ढा खोदना चाहिए और प्रयोग के बाद उसे मिट्टी से अच्छी तरह से ढंक देना चाहिए। नहाने के स्थान से भी पानी के बहने का पूरा प्रबंध करना जरूरी है।

जब दल अपने अगले पड़ाव के लिए तैयार हो और शिविर बंद करना हो तो उससे पहले जितना भी कूड़ा-करकट पेटियां और रद्दी कागज इत्यादि हों उन्हें जला देना चाहिए। शिविर के प्रारंभ में ही दल के सदस्यों और कुलियों को यह निर्देश देना जरूरी है कि सभी कूड़ा-करकट एक ही स्थान पर एकत्र किया जाये ताकि उसे आसानी से जलाया अथवा दबाया जा सके। शिविर छोड़ते समय यह भी सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि कहीं कोई जलती हुई लकड़ी इत्यादि तो नहीं है और जहां आग जलाई गयी थी वह स्थान अच्छी तरह मिट्टी से ढंक दिया गया है। इस संदर्भ में थोड़ी-सी भी असावधानी भयंकर अग्निकांड का कारण बन सकती है। इससे कितनी बड़ी राष्ट्रीय क्षति हो सकती है इस बात का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

बोतलें, टिन के डिब्बे और अन्य ऐसी ही वस्तुएं जिन्हें जलाया जाना संभव न हो, उन्हें जमीन में दबा दिया जाना चाहिए। ऐसी वस्तुओं को नदी-नालों में बहा देना अथवा इधर-उधर फेंकना उचित नहीं। पश्चिमी देशों में यह प्रथा है कि ट्रैकर्स अपनी यात्रा से वापस लौटते समय सारा कूड़ा-करकट भी साथ में लाते हैं और उसे संबंधित अधिकारियों को नष्ट करने के लिए सौंप देते हैं ताकि पर्वतों की सफाई सुनिश्चित की जा सके।

**कैंप जीवन के प्रभाव :** युवा वर्ग को सही दिशा निर्देश मिले तो वह कोई भी चमत्कार कर सकता है। उसके पास असीम कार्यक्षमता, उत्साह और इच्छा-शक्ति होती है। यदि युवा वर्ग के इन गुणों को ठीक दिशा में मोड़ दिया जाये तो उनसे कई रचनात्मक कार्य करवाये जा सकते हैं। शिविर में कुछ दिन रहने के बाद अनेक युवकों के आचार-व्यवहार और विचारों में आश्चर्यजनक परिवर्तन देखने में आये हैं। कैंप जीवन के बाद वे बीड़ी-सिगरेट पीने जैसी बुरी आदतें न सिर्फ खुद छोड़ देते हैं बल्कि अन्य लोगों को भी इसके लिए प्रेरित करते हैं। आज जबकि हमारा युवा वर्ग मादक द्रव्यों के मोह में पड़कर अपना जीवन स्वयं नष्ट करने की दिशा में बढ़ रहा है, ट्रैकिंग और कैंपिंग से लाभ उठाना चाहिए। नशीले पदार्थों और मादक द्रव्यों के व्यसन से युवा वर्ग को दूर रखने के लिए कैंप सार्थक भूमिका निभा सकते हैं। यदि शुरू से

ही युवकों को ट्रैकिंग और शिविरों में एक साथ रहने का प्रशिक्षण दिया जाये तो वे ऐसी आदतों के शिकार ही नहीं होंगे।

शिविरों में एक साथ रहने वाले एक-दूसरे से कई बातें सीखते हैं। परस्पर विचार-विमर्श से उनके ज्ञान में बढ़ोतरी होती है और उनमें व्यवहार-कुशलता आती है। सामाजिक बुराइयां दूर करने में वे रुचि लेने लगते हैं। यदि शिविरों का आयोजन योजनाबद्ध ढंग से किया जाये तो युवा वर्ग को एक सकारात्मक भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। यदि कैंप जीवन व्यक्ति के दृष्टिकोण एवं मानसिक स्तर में व्यापकता लाने में सफल न हो तो वह व्यर्थ ही है। यदि शिविर लगाने वाले अधिकारी एवं प्रबंधक इस दिशा में जागरूक हों तो कैंप जीवन के उद्देश्यों को सहज ही प्राप्त किया जा सकता है। कैंप में आने वाले व्यक्ति एक कच्चे माल के समान निर्माता के साथ रहते हैं। निर्माता जैसा भी चाहे वैसा रूप उन्हें दे सकता है।

कैंप जीवन व्यक्ति को स्वावलंबी बनाता है। इसमें हम अपने बर्तन, कपड़े इत्यादि साफ करना, अपनी चीजों का ध्यान रखना और अपनी आवश्यकताओं के प्रति जागरूक होना सीखते हैं। स्वावलंबन के साथ ही साथ परस्पर सहयोग की भावना आती है। यह दोनों गुण किसी भी व्यक्ति के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में सक्षम हैं।

कैंप जीवन में लोग निरंतर एक-दूसरे के साथ संपर्क में आते हैं। इस कारण से मन में अपने विषय में जो गलतफहमियां होती हैं वे बहुत कुछ दूर होने लगती हैं। बेकार ही कोई भी अपनी क्षमताओं के लिए डींग नहीं हांक सकता, क्योंकि वहां का हर क्षण परीक्षा की घड़ी होती है। इसी प्रकार वहां पर व्यक्ति के भीतर, छिपे हुए गुणों को बाहर आने का अवसर मिलता है और उनका विकास होता है। अन्य साथियों द्वारा उसे अनेक ऐसे संकेत मिलते हैं जिनके द्वारा वह अपने व्यक्तित्व को पहचानने लगता है। हीन भावना अपने आप समाप्त होने लगती है।

शिविर में रहने पर सबको कोई न कोई काम तो करना ही पड़ता है। जब व्यक्ति अपने दायित्व का निर्वाह करता है तो उसे अपने ऊपर अधिक विश्वास होने लगता है। कैंप में कई बार व्यक्ति को तत्काल निर्णय लेने होते हैं और कई बार बहुत ही महत्वपूर्ण मामलों पर मिल-जुलकर, विचार-विमर्श करना होता है। ऐसे में उसे अपनी क्षमता दिखाने का पूरा अवसर मिलता है। संकट की घड़ी में स्वयं निर्णय लेने की क्षमता व्यक्ति में आत्मविश्वास पैदा करती है। जीवन-संग्राम में जूझते हुए बाद में ये गुण बहुत काम आते हैं।

शिविर में रहने पर व्यक्ति मिल-जुलकर काम करने की भावना का पाठ पढ़ता है। इसके बिना कैंप जीवन का कोई अर्थ ही नहीं। कई बार जब व्यक्ति को पूरे दिन का कार्यक्रम बनाने अथवा उसे चलाने का पूरा दायित्व सौंप दिया जाता है तब

उसे अपनी कार्यक्षमता का ज्ञान होता है। कैंप जीवन में लगभग सभी लोगों को बारी-बारी से ऐसे दायित्व सौंपे जाते हैं।

कैंप में ऐसे अवसर भी आते हैं जब उसे अपनी व्यवहार कुशलता से विरोधियों का मन जीतना होता है और दल के सारे सदस्यों का सहयोग प्राप्त करना होता है। व्यक्ति में हर प्रकार के गुणों का विकास हो, इसलिए कैंप में रहते समय सदस्यों के दायित्वों में निरंतर परिवर्तन किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य को विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्व निभाने का अभ्यास हो जाता है।

ट्रैकिंग के दौरान जब काफी ऊंचाई पर शिविर लगता है तब लोग अपने आपको प्रकृति के बहुत समीप पाते हैं। बहुत निकटता से उन्हें यह देखने का अवसर मिलता है कि प्रकृति का हर कार्यक्रम निश्चित समय पर होता जाता है। व्यक्ति न केवल प्रकृति का आनंद उठाता है बल्कि उसे प्रकृति को समझने का अवसर भी मिलता है। संपूर्ण सृष्टि को कौन चला रहा है, इसकी जिज्ञासा व्यक्ति के मन में पैदा होती है और उसमें आध्यात्मिक एवं नैतिक गुणों का विकास होता है। वास्तव में शिविर व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इसका पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए सुव्यवस्थित प्रयास किये जायें। राष्ट्रीय और सामाजिक हितों को ध्यान में रखते हुए कैंपिंग को पूरा-पूरा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

# 11

# हिमालय में ट्रैकिंग

भारत जैसे विशाल देश में ट्रैकिंग करने वालों के लिए यात्रा मार्गों की कोई कमी नहीं है। ट्रैकिंग मुख्यतः पर्वतारोहण का प्रारंभिक चरण होने के कारण पर्वतों में ही की जाती है। वह भी विशेष रूप से हिमालय में। इसलिए यहां हम हिमालय के उन क्षेत्रों का विस्तार से वर्णन करेंगे जहां अधिक से अधिक ट्रैकर जाना पसंद करते हैं अथवा जहां ट्रैकिंग जैसे खेल के विकास के लिए असीम संभावनाएं हैं। भारत में सात प्रमुख पर्वतीय शृंखलाएं हैं। हिमालय श्रेणियों के अतिरिक्त उत्तर और पूर्व की सीमा में फैली पटकाई, गंगा के मैदानों को दक्षिण घाट से अलग करने वाली विंध्य श्रेणियां, पूर्वी तटीय मैदान की सीमा निर्धारण करने वाले पूर्वी घाट, सतपुड़ा, अरावली और सह्याद्रि की पर्वत शृंखलाएं ट्रैकर्स के लिए नयी-नयी चुनौतियां प्रस्तुत करती हैं।

हिमालय विश्व की सर्वोच्च पर्वतीय व्यवस्था है। लगभग पांच लाख वर्ग किलोमीटर भू-भाग पर स्थित और 2500 किलोमीटर तक निर्बाध रूप से फैला यह विश्व की नवजात पर्वत शृंखलाओं में से एक है। इसमें विश्व की सर्वोच्च चोटी एवरेस्ट 8848 मीटर और 7500 मीटर से भी अधिक ऊंचाई के लगभग दस शिखर, पर्वतारोहियों को वर्षों से अपनी ओर आकर्षित करते रहे हैं। आज भी इसकी अनेकानेक अजेय चोटियां हैं जिन पर चढ़ने के प्रयास निरंतर होते रहते हैं।

हिमालय की सौंदर्य से भरपूर पर्वत श्रेणियां हर प्रकार के ट्रैकर के लिए असीम संभावनाएं लिए हुए हैं। यहां कम ऊंची और बहुत ऊंची पर्वत शृंखलाएं हैं। जगह-जगह प्रसिद्ध धार्मिक तीर्थ-स्थल हैं जो देश-विदेश में रहने वाले करोड़ों लोगों के लिए श्रद्धा का केंद्र हैं। हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, जम्मू-कश्मीर से लेकर सिक्किम तक ट्रैकर्स के लिए इतने वैकल्पिक स्थान हैं कि एकाएक किसी एक का चुनाव करना कठिन हो जाता है। सब एक-दूसरे से बढ़कर सुंदर, आकर्षक और चुनौतियों से भरे हुए।

हिमालय को चार पूर्वी, उत्तरी, मध्य और पश्चिमी श्रेणियों में विभाजित किया



जा सकता है। पश्चिमी हिमालय में संपूर्ण हिमाचल प्रदेश, उत्तरी हिमालय के क्षेत्र में जम्मू और कश्मीर, मध्य हिमालय में उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र कुमायूं और गढ़वाल तथा पूर्वी हिमालय के अंतर्गत सिक्किम और दार्जिलिंग के क्षेत्र आते हैं। इन क्षेत्रों में हजारों जाने-पहचाने रास्ते हैं जहां वर्षों से देश-विदेश के लाखों लोग ट्रैकिंग करते हैं। अब हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक ऐसे नये रास्ते खोजे जा रहे हैं जो आज तक अज्ञात थे। विदेशी ट्रैकर्स के लिए भी कई प्रतिबंधित क्षेत्रों को खोल दिया गया है। यही कारण है कि भारत आने वाले विदेशी ट्रैकर्स की संख्या इन दिनों बढ़ती जा रही है।

किसी भी ट्रैक की योजना समय और साधनों की उपलब्धता के अनुरूप ही तय की जाती है। चाहे तीन-चार दिन की यात्रा पर निकलें और चाहें तो सप्ताह, दस दिन की, या उससे भी अधिक लंबी यात्रा पर, हिमालय लंबे और छोटे हर प्रकार के यात्रा-पथों से भरा पड़ा है। यात्रा पैदल, घोड़ों, जीप अथवा बस से की जा सकती है। विश्राम के लिए विश्राम-गृह, स्कूल भवन तथा पंचायतघर उपलब्ध हो सकते हैं। पहाड़ी गुफाएं, बड़ी-बड़ी चट्टानें और घने पेड़ भी रात गुजारने के पड़ाव बन सकते हैं।

**पूर्वी हिमालय :** सिक्किम और दार्जिलिंग के आसपास का पर्वतीय प्रदेश पूर्वी हिमालय कहलाता है। यहां पर विश्व की तीसरी सबसे ऊंची चोटी कंचनजंघा (8586 मीटर) स्थित है। सिक्किम के मूल निवासी लेप्चा इसे स्वर्ग मानते हैं और कंचनजंघा की यहां एक देवता के रूप में उपासना होती है। यहां के लेप्चा, भूटिया और नेपाली लोगों की सभ्यताओं, रीति-रिवाजों और भाषाओं की त्रिवेणी वाला पूर्वी हिमालय भू-प्रदेश ट्रैकर्स को अनेक रहस्यमय आवरण ओढ़े हुए दिखाई देता है। जब सूर्य की रश्मियां दूधिया कोहरे में सिमटी हुईं अवतरित होती हैं तो गहरी घाटियों से दूधिया धुंध के बादल उस आवरण को गहराते हैं। चारों ओर सिंदूरी आभा पर्वत शिखरों को आलोकित करती है और चीड़ के वनों के मध्य से उठती धुंध की लकीरों से लगता है जैसे ऊंची पर्वत शृंखलाओं से घिरी घाटियां जैसे सुलग रही हों।

इस भू-प्रदेश में सुहाने वनों की भरमार है। इसी कारण इसे हरे सोने की खान कहा जाता है। यहां पर चार हजार किस्म के पेड़-पौधों और वनस्पतियों के कारण एक शांत और मनोहारी दृश्यावली दर्शक का मन मोह लेती है। विश्व में सबसे अधिक वनों से ढंकी धरती यही है। यहां पर अपनी छटा बिखेरती फूलों की घाटियां विश्व-प्रसिद्ध हैं। विश्व में पाई जाने वाली फूलों की 5000 किस्मों में से लगभग 600 किस्में सिक्किम में ही मिलती हैं। यहां का प्रसिद्ध फूल रोडोडेनडरन भी ट्रैकर की सारी थकान दूर कर देता है। केवल इसी एक फूल की यहां पर तीस किस्में पायी जाती हैं। बीस प्रकार के बांस यहां मिलते हैं। फूलों के ही अनुरूप यहां पर तरह-तरह की रंग-बिरंगी

तितलियां मिलती हैं।

प्राचीन बौद्ध मठ भी बहुत से लोगों को इस भू-प्रदेश में आने के लिए बाध्य करते हैं। यहां के मठों में पनपती, पलती और संरक्षित कला के अद्भुत नमूनों को देखने के लिए देश-विदेश के लाखों सैलानी हर वर्ष यहां आते हैं।

भारत का पहला पर्वतारोहण संस्थान इसी पर्वतीय शृंखला की रमणीय स्थली दार्जिलिंग में बनाया गया था। इस संस्थान से पर्वतारोहण और ट्रैकिंग के संबंध में काफी जानकारी प्राप्त हो सकती है। बहुत संभावना है कि यहां पर किसी 'एवरेस्ट हीरो' से भी मुलाकात हो जाये। टाईगर हिल्स से सूर्योदय का सुहावना दृश्य देखने के लिए हर सुबह सैकड़ों लोग एकत्र होते हैं। जो व्यक्ति एक बार यह दृश्य देख लेता है वह आत्म-विभोर होकर रह जाता है और जीवनभर उसकी सुखद अनुभूति मन में बसाये रखता है।

सिलीगुड़ी, डीजोंगरी, गैंकटोक, मैमायागची और दार्जिलिंग जैसे पर्यटक स्थल, तिस्ता, रंगित और ब्रह्मपुत्र जैसी नदियां और नाथुला जैसा कठिन दर्रा, 800 फुट से लेकर 28,000 फुट तक के पर्वत शिखर जिनके कारण समुद्र से कहीं भी इस भू-प्रदेश की ऊंचाई एक समान नहीं है।

पूर्वी हिमालय की यात्रा पर जाने से पहले विदेशी नागरिकों को संबंधित अधिकारियों से संपर्क करके ही अपनी यात्रा आरंभ करनी चाहिए, क्योंकि इस क्षेत्र में कुछ प्रतिबंधित इलाके भी हैं जहां की यात्रा के लिए पहले से अनुमति लेना जरूरी होता है।

**उत्तरी हिमालय :** कश्मीर को दुनिया का स्वर्ग कहा जाता है। पश्चिमी देशों के अधिकांश पर्यटक कश्मीर और ताजमहल देखने के लिए ही भारत की यात्रा करते रहे हैं। कश्मीर की घाटी का सबसे सुंदर नगर है श्रीनगर। यहां पर डल झील में तैरते शिकारों में रहना और आसपास के उद्यानों की सैर सैलानी को हमेशा याद रहती है। कश्मीर की सुंदरता का वर्णन शब्दों में तो किया ही नहीं जा सकता। यहां के हरे-भरे उद्यानों, ऊंचे झरनों और अपूर्व सौंदर्य से घिरे पहलगांव, गुलमर्ग, सोनमर्ग, खिलनमर्ग, तंगमर्ग, और अलपथर झील, कोलाही ग्लेशियर और शिखर तथा लिडरवाट घाटी की यात्रा बार-बार करने को मन चाहता है। इन स्थलों की यात्रा के लिए हर प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध हैं। शीतकालीन खेलों का पूरा-पूरा आनंद लेने के लिए भी हर प्रकार के प्रबंध हैं।

बर्फ से ढंकी चोटियों से घिरे बाग-बगीचों के श्रीनगर शहर को छोड़कर आसपास के क्षेत्रों की यात्रा पर न जाने वाले लोग भी केवल डल झील के किनारे सीढ़ीनुमा बने निशात बाग में घूमते हुए प्रकृति के सौंदर्य का आनंद ले सकते हैं। शालीमार, चश्माशाही और नेहरू बाग रंग-बिरंगी सुंदरता के अनुपम उदाहरण हैं। शालीमार बाग

के फव्वारे, रंग-बिरंगे फूल, चिनार और देवदार के ऊंचे-ऊंचे पेड़ पर्यटक का मन मोह लेते हैं।

यहां पर गोल्फ के सुंदर मैदान भी हैं। गुलमर्ग में विश्व का सबसे ऊंचा हरा-भरा 18 छिद्रों वाला गोल्फ का मैदान है। देवदार व चीड़ के पेड़ों से घिरे इस मैदान की छटा देखते ही बनती है। लिद्दर नदी के किनारे-किनारे ट्रैकिंग करते हुए उसकी सुंदरता का रसपान करने का आनंद ही कुछ और है। पामपुर, अवंतीपुर, अच्छाबल, मरन तथा मार्तंड तारसर झील और चंदनबाड़ी जैसे दर्शनीय स्थल हैं। अनेक स्थलों पर ट्रैकर्स के ठहरने के लिए तंबुओं का भी प्रबंध है।

बौद्ध मठ देखने के साथ ही साथ लंबी दूरी की ट्रैकिंग करनी हो तो लेह जाया जा सकता है। लेह, कारगिल, जांसकर की वादियां नुन और कुन की चोटियों पर हजारों ट्रैकर्स आते हैं। कारगिल और लेह वायुयान से भी पहुंचा जा सकता है। लेह कराकोरम की पहाड़ी पर बसा समुद्र तट से 3500 मीटर ऊंचा लद्दाख का मुख्य और सर्वाधिक ठंडा शहर है। शांत वातावरण, कई प्रकार के लंबे और छोटे दुर्गम पथों, बौद्ध मठों, विभिन्न जीव-जंतुओं और वनस्पतियों से भरपूर होने के कारण ये क्षेत्र हमेशा से ही सैलानियों के आकर्षण के केंद्र रहे हैं। जम्मू कश्मीर में दर्शनीय स्थलों की कमी नहीं। प्रश्न है तो केवल चुनाव का। हर स्थल इतना आकर्षक है कि इसका चुनाव करना कठिन होता है कि कहां की यात्रा पहले आरंभ करें।

**मध्य हिमालय** : उत्तर प्रदेश का कुमायूं और गढ़वाल पर्वतीय क्षेत्र मध्य हिमालय के रूप में जाना जाता है। अनेकानेक पवित्र तीर्थ-स्थलों की भूमि होने के कारण भारतीय प्रारंभ से ही इस क्षेत्र को देवताओं की भूमि मानते आये हैं। केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री, ऋषिकेश और हरिद्वार जैसे स्थलों की यात्रा करने के लिए देश-विदेश से करोड़ों लोग यहां आते हैं। केदारनाथ उत्तराखंड में एक भव्य मंदिर है। इस विशाल और प्राचीन मंदिर की यात्रा के लिए ऋषिकेश से ट्रैकर को मार्ग में रुद्रप्रयाग, सोनप्रयाग और गौरीकुंड होकर जाना होता है। मार्ग में ट्रैकर को प्राकृतिक सौंदर्य के भरपूर दर्शन होते हैं।

कुमायूं का प्रसिद्ध पर्वतीय स्थल नैनीताल और उसके आसपास बिखरे अनेकानेक मार्ग विशेष रूप से गरमियों में बड़ी संख्या में ट्रैकर्स को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वैसे थोड़ी-बहुत संख्या में ट्रैकर्स वर्षभर यहां आते रहते हैं। पर्वतों की रानी मसूरी के बाद, मध्य हिमालय का यह सर्वाधिक लोकप्रिय स्थान है। नैनीताल के बीच पहाड़ियों से घिरी सुंदर झील पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण रखती है। भीम ताल के बीच टापू पर्यटकों को नौका विहार का निमंत्रण देता है। अलमोड़ा का प्राचीन शहर स्वास्थ्यवर्धक जलवायु और प्राकृतिक दृश्यों के लिए प्रसिद्ध है। कौसानी पहुंचकर हिमालय की ऊंची और बर्फीली चोटियों से सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य देखने का

अपना ही आनंद है। रानीखेत का वातावरण शांत और मादक है।

मसूरी में अगर एक-दो दिन रुक सकें तो ट्रैकर्स घुड़सवारी और स्केटिंग का आनंद भी उठा सकते हैं। कैंपटी फाल्स, म्युनिसिपल गार्डन, चिल्ड्रंस लॉज, यमुना ब्रिज, नाग टिब्बा की यात्राएं भी सैलानी का मन मोह लेती हैं। कैंपटी फाल्स में नहाकर थकान दूर हो जाती है। ऊंचे-ऊंचे देवदार और चीड़ के पेड़ों के बीच में से झांकती हिमालय की चोटियां बहुत लुभावनी लगती हैं।

नंदादेवी, कामेट, दूनागिरि, त्रिशूल, चगबंग, नीलकंठ और बंदरपूंछ जैसी प्रसिद्ध चोटियां हजारों ट्रैकर्स और पर्वतारोहियों को आकर्षित करती हैं। प्रसिद्ध हिमनदों, पवित्र नदियों, घने जंगलों और विभिन्न जन-जातियों के लोकसंगीत से गूंजता यह पर्वतीय प्रदेश हमेशा से सैलानियों के आकर्षण का केंद्र रहा है। यहां पर कुछ स्थान विदेशियों के लिए प्रतिबंधित हैं। पर्यावरण की रक्षा की दृष्टि से भी कुछ स्थान समय-समय पर सैलानियों के लिए बंद कर दिये जाते हैं। इसलिए इस क्षेत्र की यात्रा से पूर्व संबंधित अधिकारियों से जानकारी/अनुमति लेकर ही यात्रा पर निकलना चाहिए।

**पश्चिमी हिमालय :** पश्चिमी हिमालय में वे पर्वत श्रेणियां सम्मिलित हैं, जो हिमाचल प्रदेश में आती हैं। इनमें शिवालिक की पहाड़ियां, धौलाधार पर्वत श्रेणियां, पीर पंजाल के कुछ स्थल, कुल्लू, लाहौल, स्पीति और किन्नौर की पर्वतीय शृंखलाएं शामिल हैं। संभवतया यह हिमालय का सबसे अधिक सुंदर भाग है जो अब तक अपने सौंदर्य को अक्षुण बनाये हुए है। शिमला, कुल्लू, मनानी, धर्मशाला, डलहौजी, चंबा, कसौली और चैल जैसे प्रसिद्ध पर्वतीय स्थल इसी क्षेत्र में हैं। रेणुका, रिवालसर, चंद्रताल, सूरजताल, भृगु, दशौर इत्यादि पवित्र झीलें हैं। ब्यास कुंड भी यहीं है।

इस भू-प्रदेश में गरम पानी के ऐसे स्रोत हैं जिनके बारे में जानकर सैलानी आश्चर्यचकित रह जाता है। शिमला के पास तत्ता पानी, मनाली के निकट वशिष्ठ और क्लाथ, कुल्लू में मनीकरण और खीर गंगा जैसे स्थल विश्वविख्यात हैं। मनीकरण विश्व का सबसे अधिक गर्म पानी का स्रोत माना जाता है। हिमाचल में कुल्लू, लाहौल, स्पीति, पांगी, चंबा और कांगड़ा की आकर्षक घाटियां हैं। देव टिब्बा, इंद्रासन, मनीकरण और मुलकिला जैसे कठिन शिखर हैं। बड़ा शिगरी और मुलकिला इत्यादि हिमनद हैं। हिमाचल प्रदेश के विभिन्न स्थानों में अनेक प्रकार के कबीले रहते हैं जिनके खान-पान, रहन-सहन, और रीति-रिवाज बहुत दिलचस्प हैं।

हिमाचल प्रदेश से आप चाहें तो उत्तर प्रदेश जा सकते हैं और चाहें तो कश्मीर। यहां से सीधे लेह की यात्रा कठिन पर सुहावने मार्गों से होते हुए तय कर सकते हैं। मनाली से लेह राष्ट्रीय राजमार्ग पर अब बस सेवा भी उपलब्ध है। कम ऊंचाई वाले अनेक मार्गों पर डाकबंगले और विश्राम-गृह मिल जाते हैं। हिमाचल प्रदेश को ट्रैकर्स, पर्वतारोहियों और पर्यटकों का स्वर्ग कहा जाता है। सब के लिए यहां अनगिनत

स्थान हैं जहां पहुंचकर वह आत्मसंतुष्टि प्राप्त कर सकता है। इस भू-प्रदेश की वादियां इतनी सुंदर हैं कि व्यक्ति उनके सौंदर्य से अभिभूत होकर रह जाता है। ट्रैकिंग और पर्यटन के लिए इस क्षेत्र में मई से नवंबर के बीच यात्रा करना उचित है। जुलाई-अगस्त में यहां भारी वर्षा होती है। परंतु लाहौल स्पीति और किन्नौर जैसी सुंदर घाटियां ऐसी हैं जहां मानसून में बहुत ही कम वर्षा होती है। स्पीति और किन्नौर के क्षेत्र पहले ट्रैकर्स के लिए प्रतिबंधित थे, परंतु अब कुछ क्षेत्रों में विदेशी नागरिक संबंधित अधिकारियों से अनुमति लेकर जा सकते हैं। स्पीति और किन्नौर के क्षेत्र पर्यटक के लिए खोले जाने के बाद वहां बड़ी संख्या में विदेशी पर्यटक जाने लगे हैं।

इस भूभाग में सर्दियों के मौसम में कम ऊंचाई पर ट्रैकिंग की जा सकती है। जिन स्थानों पर साल भर बर्फ पड़ती है, वे स्कींग के लिए आदर्श हैं। हिमाचल प्रदेश में मनाली, कुफरी और नारकुंडा, जैसे प्रसिद्ध स्थान स्कींग के लिए भी जाने जाते हैं। रोहतांग की ढलानों पर जून में भी स्कींग की जा सकती है।

ट्रैकिंग के लिए हिमाचल प्रदेश का चुनाव करने के बाद यह प्रश्न उठता है कि हिमाचल में कौन-सी घाटी, पर्वत-शिखर अथवा झील को अपनी क्रीड़ा-स्थली बनाया जाये। आप चाहें तो चंबा घाटी का चुनाव करके डलहौजी के अछूते सौंदर्य का आनंद लूट सकते हैं। चाहें तो डलहौजी से भरमौर की यात्रा करके प्राचीन मंदिरों की स्थापत्य कला का आनंद उठा सकते हैं। यहीं पर गद्दी जन-जाति के कबीलों को मस्ती में घूमते हुए देखा जा सकता है। मणि महेश झील और शिखर की यात्रा भी यहीं से शुरू की जा सकती है। इसके लिए पठानकोट से यात्रा प्रारंभ करनी होगी। पठानकोट पहुंचने के लिए चंडीगढ़ और अमृतसर से रेल और बस सेवाएं उपलब्ध हैं।

इसी स्थान से दायें घूमने पर कांगड़ा घाटी ट्रैकर का स्वागत करती है और वह धर्मशाला तक पहुंच सकता है जहां दलाईलामा का निवास है। भारत में चेरापूंजी के बाद धर्मशाला में सबसे अधिक बारिश होने के कारण इसे वर्षा नगर के नाम से भी जाना जाता है। यहां पर डल और करैरी झील दर्शनीय स्थल हैं।

पूर्व की ओर आगे बढ़ने पर सैलानी मंडी को पार कर कुल्लू घाटी में प्रवेश कर सकता है। पवित्र एवं प्रसिद्ध रिवालसर झील के समीप बसे मंडी नगर में वह 81 मंदिरों की भव्य कला को देख सकता है। रिवालसर झील बौद्ध मत और सिख मतावलंबियों के लिए विशेष रूप से आदरणीय है। यहां सिखों के दसवें गुरु गोविंद सिंह जी ने साधना की थी। बौद्ध भिक्षु पदमासंभव ने दुनिया के कोने-कोने में इस धर्म के प्रचार के लिए यहीं से यात्रा शुरू की थी। कुल्लू घाटी तो देवताओं की घाटी के रूप में जानी ही जाती है। इस घाटी में हर गांव का अपना ग्राम-देवता है। कुल्लू के बाद प्रसिद्ध पर्वतीय स्थली मनाली होते हुए लाहौल स्पीति और पांगी की वादियों में पहुंचा जा सकता है। यहीं से आगे कश्मीर की प्रसिद्ध घाटी जांसकर शुरू हो

जाती है। पर्यटक यहां से हाल ही में खोले गये क्षेत्र स्पीति और किन्नौर की यात्राओं पर भी निकल सकता है। इन क्षेत्रों का अछूता सौंदर्य अभी विश्व के ट्रैकर्स के लिए अनजाना ही है।

मनाली को पर्वतों की रानी भी कहा जाता है। मनाली 'मनु' और 'आली' शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ हे मनु का घर। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यहीं बैठकर मनु ने सृष्टि की रचना की थी। एक दंतकथा के अनुसार एक बार पार्वती भगवान शिव से रूठकर कैलाश पर्वत छोड़ इधर चली आयीं। यहीं आकर शिव ने पार्वती को मना लिया था, जिससे इस स्थान का नाम 'मना ली' पड़ गया। मनाली से अनेक ट्रैकिंग रूट्स पर यात्रा शुरू की जा सकती है।

शिमला समुद्र तट से 2205 मीटर की ऊंचाई पर स्थित अत्यंत आकर्षक स्थान है। यहां से कुफरी, नारकंडा ओर किन्नौर की यात्राएं की जा सकती हैं। शिमला, रेल, सड़क और वायु मार्ग से पहुंचा जा सकता है। सिरमौर घाटी में रेणुका, पांवटा साहिब और सुकेती की यात्राएं की जा सकती हैं। चूड़धार पर्वत श्रृंखलाओं में ट्रैकर्स के लिए अनेक यात्रा-पथ हैं। चंडीगढ़ अथवा अंबाला से नाहन पहुंचा जा सकता है। एक किनारे से लेकर दूसरे किनारे तक हिमाचल इतना मनमोहक है कि एक बार आने के बाद इसके मोहपाश में बंधा आदमी बार-बार यहां आने के लिए उतावला रहता है।

हिमाचल का आकर्षण असीम है और इसमें ट्रैकिंग करना एक अत्यंत सुखद अनुभव है। ट्रैकर को अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार अपने लिए ट्रैकिंग रूट का चुनाव करना चाहिए। ट्रैकिंग का असली मजा ही तब आता है जब ट्रैकर स्वयं स्थान विशेष पर पहुंचकर हर बात को अपने अनुभव और ज्ञान से जान ले। इधर-उधर से सुनकर अथवा पढ़कर यदि जिज्ञासा समाप्त हो सकती तो शायद ट्रैकिंग के खेल का जन्म ही नहीं होता। ट्रैकर्स की सुविधा के लिए यहां नमूने के रूप में एक ट्रैक का ब्यौरा दिया जा रहा है ताकि दल को जहां अपनी यात्रा की योजना बनाने में आसानी हो वहीं उन्हें यह भी मालूम हो जाये कि मार्ग में किन किन बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना जरूरी है।

## ट्रैकिंग रूट

**हिमालय में ट्रैकिंग करने वालों के लिए सैकड़ों सुंदर और मनमोहक दृश्यों से भरपूर, लंबे और छोटे यात्रा-पथ हैं परंतु हम यहां पर उदाहरण के रूप में केवल एक रास्ते का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं। इस मार्ग के लिए मनाली को आधार कैंप बनाया जा सकता है। मनाली अब विश्व भर में प्रसिद्ध हो चुका है। इसे भारत का स्विटजरलैंड कहा जाता है। यहां पर देवदार के सुंदर वृक्ष, सड़क के पास ही बहती ब्यास नदी,**

वशिष्ठ में गर्म पानी के स्रोत, सामने बर्फ से ढंकी चोटियों वाली पर्वतशृंखला किसी का भी मन मोह लेती है। यहां पर ट्रैकर्स के लिए हर प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध हैं। ठहरने और खाने के अतिरिक्त यहां पर ट्रैकिंग में काम आने वाले वस्त्र और उपकरण भी मिल सकते हैं। उपकरण किराये पर मिलने की संभावना भी रहती है। अभियान दल के साथ जाने के लिए घोड़े, कुली और गाइड का प्रबंध भी यहां होता है। यात्रा के लिए सूखा राशन और सब्जियां इत्यादि यहीं से प्राप्त की जा सकती हैं।

मनाली पहुंचने के लिए दिल्ली से बस द्वारा 15-16 घंटे का समय लगता है। चंडीगढ़ तक रेल से पहुंचकर आगे की यात्रा बस द्वारा की जा सकती है। मनाली पहुंचकर ट्रैकर्स अपने शरीर को मौसम के अनुकूल बनाने के लिए एक-दो दिन ठहरकर आगे की यात्रा आरंभ कर सकते हैं। यहां पर हडिम्बा, मनु और वशिष्ठ दर्शनीय मंदिर हैं। वशिष्ठ में गरम पानी के स्रोत और आसपास के छोटे-छोटे पहाड़ भी ट्रैकर्स को आकर्षित करते हैं। यात्रा की तैयारी पूरी करके निम्नलिखित मार्ग पर जाया जा सकता है। यह रास्ता सुगम और कठिन दोनों प्रकार के स्थलों से गुजरता है। मार्ग में आने वाले दृश्यों का सौंदर्य ट्रैकर्स के मन पर गहरी छाप छोड़ता है।

**दिन-एक : मनाली-सोलंग** (2480 मी.) 14 कि.मी.। पहला दिन होने के कारण धीरे-धीरे चलते हुए यात्रा प्रारंभ करनी चाहिए। सुबह जल्दी ही यात्रा शुरू करना अच्छा रहता है। यह रास्ता गांवों और फलों के बगीचों के मध्य से गुजरता है। मनाली शहर से मनालसू नाले के पुल के ऊपर से गुजरते हुए मनाली गांव पहुंचें। गांव में मनु मंदिर देखने योग्य है। देश भर में मनु का शायद यही एकमात्र मंदिर है। यहां पर बने पुराने मकान देखने लायक हैं। लकड़ी के घर बनाने में ये लोग पहले लोहे के कीलों का प्रयोग नहीं करते थे। यहां के निवासियों के रहन-सहन के विषय में जानकारी प्राप्त करें। लोग बहुत ही मिलनसार हैं। यहां से गोशाल और बुरवा गांव के निवासियों के रीति-रिवाजों का अध्ययन करते हुए आगे बढ़ें। तीन किलोमीटर की दूरी के बाद सोलंग ग्लेशियर से निकलती जलधारा को पार करें और उसके बाएं किनारे पर मनाली से आती हुई मुख्य सड़क पर पहुंचें। यह सड़क पलचान होकर यहां पहुंचती है। मनाली से सोलंग नाले तक सड़क द्वारा भी पहुंचा जा सकता है। यहां पर कुछ माऊंटेन हट्स, ढाबे और छोटे होटल भी हैं।

सांयकाल आसपास के वातावरण का आनंद उठायें। सोलंग कैंप के सामने सोलंग गांव है। यह इस घाटी का अंतिम गांव है। सर्दियों में स्कींग के लिए भी यहां पर ही आधार कैंप लगाया जाता है और स्कींग तथा राष्ट्रीय एव अंतर्राष्ट्रीय मुकाबले आयोजित किये जाते हैं।

**दिन-दो : सोलंग-धुंधी** (3940 मी.) 10 कि.मी.। यह मार्ग ब्यास नाले के दाएं किनारे के साथ-साथ चलता है। इस नाले को धुंधी नामक स्थान पर पार करके कैंप

लगाया जा सकता है। यहां से ट्रैकर्स गहरी घाटी में प्रवेश करते हैं और उन्हें मार्ग में कई छोटे-छोटे नाले और बड़े-बड़े पत्थर पार करने पड़ते हैं। कभी-कभी सामने पर्वत श्रृंखलाएं दिखाई देती हैं। धुंधी दो नालों के संगम पर एक समतल स्थान है। यहां से देव टिब्बा (6001 मी.) और इंद्रासन शिखर (6221 मी.) बहुत सुंदर दिखाई देते हैं। जो धुंधी में कैंप नहीं लगाना चाहते वे यहां से दो किलोमीटर कैंप स्थल के लिए चलें। गड़रियों द्वारा बनाये गये पुल से नाले को सावधानीपूर्वक पार करें। यहां अनेक चरवाहे भेड़ें चराते हुए दिखाई देते हैं। इसलिए इस कैंप स्थल को वकर-भाच कहते हैं। इस कैंप से फ्रेंडशिप और शितिधार शिखर दिखाई देते हैं।

**दिन-तीन : धुंधी-ब्यास कुंड** (3690 मी.) 12 कि.मी.। प्रातः जल्दी ही ब्यास कुंड के लिए चलें और सायंकाल अपने कैंप में वापस लौटें। स्थानीय लोगों की मान्यता है कि यह ब्यास कुंड ही ब्यास नदी का उद्गम है। वास्तव में यहां एक गोलाकार, नीले पानी की गहरी झील है, जहां से एक पतली जलधारा निकली है जिसमें बाद में कई अन्य धाराएं आकर मिलती हैं। एक अन्य धारणा है कि ब्यास नदी का प्रारंभ रोहतांग दर्रे पर स्थित ब्यास कुंड से होता है।

यहां पर कुछ समय ठहरकर झील, हिमनदों और पर्वत शिखरों की सुंदरता का आनंद उठायें और भोजन करके धुंधी कैंप के लिए लौटें। कुछ लोग चाहें तो शांत वातावरण का आनंद उठाने के लिए दो-तीन दिन यहां कैंप लगाकर ठहर भी सकते हैं।

**दिन-चार : धुंधी-शगा-रा-डुग** (3600 मी.) 10 कि.मी.। यहां से सोलंग गांव की ओर ब्यास नाले के बायें किनारे पर होते हुए लौटें। सेरी नाले को गिरे हुए पेड़ों अथवा गड़रियों द्वारा बनाये गये पुलों की सहायता से पार करके संरक्षित वन में पहुंचें। इस वन में भूरे भालू सहित कई प्रकार के जंगली पशु-पक्षियों को देखा जा सकता है। यह एक घना जंगल है परंतु इसमें एक आसान रास्ता भी है। किसी स्थानीय व्यक्ति की सहायता से इसी मार्ग को पकड़ें। घुमेरी नाले को पार करने के बाद कैंप के लिए ढलान से नीचे उतरें।

शगा-रा-डुग घने वनों से घिरी एक छोटी घाटी है। यहां गड़रियों द्वारा बनायी गयी कुछ छोटी-छोटी झोंपडियां हैं। शीतकाल में स्कींग करने के लिए यह अच्छा स्थान है। यदि दल की रुचि पतालसू चोटी पर चढ़कर चारों ओर के सुहावने दृश्य देखने में हो तो यहां पर एक दिन और ठहरने की व्यवस्था करनी चाहिए।

**दिन-पांच : शगा-रा-डुग-दशौर** (4200 मी.) 12 कि.मी.। लगभग 4000 मीटर ऊंचा एक छोटा दर्रा पार करके शिला गोहरू नाले के पास पहुंचें। इस नाले के साथ-साथ घास के सुंदर मैदानों में गड़रियों के झोंपड़े दिखाई देते हैं। इस नाले के अंत में एक दूसरा दर्रा लगभग 3900 मीटर ऊंचा है। उसे पार करने पर कुल्लू घाटी, रोहतांग पास, भृगु और रिवालसर झीलें दिखाई देने लगती हैं। यह दर्रा पार करने

के बाद रात ठहरने के लिए दशौर झील तक चरवाहों के बनाये मार्ग पर चलें।

यह झील मढ़ी से ऊपर स्थित है और स्थानीय लोग अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए इस झील में सितंबर के प्रथम सप्ताह में डुबकी लगाते हैं। एक कथा के अनुसार अकबर की पुत्री को इसी झील के कारण स्वास्थ्य लाभ हुआ था और अकबर की सेना ने झील में फंसे एक घोड़े को बाहर निकालकर इसे दूषित होने से बचाया था। यहां चारों ओर का वातावरण बहुत मनोरम है। रात में कैंप से लाहौल और उसके आसपास की पहाड़ियों पर स्थित घरों में जलने वाली रोशनी बहुत लुभावनी दिखती है और सारा वातावरण रहस्यमय लगता है।

**दिन-छह : दशौर -डोरनी** 15 कि.मी.। रोहतांग दर्रे तक यह मार्ग पहाड़ी ढलानों के कारण थोड़ा कठिन है। यदि चाहें तो रानी नाले के पास सड़क तक पहुंचें और तब रोहतांग दर्रे (3979 मी.) तक का मार्ग तय करें। रोहतांग दर्रा लाहौल, पांगी, जांसकर, लेह, स्पीति और किन्नौर का प्रवेश द्वार कहलाता है। लेह को जाने वाला राष्ट्रीय राजमार्ग इसी दर्रे के ऊपर से गुजरता है। यहां से मनाली (51 कि.मी.) सड़क मार्ग से वापस लौटा जा सकता है अथवा डोरनी के लिए आगे बढ़ा जा सकता है।

दर्रे को पार करके दाएं ओर ढलान पर कैंप के लिए चलें जो कि स्पीति घाटी की ओर जाने वाली सड़क पर है। दूसरा रास्ता बायें से कैलांग-लेह के लिए जाता है। दर्रे से लाहौल के पर्वतों और हिमनदों के अच्छे दृश्य दिखाई देते हैं। नीचे घाटी में बहती चंद्रा नदी इसकी सुंदरता को चार चांद लगाती है। दायीं ओर शिगरी ग्लेशियर के ऊपर ऊंचे पर्वत शिखर दिखाई देते हैं। गरमियों के दिनों में रोहतांग पास किसी पिकनिक स्थल-सा दिखाई देता है। यहां पर हर प्रकार का भोजन अथवा सरदी से बचने के लिए गर्म कपड़े किराये पर उपलब्ध हैं।

**दिन-सात : डोरनी-छतरू** (3360 मी.) 12 कि.मी.। चंद्रा नदी के बायें किनारे पर यह सड़क का समतल रास्ता है। सारे रास्ते बहुत ही सुंदर दृश्यों का आनंद लिया जा सकता है। नदी के किनारे चलते हुए बर्फ के पिघलने के बाद ढलानों पर जो छटा जंगली फूल बिखेरते हैं वह अनुपम है। जहां चंद्रा नदी सड़क से थोड़ा हटती है वहीं पुल के समीप छतरू विश्राम-गृह है जहां रात बितायी जा सकती है। नदी के किनारे कैंप लगाकर रहने का भी अपना-अलग आनंद है।

कैंप न लगाना चाहें तो छतरू विश्राम-गृह में रात बिताकर अगले दिन छोटा दर्रा और वहां से बातल की ओर आगे बढ़ें। यहां से कुनजुम पास पार करके स्पीति पहुंचा जा सकता है। अब स्पीति और किन्नौर में विदेशी ट्रैकर्स को भी प्रवेश की अनुमति मिलने लगी है। इसके लिए पहले ही कुल्लू कैलांग अथवा काजी में संबंधित अधिकारियों से अनुमति पत्र प्राप्त करना अनिवार्य है। स्पीति होते हुए किन्नौर और वहां से वापस शिमला/दिल्ली लौटा जा सकता है।

बातल से चंद्रा नदी के साथ-साथ चंद्रताल तक पहुंचा जा सकता है। वहां

से अगले तीन दिन की यात्रा बारालाचा ला (दर्रा) के लिए की जा सकती है। बारालाचा ला लेह के लिए प्रवेशद्वार है। लेह सड़क मार्ग से (जुलाई-अक्टूबर) भी पहुंचा जा सकता है और ट्रैकिंग करके भी। ट्रैकिंग के लिए शिंगो-ला तथा फिरत्से पास और जांसकर घाटी को पार करना पड़ता है।

**दिन-आठ : छतरू-छिक्का** (3360 मी.) 12 कि.मी.। छतरू से हैमटा पास (4268 मी.) की कठिन चढ़ाई का पुरस्कार ट्रैकर को उस समय मिलता है जब वह दर्रे पर पहुंचकर चारों ओर बिखरी प्राकृतिक घटा को देखता है। यहां पहुंचने के लिए नाले के साथ-साथ चार किलोमीटर चढ़ना पड़ता है। पास से देव टिब्बा (6001 मी.) इंद्रासन (6221 मी.) और मध्य लाहौल की चोटियां दिखाई देती हैं। यह दर्रा मई/जून-अक्टूबर के मध्य खुलता है।

यहां से नीचे जाने पर पुनः कुल्लू घाटी के रास्ते में विभिन्न प्रकार के जंगली फूलों की सुंदरता को देखें। छिक्का एक बढ़िया कैंप का स्थान है जहां पर चट्टानी गुफाएं बनी हुई हैं। यहां पर ट्रैकर्स विश्राम कर सकते हैं। चाहें तो कैंप लगा सकते हैं। कुछ लोग चाहें तो आगे जाकर भालू का घेरा (जहां भालू रहते हैं) में भी कैंप लगा सकते हैं।

**दिन-नौ : छिक्का-सरोटू** (3500 मी.) 10 कि.मी.। यहां से सीधे मार्ग से मनाली जाने की अपेक्षा अच्छा है यदि ऊपर की ओर पियांग नीरू ग्लेशियर की ओर बढ़ें और जबड़ी नाला पार करके एक सुंदर और लंबे-चौड़े घास के मैदान में प्रवेश करें। यह मैदान लगभग 4000 मी. की ऊंचाई पर स्थित है। चारों ओर बिखरी पर्वत शृंखलाओं के मध्य इतनी ऊंचाई पर घास का मैदान ट्रैकर की थकान दूर कर देता है। मार्ग में बागद्वार की गुफाएं दर्शनीय हैं।

**दिन-दस : सरोटू-मनाली** (2050 मी.) 11 कि.मी.। मार्ग में भनारा (2300 मी.) सरोटू गांव में एक देखने योग्य मंदिर है। कुल्लू के राजा का किला अपनी स्थापत्य कला के लिए देखने लायक है। बद्रीनाथ के सूर्यवंशी राजपूत मणिपाल ने कुल्लू के राजा को हराकर जगत सुख गांव में राज्य स्थापित किया। पालवंश ने 1840 तक शासन किया। बाद में पाल वंश के राजा अजीत सिंह को सिखों ने हराया।

भनारा के समीप अर्जुन गुफा है। यहां के लोगों का विश्वास है कि यहां पर अर्जुन ने तपस्या की थी। यहां के स्थानीय लोगों के पास ट्रैकर्स को बताने के लिए बहुत ही दिलचस्प किस्से हैं। शाम को जगत-सुख से बस द्वारा मनाली पहुंचा जा सकता है।

मार्ग-एक

## कुफरी वाया चैल

| दिन से | – तक | ऊंचाई मी. | दूरी कि.मी. | विवरण |
|---|---|---|---|---|
| 1. शिमला | जतोग | 1950 | 25 कि.मी. | घने और सुंदर वनों के मध्य से लगभग समतल यात्रा। रमणीय दृश्यावली : रात्रि में शिमला की रोशनी आकाश में चमकते तारों के समान लुभावनी दिखती है। |
| 2. जतोग | तारादेवी | 1840 | 20 | शिमला और जतोग को रात्रि में देखना एक अविस्मरणीय अनुभव है। |
| 3. तारादेवी | शौगी | 1827 | 22 | घने जंगलों और लंबी सुरंगों के मध्य से गुजरती रेल लाईन ट्रैकर्स को अचंभे में डाल देती है। |
| 4. शौगी | साधु पुल | 1550 | 20 | जंगलों एवं गांवों में गुजरता हुआ ढलाव वाला रास्ता ट्रैकर्स को बहुत भाता है। |
| 5. साधु पुल | सोनाघाट | 1925 | 15 | ढोची गांव से होते हुए यात्रा करें। मार्ग में कहीं-कहीं कठिन चढ़ाई है। |
| 6. सोनाघाट | चैल | 2150 | 12 | चैल तक कठिन चढ़ाई। मार्ग में मंदिर के दर्शन करें। सुंदर वनों के मध्य विचरण करें। विश्व का सबसे ऊंचा क्रिकेट मैदान यहां पर आकर्षण का केंद्र है। |
| 7. चैल | मुंडाघाट | 2400 | 18 | जंगलों एवं गांवों के मध्य होते हुए कठिन चढ़ाई करें। |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 8. मुंडाघाट | कुफरी टॉप | 2600 | 17 | जंगलों में सुंदर दृश्यों का अवलोकन करते हुए कठिन चढ़ाई। |
| 9. कुफरी टॉप | शिमला | 2205 | 25 | वाईल्ड फ्लावर हाल 2593 मी. की यात्रा करें। विट्रिट और ढली मार्ग पर सुंदर वन के मध्य विचरण। ढली से बस द्वारा शिमला लौटें। |

**मार्ग-दो**

## पवित्र झीलों की यात्रा

| दिन से – | तक | ऊंचाई मी. | दूरी कि.मी. | विवरण |
|---|---|---|---|---|
| 1. मनाली | सोलंग | 2480 | 12 | मनाली और बूरआ गांवों से होते हुए ब्यास नदी के दाहिने किनारे पर चलें। यह एक स्मरणीय अनुभव है। |
| 2. सोलंग | बकर थाच | 3150 | 12 | धुंधी होते हुए मार्ग में रमणीय दृश्य देखें। यहां से देव टिब्बा और इंद्रासन के मनोहारी शिखरों को देखा जा सकता है। |
| 3. बकर थाच | ब्यास कुंड | 3690 | 12 | ब्यास कुंड़ की यात्रा पर चलें। यह सुंदर झील अगस्त के बाद खुलती है। स्थानीय लोगों का मत है कि ब्यास नदी का यही उद्गम स्थान है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में भी इसका वर्णन है। चारों ओर सुंदर पर्वत शिखरों एवं हिमनदों की सुंदरता देखते ही बनती है। सायंकाल तक धुंधी लौटें। |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 4. धुंधी | शगा-रा-डुग | 3600 | 10 | घने जंगल से होते हुए सेरी नाला पार करके ब्यास नदी के बाएं किनारे पर यात्रा करें। |
| 5. शगा-रा-डुग | दशौर | 4200 | 12 | यह मार्ग जंगल के मध्य से शिला गोरू नाले के साथ-साथ एक अन्य दर्रे तक ले जाता है। दर्रा पार करके दशौर झील की ओर यात्रा करें। इसे रिवालसर के नाम से भी जाना जाता है। |
| 6. दशौर | भृगु | 4240 | 12 | रोहतांग तक पहुंचकर बाएं ओर जाने वाले चरवाहों के मार्ग पर चलते हुए झील तक पहुंचें। |
| 7. भृगु | पांडू रोपा | 3600 | 8 | चारों ओर के मनोहारी दृश्यों का अवलोकन करें। सुंदर फूलों की छटा देखते हुए आगे बढ़ें। |
| 8. पांडू रोपा | मनाली | 2050 | 5 | गहरी ढलानों को पार करते हुए वशिष्ठ गर्म पानी के झरनों पर पहुंचकर स्नान करें। प्राचीन मंदिर के दर्शन करके मनाली पहुंचें। |

**मार्ग-तीन**

## मणि महेश छड़ी यात्रा

| दिन से – | तक | ऊंचाई मी. | दूरी कि.मी. | विवरण |
|---|---|---|---|---|
| 1. चंबा | | 996 | | अमरनाथ की यात्रा की ही भांति चंबा से मणि महेश झील के लिए पवित्र छड़ी की भव्य यात्रा अगस्त- |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | | | सितंबर में निकाली जाती है। देश के विभिन्न भागों से आने वाले यात्री यहां यात्रा के लिए एकत्र होते हैं। |
| 2. चंबा | जुलाकरी मोहल्ला | 1050 | 8 | पवित्र छड़ी एवं अन्य देवताओं की मूर्तियों के साथ लक्ष्मी नारायण के मंदिर से यात्रा आरंभ होती है। |
| 3. जुलाकरी | रख | 1190 | 14 | मार्ग में आने वाले गांवों के अधिक से अधिक लोग यात्रा में सम्मिलित होते जाते हैं। |
| 4. रख | दुर्गहट्टी | 1372 | 22 | लोगों की संख्या में निरंतर बढ़ोतरी होती जाती है। |
| 5. दुर्गहट्टी | भरमौर | 2195 | 23 | मंदिरों में कई प्रकार की पूजा-अर्चनाएं की जाती हैं। पूजा के बाद आगे की यात्रा। |
| 6. भरमौर | हदसर | 2317 | 13 | अब क्योंकि यात्रा में काफी लोग सम्मिलित हो चुके होते हैं इसलिए अगले पड़ाव पर पहुंचने में अधिक समय लगता है। |
| 7. हदसर | ढांचू | 2440 | 12 | रात्रि विश्राम। इस स्थान के बाद मार्ग में कैंप लगाने का कोई बढ़िया स्थान नहीं है। |
| 8. ढांचू | मणि महेश | 4170 | 10 | धीरे-धीरे चलते हुए कठिन चढ़ाई पार करें। अधिक आयु वाले लोगों के लिए अधिक समय रखें। दुर्गम मार्ग और अधिक ऊंचाई व्यक्ति को थका देती है। |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 9. मणि महेश | चंबा | 996 | 102 | मणि महेश एक अत्यंत पवित्र एवं प्राचीन मंदिर है। बस द्वारा चंबा लौटें। पवित्र झील, जो चंबा कैलाश 5656 मी. की तलहटी पर स्थित है, में स्नान करने के बाद यात्री वापस लौटते हैं। |

**मार्ग-चार**

## झीलों की सैर

| दिन से – | तक | ऊंचाई मी. | दूरी कि.मी. | विवरण |
|---|---|---|---|---|
| 1. श्रीनगर | सोनमर्ग बुरजीपथरी | 2439 | 83 | सिंध नदी के किनारे-किनारे पक्की सड़क पर कार से यात्रा करें। सुंदर दृश्य मनमोहक हैं। आसपास के क्षेत्रों में विचरण करें। |
| 2. बुरजी पथरी | विशनसर | 3680 | 16 | चीड़ और देवदार से भरे वनों को देखते हुए निचाली दर्रा 4080 मी. पार कर विशनसर झील पर पहुंचें। यह झील कश्मीर की सबसे बड़ी झीलों में से एक है। यहां ट्राउट मछली पाई जाती है। यहां से जांसकर और जोजीला की मनोहारी पर्वत श्रेणियां दिखाई देती हैं। |
| 3. विशनसर | गड़सर झील | 3755 | 13 | हरियाली से भरे पूरे भू-प्रदेश की यह सुहावनी यात्रा है। गर्मियों में भी इस झील में बर्फ के टुकड़े तैरते दिखाई देते हैं। गडसर घाटी में कई |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | | | तरह के फूल पाये जाते हैं। |
| 4. गड़सर | मगनदूब | 3280 | 11 | जंगली फूलों की सुंदरता देखते हुए हरियाली से भरे मार्ग पर आगे बढ़ें। वापसी पर एक प्राचीन गांव जबडोरे दर्शनीय है। |
| 5. मगनदूब | गंगबल झील | 3570 | 16 | जाजी दर्रा पार करके गंगबल झील पर पहुंचें। यह झील हरमुख पर्वत 5148 मी. की तलहटी पर स्थित है। ट्राउट मछली के शिकार में रुचि रखने वालों के लिए यह अति उत्तम स्थान है। |
| 6. गंगबल झील | विश्राम | | | दिन मछली के शिकार, आसपास विचरण करने, रबड़ की नावों में नौका विहार करने अथवा इस क्षेत्र के गूज्जरों और गड़रियों से मेल-जोल करने में व्यतीत करें। |
| 7. गंगबल झील | लोल गुल दर्रा | 4229 | 10 | दर्रे से नंगा पर्वत (8129 मी.) के सुंदर दृश्य देखकर वापस लौटें। |
| 8. गंगबल | नरानाग | श्रीनगर | | नरानाग की ओर नीचे उतरें। इस मार्ग पर आप नीचे बुतशिर पर्वत पर उतरते जायेंगे। मार्ग में तरुण कोल और ननकोल झील देख सकते हैं। नरानाग में 240 ई. पूर्व बने बौद्ध मंदिर के खंडहर देखने के बाद श्रीनगर की ओर मोटर से प्रस्थान करें। |

**मार्ग-पांच**

# हर की दून

| दिन से – | तक | ऊंचाई मी. | दूरी कि.मी. | विवरण |
|---|---|---|---|---|
| 1. मसूरी | | 2006 | | पर्वतों की रानी मसूरी के अतुलनीय सौंदर्य का आनंद उठायें और आसपास के क्षेत्रों में विचरण करें। |
| 2. मसूरी | जरमोला/ नेतवार | 1290 | | यदि यात्रा वर्षा के दिनों में करनी हो तो जहां तक सड़क हो वहां तक वाहन में जायें। वहीं से ट्रैकिंग शुरू करें परंतु ट्रैकिंग के लिए एक अतिरिक्त दिन सुरक्षित रखें। |
| 3. नेतवार | सौर | | 12 | यह मार्ग सुपिन नदी के किनारे-किनारे है। सुपिन और रुपिन नदियों का नेतवार में संगम होता है। यहां से ये नदियां टोंस नदी के रूप में एकाकार हो जाती हैं। सुपिन बहुत ही सुरम्य घाटी है। |
| 4. सौर | ओसला | 2755 | 22 | फूलों और हरियाली से भरा यह मार्ग बहुत सुहावना है। मार्ग में विभिन्न प्रकार के पक्षी एवं पशु दिखाई देते हैं। |
| 5. ओसला | हर की दून | 3512 | 8 | दोपहर तक ट्रैकिंग करके यहां पहुंचें और पूरा दिन प्रकृति की गोद में विश्राम करें। |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 6. हर की दून | विश्राम | | | पूरी घाटी में जहां चाहें विचरण करते हुए प्रकृति का आनंद लेना बहुत बढ़िया अनुभव है। वनस्पतियों एवं फूलों की जानकारी प्राप्त करें। |
| 7. हर की दून | ओसला | 2755 | | वापस ओसला की यात्रा करें। यहां से यमुनोत्री, डोडीताल, उत्तरकाशी की ओर जाया जा सकता है। चाहें तो सड़क मार्ग से वापस मसूरी लौट आयें। |

**मार्ग-छः**

## टाईगर हिल्स

| दिन से – | तक | ऊंचाई मी. | दूरी कि.मी. | विवरण |
|---|---|---|---|---|
| 1. दार्जिलिंग | टाईगर हिल्स | | | टाईगर हिल्स से सूर्योदय का दृश्य देखना एक अद्भुत अनुभव है। मौसम साफ होने पर देखा गया यह दृश्य जीवनभर भुलाया नहीं जा सकता। यहां से एवरेस्ट और कंचनजंघा की चोटियों के दर्शन कर दोपहर तक लौटें। हिमालय पर्वतारोहण संस्थान, चिड़ियाघर और रेसकोर्स दोपहर बाद देखे जा सकते हैं। |
| 2. दार्जिलिंग | बीजन बारी | 762 | 15 | इस ढलान वाले मार्ग पर यात्रा करते हुए सुंदर घाटियों का दृश्यावलोकन करें। |
| 3. बीजनबारी | झेपी | 1624 | 10 | हरे-भरे मार्ग के मध्य यात्रा |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| | | | | करते हुए आगे बढ़ें। |
| 4. झेपी | रिमबिक | 2286 | 16 | धीरे-धीरे 600 मी. की चढ़ाई का आनंद लेते हुए सुंदर दृश्य देखते हुए चलें। रास्ते में इस क्षेत्र के गांवों और वहां के लोगों के रहन-सहन को देखने और समझने का अवसर मिलता है। |
| 5. रिमबिक | रमाम | 2560 | 19 | सुंदरता से भरपूर जंगलों के मध्य से गुजरता यह मार्ग अनेक प्रकार के फूल देखने का अवसर प्रदान करता है। |
| 6. रमाम | फालूट | 3600 | 16 | सुंदर फूलों वाले इस मार्ग पर चलते हुए एवरेस्ट और कंचनजंघा के शिखरों के दर्शन करने का आनंद उठायें। |
| 7. फालूट | सन्दकफू | 3636 | 21 | सुंदर पर्वतश्रेणियों को देखते हुए आगे बढ़ें। समतल मार्ग पर चारों ओर के दृश्यों का पूरा आनंद उठायें। |
| 8. सन्दकफू | टोंगलू | 3070 | 22 | ढलान होने के कारण यह कठिन यात्रा नहीं है। रमणीक दृश्यों का अवलोकन करें। समय की कमी हो तो जीप द्वारा भी टोंगलू पहुंचा जा सकता है। |
| 9. टोंगलू | मनेभान जंग/दार्जिलिंग | 2134 | 11 | मेगमा होते हुए नीचे पहुंचें। दार्जिलिंग के लिए जीप अथवा बस से यात्रा करें। |

कम्प्यूटेक सिस्टम, ईस्ट ज्योति नगर, दिल्ली-110092 द्वारा लेज़र कम्पोज़ तथा
शिवम् आफसेट, नारायणा, नयी दिल्ली द्वारा मुद्रित

Most of these oxidations occur in the mitochondrion, where the usual coenzyme hydrogen acceptor is NAD (nicotinamide-adenine dinucleotide):

$$NAD + 2H \rightarrow NADH_2$$

or, more accurately,

$$NAD^+ + 2H \rightarrow NADH + H^+$$

$NADH_2$ then enters the respiratory chain to be reoxidised.

<u>The Respiratory chain and oxidative Phosphorylation</u>

$NADH_2$ is oxidised back to NAD and the hydrogen released is passed along a chain of at least five carrier substances to the end of the chain where the hydrogen combines with molecular oxygen to for water. The passage of hydrogen along this respiratory chain of carriers involves series of redox reactions. The energy released from some of these is sufficient to make ATP, a process called oxidative phosphorylation. The net yield per molecule of glucose completely oxidised to water and carbon dioxide is 38 molecules of ATP. sybtgesused frin ADP and inorganic phosphate. Glycolysis yields two ATP, Krebs cycle two ATP and the respiratory chain 34 ATP.

<u>Glycolysis in detail</u>

Glycolysis represents a series of reactions in which a clucose molecule is broken down into two molecules of pyruvate (Fig-2). It occurs in the cytoplasm of cells, not in the mitochondria, and does not require the presence of oxygen. The precess may be sub-divided into two steps, first the conversion of glucose into fructose 1,6-diphosphate and secondly the splitting of fructose-1, 6-diphosphate into 3C sugars which are later converted into pyruvate. Two ATP molecules are used up for phosphorylation reactions in the first step, whilst four ATP molecules are produced in the second step. Therefore there is a net gain of two ATP molecules. Four hydrogen atoms are also released. Their fate will be discussed later. The equation of the overall

reaction is:

$$C_6H_{12}O_6 \rightarrow 2C_3H_4O_3 + 4H + 2ATP$$

glucose pyruvic acid (net gain)

The input and output of materials during glycolysis is shown in table-1

Table 1 Input and output of materials during glycolysis.

| Total input | Total output |
|---|---|
| 1.molecule of glucose(6C) | 2 molecules of pyruvate(2x3C) |
| 2 ATP | 4 ATP |
| 4 ADP | 2ADP |
| 2x NAD | 2x $NADH_2$ |
| 2xP | 2x$H_2O$ |

The ultimate fate of pyruvate depends on the availability of oxygen in the cell. If it is present, pyruvat will enter a mitochondrion and be completely oxidised into carbon dioxide and water ( aerobic respiration) . If oxygen is unavailable, pyruvate will be converted into ethanol or lactate (anaerobic respiration.)

## Aerobic Respiration

There are two phases involved in aerobic respiration. First, if sufficient oxygen is available, each pyruvate molecule enters a mitochondrion where its oxidation is completed by aerobic means. This involves oxidative decarboxylation of pyruvate, that is the removal of carbon dioxide together with oxidation by dehydrogenation. During these reactions pyruvate combines with a substance called coenzyme A (often written CoAS-H) to form acetyl coenzyme A. Sufficient energy is released to form an'energy-rich ' bond in the acetyl CoA molecule. In reality the complete reaction is much more complex than this description suggests and involves five different coenzymes and three different enzymes.

The overall reaction is:

$$CH_3COCOOH + CoA{-}S{-}H + NAD \longrightarrow$$
$$CH_3CO{\sim}S{-}CoA + CO_2 + NADH_2$$

(acetyl CoA)

The $NADH_2$ formed as a result of acetyl CoA formation is collected and channelled into the respiratory chain in the mitochondrion.

The second phase is the Krebs cycle (named after its discoverer, Sir Hans Krebs). The acetyl component of acetyl CoA possesses two carbons and is passed into the Krebs cycle when acetyl CoA is hydrolysed. The acetyl component combines with oxaloacetate, a 4C compound, to form citrate (6C). This reaction requires energy which is provided at the expense of the energy-rich bond of acetyl CoA. A cycle of reactions follows during which the acetyl groups fed in by acetyl CoA are dehydrogenated to release four pairs of hydrogen atoms and decarboxylated to form two molecules of carbon dioxide. During the latter process oxygen is taken from two molecules of water and used to oxidise two carbon atoms to carbon dioxide. This is termed oxidative decarboxylation. At the end of the cycle oxaloacetate is regenerated and able to link up once again with another molecule of acetyl CoA, and so the cycle continues. One molecule of ATP, four pairs of hydrogen atoms and two molecules of carbon dioxide are released per molecule of acetyl CoA oxidised. The hydrogen atoms are accepted by NAD or FAD and are eventually passed into the respiratory chain. As two molecules of acetyl CoA are formed from one oxidised glucose molecule, Krebs cycle must rotate twice for each molecule respired. Therefore the net result is two ATP synthesised, four carbon dioxide liberated and eight pairs of hydrogen atoms released for entry into the respiratory chain (Fig-3).

The overall reaction for glycolysis, acetyl CoA formation and Krebs cycle is:

$$C_6H_{12}O_6 + 6H_2O \longrightarrow 6CO_2 + 4ATP + 12\ [illegible]H_2$$

Where [illegible] = hydrogen acceptor.

## Oxidative Phosphorylation and the Respiratory Chain

The pairs of hydrogen atoms removed from respiratory intermediates by dehydrogenation reactions during glycolysis and the Krebs cycle are ultimately oxidised to water by molecular oxygen with accompanying phosphorylation of ADP to form ATP molecules. This is accomplished when hydrogen, released from $NADH_2$ or $FADH_2$ is passed along a chain of at least five intermediate substances, which include flavoprotein, coenzyme Q and a number of different cytochromes, until at the end the hydrogen combines with molecular oxygen to form water. As a result of the passage of hydrogen the intermediate carriers undergo a series of redox reactions, and they are arranged in such a way that at three points in the chain, each time the hydrogen atoms are passed from one intermediate to another, a small amount of energy is liberated and incorporated into a molecule of ATP. (fig-4) In fact the initial part of the chain effects mainly hydrogen transfer whilst the latter portion operates purely electron transfer. During each redox reaction the ironion is alternately in its oxidised ($Fe^{3}$ ) and reduced ($Fe^{2}$ ) forms. Finally, at the terminal stage, carrier Z, which contains copper and is commonly called cytochrome oxidase (cytochrome $a/a_3$), promotes the reduction of molecular oxygen to water.

# PHOTOSYNTHESIS : THE LIGHT REACTION

Dr. R. Misra.
Reader in Botany

Photosynthesis is essentially the only mechanism of energy input into the living world . Like energy-yielding oxidation reactions upon which all life depends photosynthesis involves oxidation and reduction. The over-all process is an oxidation of water (removal of electrons with release of $O_2$ as a by-product) and a reduction of $CO_2$ to form organic compounds such as carbohydrates.

## HISTORICAL SUMMARY OF PHOTOSYNTHESIS RESEARCH

Before the early eighteenth century, scientists believed that plants obtained all of their elements from the soil. In 1727, Stephen Hales suggested that part of their nourishment came from the atmosphere and that light participated somehow in this process. It was not known then that air contains different gaseous elements. In 1771, Joseph Priestley, an Ebglish clergyman and chemist, implicated $O_2$ (although this dephlogisticated air, as he called it, was not known to be a molecule) when he found that green plants could renew air made bad by the breathing of animals. Then a Dutch physician, Jan Ingenhousz, demonstrated that light was necessary for this purification of air.

Work of Lavoisier and others made it apparent that these gases were $CO_2$. Water was implicated by N.T. de Saussure when, in 1804, he made the first quantitative measurements of photosynthesis. The found that plants gained more dry weight during photosynthesis than could be accounted for by the amount by which the weight of $CO_2$ absorbed exceeded the with of $O_2$ released. He correctly attributed the difference to an uptake of $H_2O$. He also noted that approximately equal volumes of $CO_2$ and $O_2$ were exchanged during photosynthesis.

The nature of the other product of photosynthesis, organic matter, was demonstrated by Julius Sachs in 1864 when he observed the growth of starch grains in illuminated chloroplasts. The starch is detected only in areas of the leaf exposed to the light. Thus, the overall reaction of

photosynthesis was demonstrated to be as follows.

$$nCO_2 + H_2O + light - (CH_2O)n + nO2 \quad (R9\text{-}1)$$

In this reaction, (CHeO) is simply an abbreviation for starch or other carbohydrates with an empirical formula very close to this.

A further important discovery was that of C.B. van Niel, who in the early 1930s pointed out the similarity between the overall photosynthetic process in green plants and that in certain bacteria. Various bacteria were known to reduce $CO_2$ using light energy and an electron source different from water. Some of these use organic acids such as acetic or succinic acid as electron sources, while those to which van Niel gave primary attention use $H_2S$ and deposit sulfur as a by-product. The overall photosynthetic equation for these bacteria was believed to be as follows.

$$nCO2 + 2nH_2S + light- (CH_2O)n + H_2O + 2S \quad (R9\text{-}2)$$

When R9-2 is compared with R9-1 above for green plants, an analogy can be seen between the rule of $H_2S$ and $H_2O$, of $O_2$ and sulfur. This suggested to van Niel that the O2 released by plants is derived from water, not from $CO_2$. This idea was supported in the late 1930s by work of Robin Hill and R. Scarisbrick, in England, that showed that isolated chloroplasts and chloroplast fragments could release $O_2$ in the light if they were given a suitable acceptor for the electrons being taken from water. Certain ferric ($Fe^{3+}$) salts were the earliest electron acceptors provided, and they became reduced to the ferrous ($Fe^{2+}$) form. This light-driven split of water in the absence of $CO_2$ fixation became known as the Hill reaction. It showed that whole cells were not necessary for at least some of the reactions of photosynthesis and that the light-driven $O_2$ release is not mandatorily tied to reduction of $CO_2$.

More convincing evidence that the $O_2$ released is derived from $H_2O$ came in 1941 from results of Samuel Ruben and his associates. They supplied the green alga chlorella with $H_2O$ containing O, a heavy, nonradioactive oxygen isotope that was detected with a mass spectrometer. The $O_2$ released in photosynthesis became labeled with 1RO, thus supporting van Niel's hypothesis. For technical reasons,

Ruben's experiments could not prove that $O_2$ came entirely from $H_2O$, but later work of Alan Stemler and Richard Radner (1975) seems to provede such proof. We must, therefore, modify the summary equation for photosynthesis given in R9-1 to include two $H_2O$ molecules as reactants:

$$nCO_2 + 2nH_2O + \text{light} \xrightarrow{\text{chloroplasts}} (CH_2O)n + nO_2 + nH_2O \quad (R9-3)$$

In 1951, it was found that a natural plant constituent, the vitamin B (niacin or nicotinamide) - containing coenzyme called nicotinamide adenine dinucleotide phosphate ( commonly abbreviated $NADP^+$), could also act as a Hill reagent by accepting electrons from water in reactions occurring in isolated chloroplasts. One of two essential functions of light in photosynthesis is to drive electrons from $H_2O$ to reduce $NADP^+$ to NADPH. The other function is to prove energy to form ATP from ADP and $H_2PO4$, as described below

This conversion of ADP and Pi to ATP in chloroplasts was discovered in the laboratory of Daniel arnon in 1954. Arnon found that ATP was synthesized in isolated chloro - plasts only during light, and the process become known as photosynthetic phosphorylation, or simply photophosphor-lation, or simply photophosphorylation.

Photophosphorylation in chloroplasts accounts for much more ATP formation in leaves during the light than does oxidative phosphorylation in the mitochondria of those leaves, and so it is clearly of great quantitative significance.

## CHLOROPLASTS: STRUCTURES AND PHOTOSYNTHETIC PIGMENTS

Chloroplasts of many shapes and sizes are found in various kinds of plants. They arise from tiny proplastids. Most chloroplasts are easily seen with the light microscope but their fine structure can be discovered only by electron

microscopy. Each chloroplast is surrounded by a double membrane system or envelope that controls molecular traffic into and out of them. Within the chloroplast is an other series of membranes that contains photosynthetic pigments.)

(Each of the internal membranes containing photo-synthetic pigments seems to be the external surface of a flattened tube or sac, called a thylakoid (Greek thylakos, sac or pouch). In certain regions the thylakoids are stacked to form grana ( single stack, granum). The longer thylakoids that connect one granum to another extend through the chloroplast matrix called the stroma, so these members are usually referred to as stroma thylakoids (Fig-1). Stroma thylakoids often extend into and make up part of one or more grana, and in those locations there is no apparent distinction between them and the grana thylakoids.)

( There is a cavity, which we call a channel, between the two membranes of each thylakoid. This channel is filled with water and dissolved salts, but it plays a special role in photosynthesis.

The pigments present in thylakoid membranes consist largely of two kinds of green chlorophylls, chlorophyll a and chlorophyll b. Also present are yellow to orange pigments classified as carotenoids. There are two kinds of carotenoids, the pure hydro carbon carotenes and the oxygen-containing xanthophylls.)

## SOME PRINCIPLES OF LIGHT ABSORPTION BY PLANTS

To find out how light causes photosynthesis, we must learn something about its properties. Light has a wave nature and a particle nature. Light represents the part of radiant energy that has wavelengths visible to the human eye (approximately 390 to 760 nanometers, nm). This is a very narrow region of the electromagnetic spectrum.

The particulate nature of light is usually expressed in statements that light comes in quanta or photons, discrete packets of energy, each having a specific associated wavelength. The energy in each photon is inversely proportional to the wavelength, so the violet and blue wavelengths have more energetic photons than the longer orange and red ones. One mole ($6.02 \times 10^{23}$) of photons has been called an

Einstein, although the term Einstein is now being discouraged because a mole is an SI unit and an Einstein is not.

A fundamental principle of light absorption, often called the Stark Einstein Law, is that any molecule can absorb only one photon at a time and this photon causes the excitation of only one electron.

Chlorophylls and other pigments can remain in an excited state only for short periods, usually a billionth ($10^{-9}$) of a second or even much less. The excitation enegy can be totally lost by heat release as the electron moves back to ground state. A second way that some pigments including chlorophyll, can lose excitation energy is by a combination of heat loss and fluorescence. (Fluorescence is light production accompanying rapid decay of excited electrons.

( Photosynthesis requires that energy in excited electrons of various pigments be transferred to an energy-callecting pigment, a reaction centre which is a chlorophyll a ).

Figure 9-6 (a) Absorption spectra of chlorophylls a and b dissolved in diethyl ether. The absorptivity coefficient used here is equal to the absorbance (optical density) given by a solution at a concentration of 1 g/1 with a thickness (light path length) of 1 cm. (from F.Zscheile and C.Comar, 1941. Botanical Gazette 102.463.) (b) Absorption spectra of B-carotene in hexane and of lutein ( a xanthophyll) in ethanol. The absorptivity coefficient used is the same as that described in Fog-9-6a ( Data from F.Zscheile et al., 1942. plant physiology 17.331).

Shall explain later that there are two kinds of reaction centers in thylakoids, both of which consist of chlorophyll a molecules that are made special by their association with particular proteins and other membrane components. Figure-9-5 illustrates that the energy in an excited pigment can be transferred to an adjacent pigment, and from it to another pigment, and so on until the energy finally arrives at the reaction center.

(Chlorophylls are green because they absorb green wavelengths ineffectively and instead reflect or transmit them.

We can measure therelative absorbance of various wave lengths by a purified pigment with a spectrophotometer. A graph of this absorption as a function of wavelength is called an absorptionspectrum.

When we compare the effect of different wavelengths on the rate of photosynthesis, always making sure not to add so much energy of any wavelength that the process becomes saturated, we obtain an action spectrum.

The Emerson Enhancement Effect:

In the 1950s, Robert Emerson at the University of Illinois, was interested in why red light of wavelengths longer than 690 nm is so ineffective in causing photosynthesis.His research group found that if light of shorter wavelengths was provided at the same time as the longer red wavelengths, photosynthesis was even faster than could be expected from additing the rates found when either color was provided alone. This synergism or enhancement become known as the Emerson enhancement effect. We now realize two separate groups of pigments cooperate in photosynthesis and that such red wavelengths are absorbed only by one photosystem, called photosystem I (PS I). The second photosystem, photo system II (PS II), absorbs wavelengths shorter than 690 nm, and for maximum photosynthesis at longer wavelengths both system must function together.

Photosystems I and II: Composition, Functions and Locations in Thylakoids:

Analysis of the separated green bands shows that PS-I contains chlorophyll a, small amounts of chlorophyll b and some β-carotene attached by noncovalent bonds to several proteins. One of the chlorophyll a molecules is somehow made special by its chemical environment such that it absorbs light near 700 nm as well as at shorter wavelengths and so is called P700. It is P700 that is the reaction center for PS I and to which all surrounding chlorophyll a and β carotene molecules in that photosystem transfer their energy.

Photosystem II also contains chlorophyll a and β-carotene (connected to two major proteins), and again little chlorophyll b is present. The reaction center is P680, a chlorophyll a molecule in a chemical environment different from that of P700 or other chlorophylls a.

Besides these photosystems, two other major green bands can be separated from chloroplasts by electrophoresis. Each contains both chlorophylls [illegible]

but very little β-carotene, all these pigments are bound to proteins. These green bands represent light-harvesting complexes of pigments and protein, one of which functions with PS I and the other mainly with PS II. Their function is to harvest light energy by absorbing it and transferring it to the proper photosystem, where it eventually reaches P700 or P680.

The thylakoids also contain electron carriers like plastocyanin, plastoquinone, cytochrome f, cytochrome $b_6$, cytochrome $b_3$.

A finalcomponent of thylakoids necessary for photophosphorylation is a complex of proteins called the ATPase or coupling factor (CF) complex. This complex can, under different conditions, either hydrolyze ATP to ADP and Pi or synthesize ATP from Pi and ADP by photophosphorylation.

The electron transport components of the model can be compared to a bucket brigade. Just as people in a bucket brigade rapidly move buckets of water toward a fire, so these elctron transport components move electrons rapidly from $H_2O$ to $NADP^+$. First follow only the heavy arrows starting with $H_2O$(lower left). These arrows represent a pathway called nonocyclic electron transport, because the electrons driven from $H_2O$ to $NADP^+$ never cycle back.x The formation of ATP by this electron transport is called monocyclic photophosphorylation.

Photophosphorylation, Formation of ATP also arises from a pathway of electron and $H^+$ transport partly separate from the noncyclic pathway described previously. This pathway involves PS I, ferredoxin, the cytochrome $b_6$ and f complex, plastoquinones, and plastocyanin but not PS II. Because the electron cycles from P700 back to P700, we call this cyclic electron transport. No $H_2O$ is split, because PS II is not involved so no NADPH is ~~split~~ formed. But ATP is produced by this cyclic-electron-transport pathway is therefore, called cyclic photophosphorylation.

Reduction Potentials and the Z-scheme:

Some compounds can easily accept electrons and are easily reduced, but such compounds only give up electrons with difficulty. Other compounds do not readily accept electrons but give

them up easily. In thermodynamic terms that we can express quantitatively, reactions involving the former compounds have relatively positive reduction potentials, and reactions involving the latter compounds have relatively negative reduction potentials. The symbol used to express the standard reduction potential at pH 7 is $E'_o$. Only if the $E'_o$ value for a reaction involving one compound is more **negative** than that for another compound can the first compound be expected on thermodynamic grounds to readily donate an electron to the second.

For electron transport from $H_2O$ to $NADP^+$, $H_2O$ is difficult to oxidize, because $O_2$ atracts electrons and protons so strongly (is so easy to reduce).

By isolating suspected components of the electron-transport pathway from $H_2O$ to $NADP^+$ and measuring $E'_o$ values for redox reactions in which they participate, biochemists attempted to place each component next to another with a similar $E'_o$ value. The goal was to arrange them such that electrons reasonably flowed downhill energetically, from more negative to less negative (or more positive) $E'_o$ value. The problem became easier after it was recognised that two photosystems were involved and that two photons acted separately to push an electron partway "uphill" on the energy scale. This led to a Z-scheme of electron transport first proposed by R. Hill and F.Bendall in 1960. Our is based partly on Z-scheme models described recent books and reviews e.g. Kok (1976).

Photosynthesis
– R. Misra



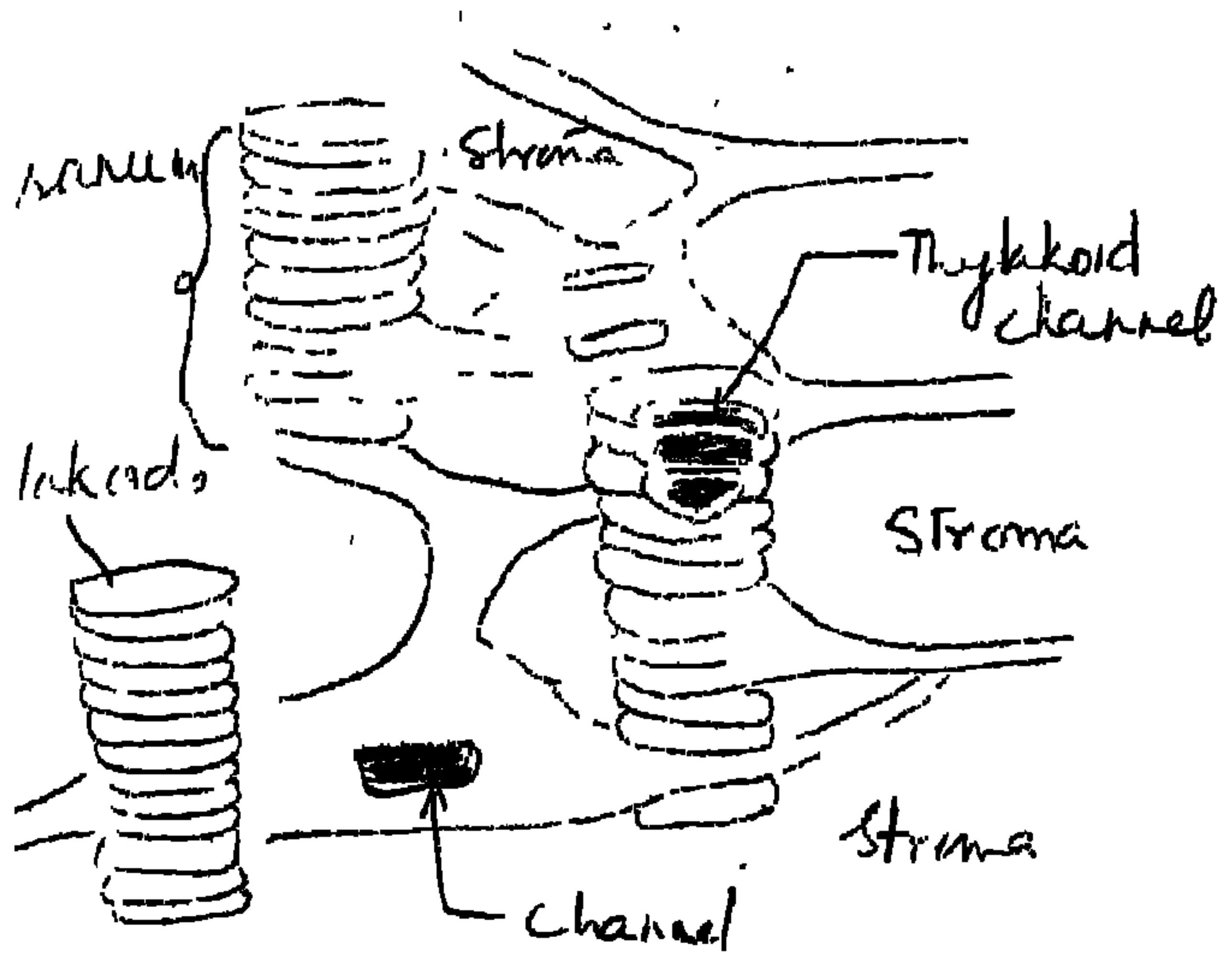



Fig 1. A 3-dimensional interpretation of the arrangements of the internal membranes of a chloroplast emphasizing the relation between stroma thylakoid and grana.

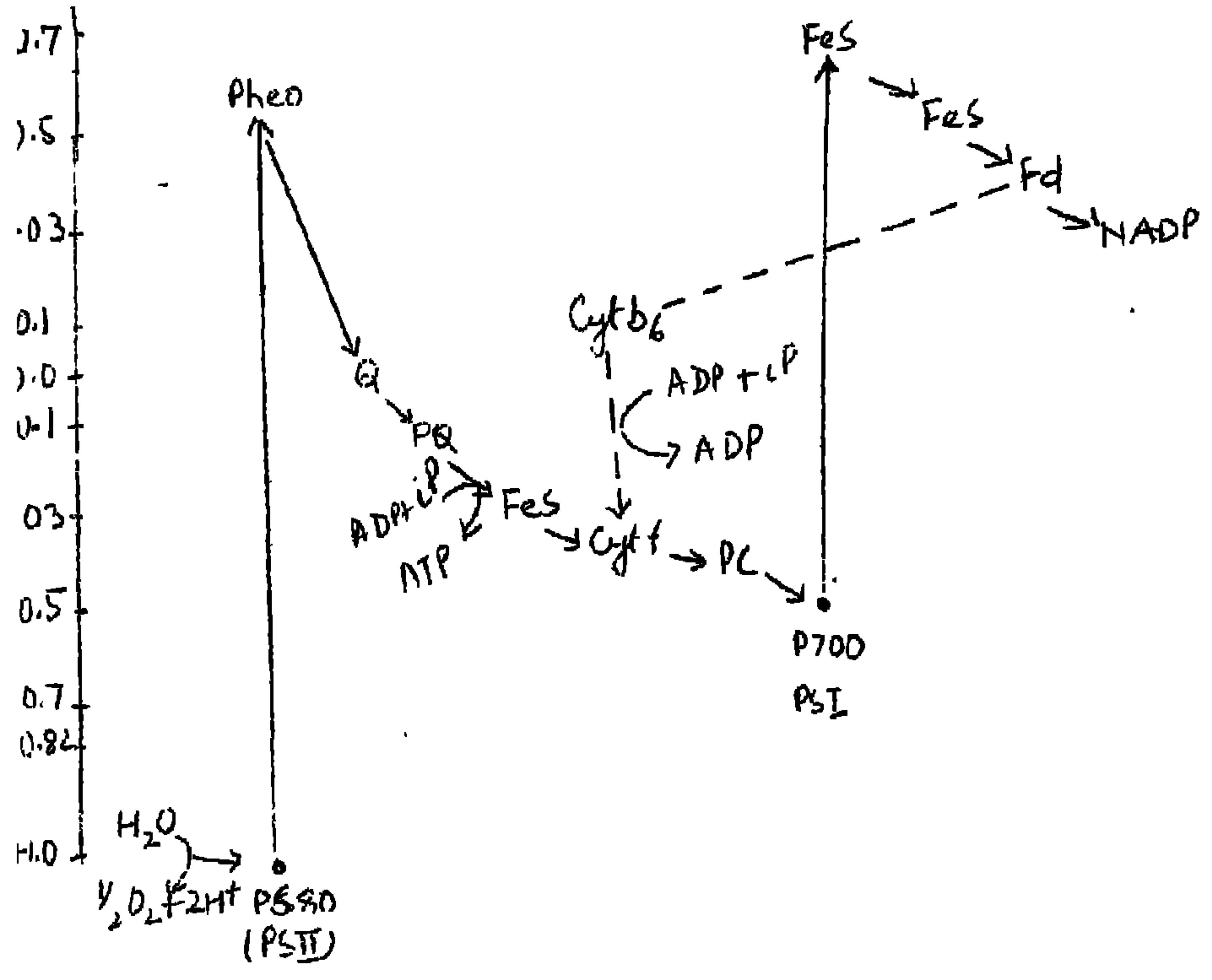



Fig 2 The Z-scheme of electron transport showing photophosphorylation.

. IELD AND HERBARIUM TECHNIQUES AND MAINTENANCE

Dr. G.V. Gopal
Lecturer in Botany

A herbarium is a collection of plants that usually, have been pressed, dried, mounted on sheets and arranged in accordance with any accepted system of classification for future reference and study.

There are three different means of handling fresh material for processing into herbarium specimens. The most easy and satisfactory method is to press each plant as it is collected, in between the folded blotting papers or sheets of newsprint. The second method is to accumulate the material in a Vasculum(a metal collecting can). But plants should be pressed as soon as opportunity permits. The third method is to carry collected specimens in a rucksack. They are then pressed as soon as possible after return to headquarters.

At the time of collection care should be taken to have the specimens in flowering stages. Vegetative parts without flowers are absolutely useless for herbarium as their identification becomes almost impossible. Certain items of equipments are indispensable while attending an excursion for collection of material (i)a strong knife (ii) a pair of pruning shears, (iii)a collecting pick, (iv) a plant press containing blotting papers, (v) a field record book with voucher numbers, and (vi) a small note book.

Drying technique: The collected specimens are placed in between the blotting papers which are then placed one above the other and then tied tightly in a field press, which is efficient in holding the specimen under a constant and firm pressure. The press is locked up for twenty-four hours- the 'sweating period'. After the sweating period the press is opened, the pressing papers are changed and the specimens are rearranged. The rearrangement

of specimens is very important as during this process the plant parts can be put in a desired position. The press is locked up again and allowed to remain as such for forty-eight to seventy-two hours. This process is repeated for several time until the specimens become completely dried.

Mounting and levelling of the specimen: After drying the specimens should be mounted on mounting papers or herbarium sheets. These sheets must be of good quality and heavy to support the specimens as a permanent record. The standard size of a herbarium sheet is 29X 42 cm. The specimens are fixed to the sheets with the help of quick drying adhesives. Each herbarium sheet should be provided with a level (6X10cm), either pressed or printed on the lower right-hand corner. The label should give the following information:

FLORA OF................

Voucher No............ Date of collection.........
Name ..............
Family.............
Habit..............
Locality........... Attitude..................
Collection.........
Remarks............

Preservation of herbarium sheets: If not properly preserved, the insects and fungi do irreparable damage to the herbarium sheets. The most common pests are the silver fish, herbarium bettle, etc. and the fungus is is Eurotium herbariorum. Different chemicals, such as cyanide gas, paradichlorobenxene, DDT, naphtha-flaker are generally used as preservatives.

# PLANT IDENTIFICATION

Dr. G. V. Gopal
Lecturer in Botany

The identification is the determination of a taxon "as being identical with or similar to another and already known element". Usually the first step essential in identification of plant is the identification of the family to which it belongs. This step is accomplished by use of artificial key to families. Once the family is determined, by use of the key to genera, generic name is determined. Then by means of the key to species, specific identity of the plant is known. Identification is usually done by the utilization of taxonomic literature, floras, manuals, check lists, monographs and revisionary work on various taxa.

In identification of an unknown plant keys are useful devices. There are various types of keys in use but the most convenient and acceptable type of key is dichotomous key. In this type of key at every stage a choice must be made between two contrasting alternatives, one of which will fit the situation and the other will not apply. Various terms used in plant morphology are explained in the glossary provided in the appendix. A brief attention is drawn here to certain features that may cause difficulty when using the key. For identification a reasonably complete specimen, with vegetative parts, flowers (if unisexual both male and female flowers) and fruits are required.

Certain deciduous plants flower when they are without leaves. In such cases leaf phyllotaxies can be determined by examining the leaf-scars. Stipules should be looked for on young shoots, as they are often deciduous. Punctate pellucid glands is another distinctive feature to look for, which can be best observed by holding a leaf against light, and so also the presence of milky, or coloured sap.

The arrangement of perianth (aestivation), which is sometimes a valuable family character, should be observed in the bud, whereas placentation at full anthesis. An actinomorphic flower has sometimes only one plane of symmetry as in Brassicaceae and some Papaveraceae and a zygomorphic flower has only one plane of symmetry.

The perianth may be in one series or more series or absent. When in more than one series, it should be observed if the series resemble one another in form, colour and texture or they are differentiated in calyx and corolla. In some cases (e.g. Papaver) the calyx is caducous and is thrown off as the flower opens. In such cases observation in bud can give a correct idea of the situation. In some cases, as in many Apiaceae, Asteraceae and Rubiaceae the calyx is reduced to a rim, minute teeth or hairy pappus. Such flowers are treated as having a distinct calyx and corolla. In some cases (e.g. Nyctaginaceae) the calyx is petaloid structure and it should not be confused with corolla. In some cases an epicalyx is present outside the calyx (e.g. some Malvaceae).

A nectar secreting dise may be present in many flowers (e.g. Rutaceae) or nectar is secreted by separate glands (e.g. Geranium) or nectar is secreted by the perianth or in sace and spurs developed on the corolla (e.g. some Ranunculaceae).

The stamens are antipetalous i.e. opposite the perianth segments as in Chenopodiaceae and Amaranthaceae or the stamens of the outer whorl are opposite the petals, a condition known as obdiplostemony (e.g. Caryophyllaceae).

The placentation is of vital importance in identification and it can be best observed by cutting one ovary transversely and another longitudinally by a razor blade. Attachment of ovules can be sometimes seen more easily by slitting the ovary wall with a sharp needle (e.g. Asteraceae, Cyperaceae).

It is sometimes difficult to determine number of carpels in a syncarpous ovary. In such cases number of styles and stigma, the number of placentae in parietal placentation, and the number of locules in an ovary with axile placentation are indicator of basic carpel number.

It is always preferable to examine living material but floral structures can also be examined if a pressed flower is boiled in water for a couple of minutes and then dissected in a drop of water under a dissecting microscope.

With the help of the key given in the following pages, selected families of the flowering plants, described in this book can be easily identified. The key is indented type and dichotomous throughout. The main key is arranged in groups. Each pair of lead (alternative statement) is numbered, and each lead of a pair is given a distinguishing letter (a,b).

KEY TO THE GROUPS

1a. Cotyledons two; leaves usually with reticulate venation; flowers usually pentamerous or tetramerous; vascular bundles of the stem usually arranged in a ring; tap root usually present.

(DICOTYLEDONS).

2a. Flowers with two distinct whorls of perianth.

3a. Corolla of distinct petals[1].

4a. Flowers hypogynous.

5a. A conspicuous disc is present at the base of the ovary
Group 2.

5b. Disc is absent.
Group 1.

4b. Flowers perigynous or epigynous.
Group 3.

3b. Corolla of united petals.

6a. Ovary inferior.
Group 4.

6b. Ovary superior.

7a. Carpels more than two.
Group 5.

7b. Carpels two. Group 6.

2b. Flowers with one whorled of perianth, usually sepaloid[2].
Group 7.

1b. Cotyledon one; leaves usually with parallel venation; flowers usually trimerous; vascular bundles of the stem scattered; tap root usually absent.

(MONOCOTYLEDONS)
Group 8.

GROUP KEYS

Dicotyledons

GROUP - 1

Flowers mostly regular and bisexual; petals distinct; stamens hypogynous; ovary superior.

1a. Aquatic plants with peltate leaves.

Nymphaeaceae

ıatic then without peltate

ulate leaves; connective
ed; endosperm of the seed

Annonaceae

late leaves; connective
the seed watery fleshy.
Magnoliaceae

amerous, not trimerous.

s carpels.
Ranunculaceae

carpels.

Fumariaceae

Violaceae

Papaveraceae

Brassicaceae

; androphore and
Capparidaceae

; androphore and
Violaceae

apsule dehiscing by
Caryophyllaceae

ıs; capsule dehiscing
Portulacaceae

5b. Ovary multilocular.

13a. Anthers one-celled.

Malvaceae

14b. Stamens many, more or less distinct.

Tiliaceae

## G R O U P - 2

Sepals distinct or united; a conspicuous disc is present; stamens usually definite, inserted upon or at the outer or inner base of the disc; ovary superior.

1a. Leaves aromatic, glandular punctate.

Rutaceae

1b. Leaves neither aromatic nor glandular punctate.

2a. Climbers, usually with tendrils.

Vitaceae

2b. Trees, shrubs or herbs without tendrils.

3a. Flowers bisexual, disc usually annular adnate to the stamens.

4a. Leaves simple and stipulate; fruit a schizocarp.

Geraniaceae

4b. Leaves compound and exstipulate; fruit a capsule or drupe.

5a. Stamens obdiplostemonous; may be united only at the base. Oxalidaceae

5b. Stamens not obdiplostemonous; united into a tube around the style.

Meliaceae

3b. Flowers usually unisexual, disc tumid, adnate to the base of calyx or lining its tube.

6a. Fruit capsular or indehiscent, sometimes winged.

Sapindaceae

6b. Fruit a one-celled one-seeded drupe.

Anacardiaceae

## GROUP - 3

Sepals united, rarely free; often adnate to ovary; stamens perigynous, usually inserted on or beneath the outer margin of the disc; ovary often inferior.

1a. Ovary of one carpel with marginal placentation; fruit a legume.

Fabaceae

1b. Ovary of two or more carpels; placentation not marginal; fruit never a legume.

2a. Herbs climbing with the help of tendrils.
Cucurbitaceae

2b. Herbs shrubs or trees with out tendrils.

3a. Leaves stipulate.
Rosaceae

3b. Leaves exstipulate.

4a. Placentation parietal.
Cactaceae

4b. Placentation not parietal.

5a. Ovary unilocular with two to five pendulous ovules.
Combretaceae

5b. Ovary usually two or more locular.

6a. Leaves with pellucid aromatic glands.
Myrtaceae

6b. Leaves with out pellucid aromatic glands.

7a. Fruit a many-seeded capsule.
Lythraceae

7b. Fruit a schizocarp splitting into two mericarps.
Apiaceae

## GROUP - 4

Corolla gamopetalous; stamens usually as many as corolla lobes; ovary inferior.

1a. Leaves opposite and stipulate.
Rubiaceae

1b. Leaves alternate and exstipulate.
Asteraceae

## GROUP - 5

Corolla gamopetalous; stamens as many or twice as many as the corolla lobes; carpels more than two; ovary superior.
Sapotaceae

## GROUP - 6

Corolla gamopetalous; stamens as many as or fewer than corolla-lobes; carpels two; ovary superior.

1a. Flowers actinomorphic; stamens as many as the corolla-lobes.

2a. Leaves usually opposite.

3a. Pollen granular, transferred directly from anthers; corona absent.

Apocynaceae

3b. Pollen often in pollinia, transferred by means of specialized translators; corona present.

Asclepiadaceae

2b. Leaves generally alternate.

4a. Ovules one or two per loculus.

5a. Sepals free; corolla lobes contorted and infolded.

Convolvulaceae

5b. Sepals connate; corolla lobes imbricate.

Boraginaceae

4b. Ovules numerous in each loculus.

Solanaceae

1b. Flowers zygomorphic; corolla usually two-lipped; stamens fewer than corolla lobes.

6a. Ovules many in each locule.

7a. Trees, shrubs or climbers with compound leaves; seeds winged.

Bignoniaceae

7b. Herbs or shrubs with simple leaves, seeds wingless.

8a. Capsule opening elastically; seeds usually on hooked funiculus.

Acanthaceae

8b. Capsule not elastic; seeds not on hooked funiculus.

9a. Flowers axillary; corolla ventricose, sub-two-lipped.

Pedaliaceae

9b. Flowers in racemes or spikes; corolla not ventricose usually two-lipped.

Scrophulariaceae

6b. Ovules one or two in each locule.

10a. Style gynobasic; fruit usually of four one-seeded nutlets; corolla strongly bilabiate; calyx often two-lipped.

Lamiaceae

10b. Style terminal; fruit a berry or drupe; corolla less strongly zygomorphic; calyx nearly actinomorphic, not two-lipped.

Verbenaceae

## GROUP - 7

Flowers usually with one whorl of perianth, usually sepaloid, or none.

1a. Stems jointed; leaves reduced to whorls of scales.
Casuarinaceae

1b. Stems not jointed, leaves expanded.

2a. Ovary inferior; branch parasites.
Loranthaceae

2b. Ovary superior; not branch parasites.

3a. Flowers usually bisexual or polygamous.

4a. Leaves stipulate; stipules sheathing.
Polygonaceae

4b. Leaves exstipulate.

5a. Perianth scarious; stamens usually with interposed staminodes.
Amaranthaceae

5b. Perianth sepaloid; staminodes not present.
Chenopodiaceae

3b. Flowers usually unisexual.

6a. Ovary trilocular; fruit schizocarpic; seeds carunculate.
Euphorbiaceae

6b. Ovary unilocular; fruit a syncarp of confluent pericarps and perianths; seeds not carunculate.
Moraceae

## MONOCOTYLEDONS
## GROUP - 8

1a. Trees, shrubs or scramblers with large plicate or pinnately divided leaves; flowers nearly sessile, in fleshy spikes or panicles with spathe-like bracts.
Arecaceae

1b. Not as above.

2a. Aquatic herbs, carpels free.
Alismaceae

2b. Terrestrial plants[1], carpels usually fused.

3a. Ovary inferior.

4a. Flowers in spadix.
Musaceae

4b. Flowers not in spadix.

---

1. A few Araceae are also aquatic herbs.

5a. Placentation parietal.

Orchidaceae

5b. Placentation not parietal, usually axile.

6a. Fertile stamen one, the others often transformed into petal-like staminodes.

Zingiberaceae

6b. Fertile stamens six, in two trimerous whorls.

Amaryllidaceae

3b. Ovary superior.

7a. Perianth well developed.

8a. Leaf bases sheathing, filaments bearded.

Commelinaceae

8b. Leaf bases not sheathing; filaments not bearded.

Liliaceae

7b. Perianth scarious or redeced to bristless hairs or lodicules or none.

9a. Flowers usually unisexual, on a spadix; fruit a berry.

Araceae

9b. Flowers uni-or bisexuzl; in spikelets; fruit indehiscent.

10a. Leaf phyllotaxis 1/2; leaf sheaths with usually free margins; culms culms cylinderical; spikelets subtended by a pair of sterile bracts (glumes); each flower enclosed between a membranous bract (lemma) and adaxial bracteole; perianth reduced to lodicules.

Poaceae

10b. Leaf phyllotaxis 1/3; leaf sheaths closed; culms usually triangular; spikelets usually not subtended by sterilc bracts; each flower subtended by a single membranous bract; perianth represented by bristles, hairs, scales, or none.

Cyperaceae

***

# MITOSIS

Dr. G.V. Gopal
Lecturer in Botany.

Mitosis is a mechanism by which the cell distributes. in equivalent amounts, the different components that have been duplicated during the interphase. Prophase, metaphase, anaphase and telophase are characterized by morphological changes that take place in the nucleus and the cytoplasm.

In prophase chromosomes appear as thin threads that condense by coiling and folding. Each chromosome contains two chromatids which will be the future daughter chromosomes. With condensation each chromatid shows the centromere or kinetochore. The nucleolus tends to disintegrate and disappears at the end of prophase. In the cytoplasm the spindle is formed between the asters (and centrioles) that move toward the poles. Centrioles replicate at interphase during the S period.

At the beginning of metaphase (prometaphase) the nuclear envelope disintegrates and there is mixing of the nucleoplasm with the cytoplasm. Chromosomes become attached to the microtubules of the spindle and are oriented at the equatorial plate. The spindle has continuous microtubules and Chromosomal ones. Animal cells have the spindle shown in (astral mitosis). In plant cells centrioles and asters are absent (anastral mitosis).

In anaphase the daughter chromosomes, led by the centromere, move toward the poles. The spindle fibers shorten one third to one fifth the original length.

In telophase chromosomes again uncoil; the nuclear envelope is reformed from the endoplasmic reticulum; and the nucleolus reappears.

Cytokinesis is the process of separation of the cytoplasm. In animal cells there is a constriction at the equator that finally results in the separation of the daughter cells.

During prophase and metaphase the chromosomes undergo a process of condensation which is reversed during telophase. This process is related to the folding and unfolding of the unit fiber that constitutes the basic structure of the chromosome. The condensation cycle is specific for each chromosome and probably depends on special regions (folders)
[illegible]

spaced along the unit fiber. It is generally believed that each chromosome is made of a single strand of DNA during the $G_1$ period. The single strand duplicates during the S period, and later on ($G_2$ and prophase) each chromosome is double (two chromatids). Experiments involving X-irradiation and the action of DNA-ase tend to confirm the single strand model of the chromatid.

The centromete or kinetochore is a special differentiation of the chromosome, situated at the primary constriction. It is the site of implantation of the microtubules of the spindle, it has a cup-like shape (0.20 to 0.25 um); and it is made of non-chromatin material. The kinetochore may be a nucleation centre for the polymerization of tubulin, the protein of microtubules.

The mitotic apparatus comprises the spindle and the asters which surround the centrioles. The spindle is made of the chromosomal fibers, the continuous fibers, and the interzonal fibers, the latter are observed at anaphase and telophase between the daughter chromosomes. Study of the mitotic apparatus can be performed by electron microscopy, but in the living condition polarization microscopy is most useful in following the development of the various fibers.

In plant cells the interzonal region of the spindle is transformed into the phragmoplast, which is the precursor of the cell plate. Spindle fibers are dynamic structures that are assembled and disassembled. Microtubules are depolymerized in the cold and become more developed in heavy water.

The protein tubulin is composed of dimers of 110,000 to 120,000 daltons. Colchicine and other drugs bind to tubulin. preventing its polymerization and the formation of microtubules. In this way mitosis is stopped at metaphase. The mechanism by which some microtubules shorten during anaphase is not completely known, but is probably by depolymerization at the polar ends.

Elongation and shortening of microtubules seem to be the two major mechanism by which the chromosomes are moved towards the poles. The microtubules attached to the kinetochores exert considerable pulling force. It is calculated that 30 ATP molecule of energy are required for a chromosome to move from the equator to the pole. The most favored explanation for the mechanical action of the spindle is the so-called assembly-disassembly hypothesis. During anaphase the assembly of microtubules of the continuous fibers may cause elongation, with separation of

the poles and "pushing" of the chromosomes. The disassembly of microtubules of the continuous fibers may cause shortening and "pulling" of the chromosomes.

Cytokinesis or cell cleavage differs considerably in animal and plant cells. In the former, separation of daughter cells is produced by an equatorial construction which involves a contractile mechanism at the cell cortex. This is achieved by a system of actin-like microfilaments. A dense structure called the midbody may be formed.

In plant cells cytokinesis starts with the formation of the phragmoplast, which comprises the interzonal microtubules and Golgi vesicles. This structure is transformed into the cell plate, which separates the territories of the daughter cells. Within the cell plate the primary cell wall is produced by a secretory mechanism consisting mainly of the production of pectin, which is contained in Golgi vesicles.

-XOOOOOX-

## M E I O S I S

Meiosis is a special type of cell division persent in germ cells of sexually reproducing organisms. It consists of a single duplication of the chromosomes, followed by two consecutive divisions. The result is four haploid cells. Meiosis may be : (1) terminal or gametic, occuring immediately before the formation of the gametes; (2) intermediary of sporic, taking place sometime between fertilization and the formation of the gamets (found in higher plants); or (3) initial or zygotic, occuring immediately after fertilization (found in fungi;

Meiosis is divided into Division 1 and Division II. Division I has a long prophase during which the homologous chromosomes pair closely andinterchange hereditary material. The stages of leptonema, zygonema, pachynema, diplonema, and diakinesis are recognized. Chromosomal pairing occurs at zygonema and is completed a pachynema, giving rise to the bivalent that is formed of four chromatids (tetrad). Between the homologues there is a 0.1 to 0.2 um space occupied by the synaptonemal comple (see below). At pachynema, transverse breaks are produced and ther is interchange (i.e. recombination) between two of the homologous chromatids, while the other two remain intact. At diplonema, the phenomenon or recombination, expressed morphologically as chiasmata, is also referred to as crossing over. The number of chiastmata varies in different chromosomes. In diakinesis,

contractiohof the chromosomes is accentuated, and chiasmata move toward the ends of the chromosomes (terminalization). The rest of the meiotic process is very similar to mitosis.

The essence of the meiotic process is the formation of four nuclei, each differing from one another, in which each chromosome of the parent is represented once. As a result of the chiasmata in crossing over, the chromosomes usually do not consist of either completely maternal or completely paternal material, but of alternating segments of each. For example, all segments of chromosome A, between the centromere and the chiasma, effect a reductional division in anaphase I and an equational division in anaphase II. On the other hand, the segments located between the distal end of the chromosome and the chiasma effect a reduction in anaphase II.

Meiosis is, therefore, a mechanism for distributing the hereditary units (genes), permitting their random independent recombination. Crossing over provides a means by which genes of different chromosomes can be brought together and recombined. If this process did not take place, the evolution of the spacies would be suspended by unalterable chromosomes, and organism would not have their characteristic diversity.

The study of meiosis is a prerequisite for the understandin of the chromosomal basis of genetics. Only after the process of meiosis is understood will its significance in hereditary phenomena become apparent.

SYNAPTONEMAL COMPLEX AND RECOMBINATION

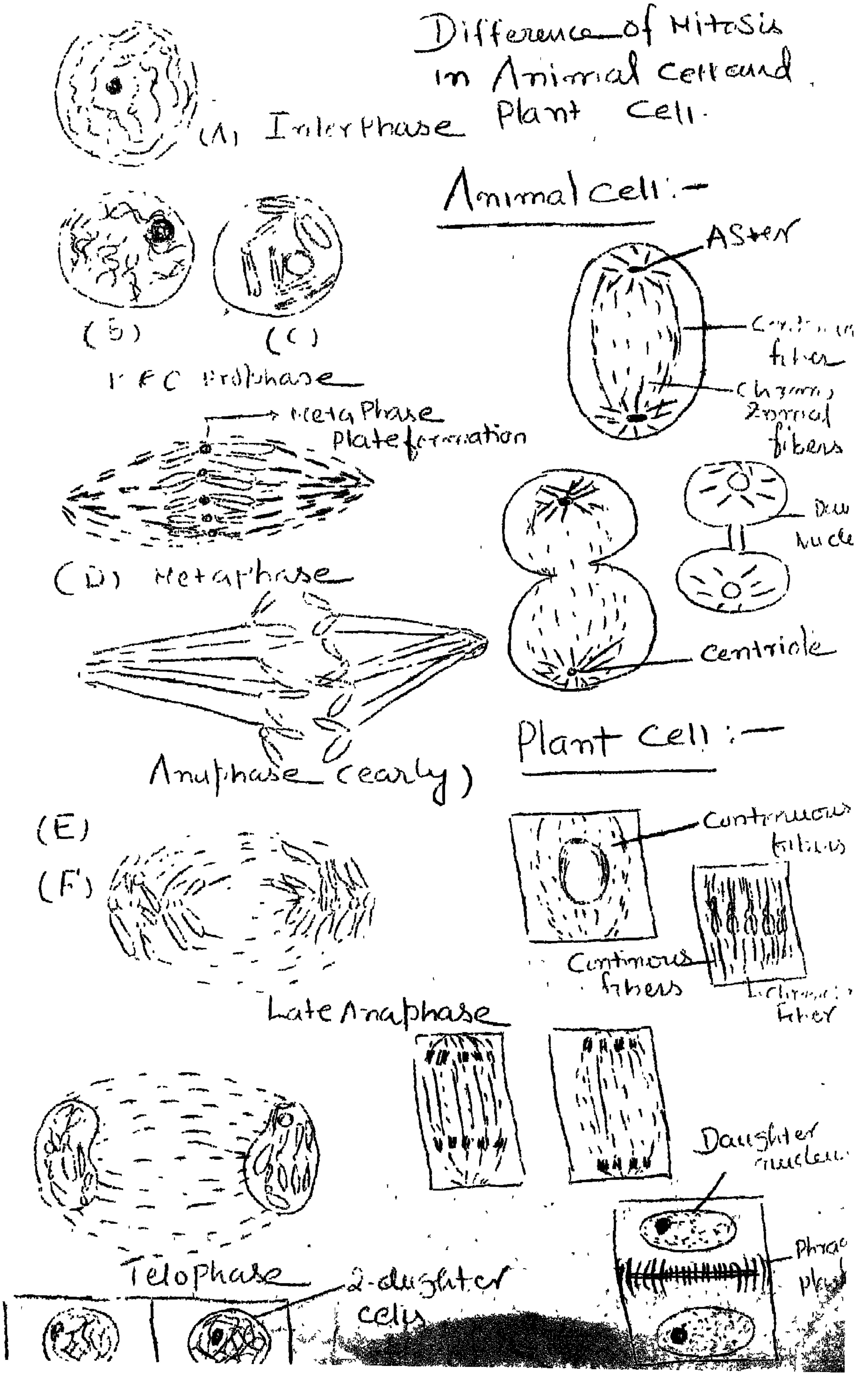
Two of the most important phenomena to take place during meiotic prophase are the linear pairing of the chromosomes and the interchange of segments between two of the homologous chromatids by crossing over or recombination. Studies of spermatocytes and oocytes with the electron microscope have demonstrated the presence of an axial differentiation of the meiot chromosomes at the time of pairing. This special structure is generally called the synaptonemal complex (SC) (other designations are chromosomal core, synaptinemal complex, or axial

The synaptonemal complex is a special structure, protein in nature, that develops during meiotic prophase in all eukaryotes It is composed of two lateral and one central component. The lateral components of the SC appear in each of the homologues, and the central component becomes evident during pairing. It seem possible that it is inside this central component that the close

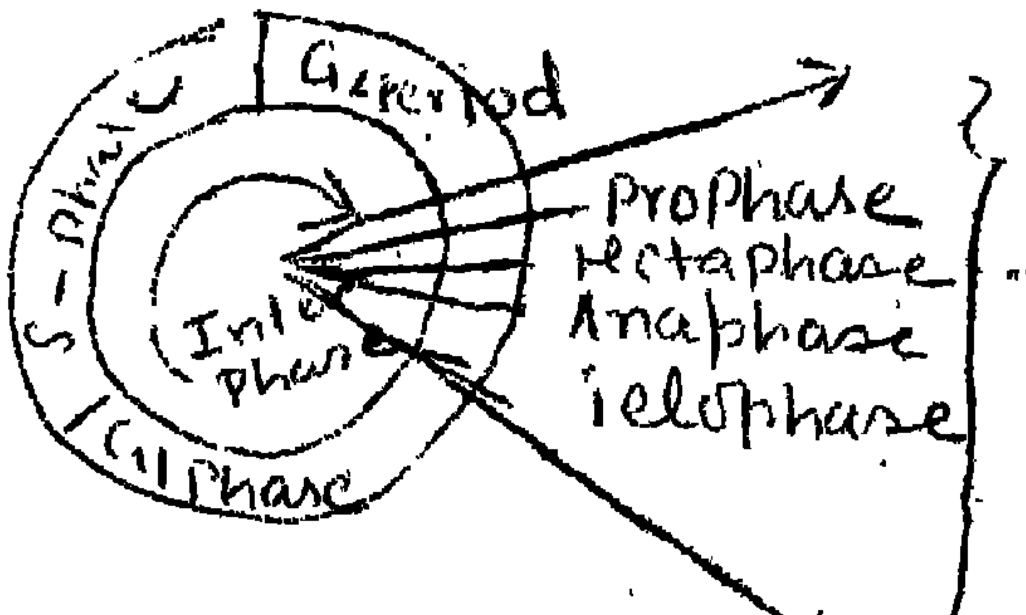
pairing needed for the recombination of the DNA molecules of homologous chromatids takes place. This pairing may be achieved via thin DNA fibers that pass across the SC. At diplonema the SC is shed from the bivalents, with the exception of the regions in which the repelling homologues are held together by a chiasma. Thus, a chaisma contains a piece of SC that will utlimately disappear and be replaced by a chromatin bridge.

@@@@@

Difference of Mitosis in Animal cell and Plant Cell.



## Schematic Representation of cell cycle

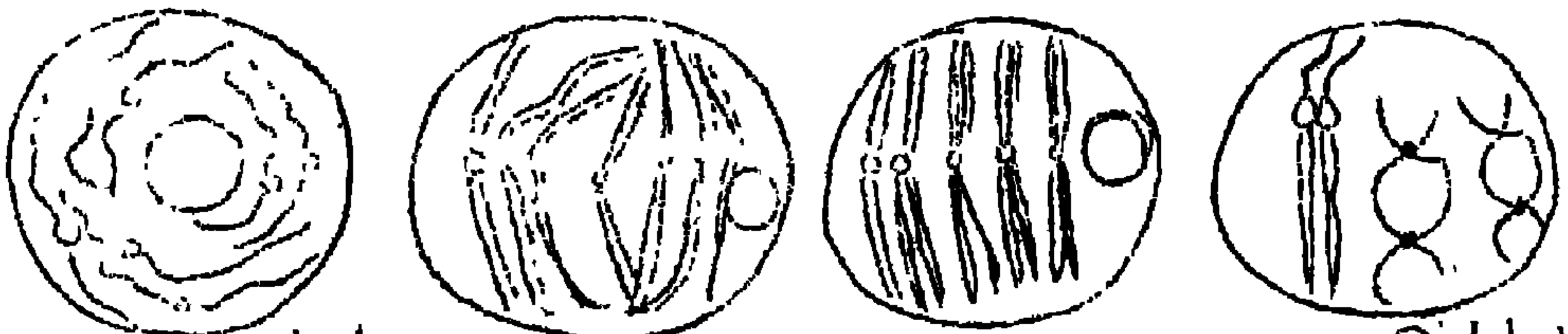



} Mitosis

## Different Stages of Meiosis

Meiosis occurs in 2 Stages i.e Meiosis - I
Meiosis - II

**PROPHASE I :-**

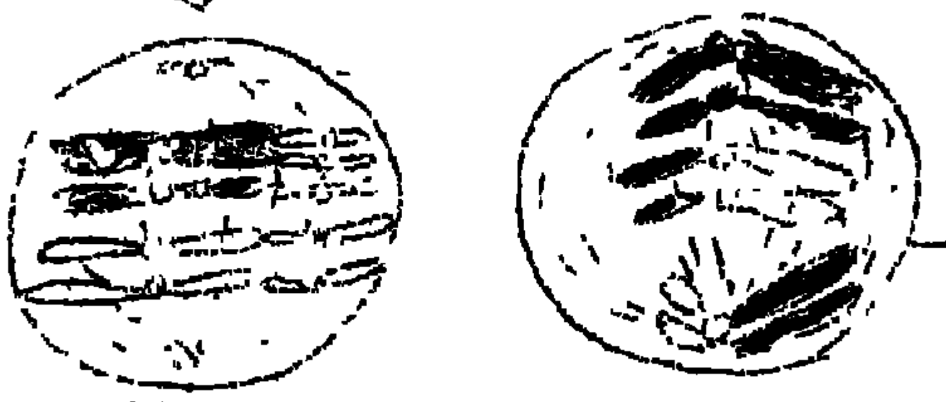


Leptotene Zygotene Pachytene Diplotene




Diakinesis

Metaphase I

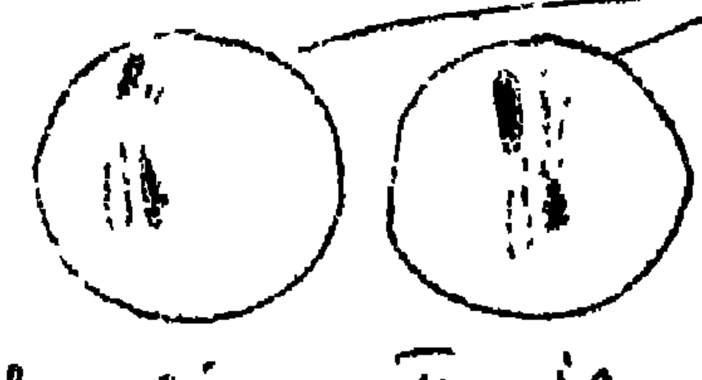


Anaphase I



Recombination is 50%.
Recombinants
Parental character 50
50 : 50 .

Anaphase I (Late)



2 daughter cell are formed after Ist Meiosis

Meiosis - II is exactly like Mitosis So, 2 - daughter cells divide and as a result from cells are formed.

} 4-daughter cells.

# ENDOCRINE SYSTEM

P. K. Pattnaik
Lecturer in Zoology

The endocrine system consists of a number of glands located in different parts of the body that have no anatomical continuity. However, the whole system forms a functional unit having a direct or reciprocal relationship. The endocrine system is under the control of nervous system. The neuroendocrine relationships have been studied in a number of vertebrates. An intimate relation of endocrine system with the autonomic and central nervous system via hypothalamus has been revealed. The hypothalamus serves as a relay station. The nervous system and the endocrine system are two important co-ordinating system which help in the function of integration between external and internal environment of the body.

The ductless glands of the endocrine system produces/ secretes hormones which passes directly from the gland cells into the blood stream for transmission to various "target" tissues. Hormones are information transferring molecules. Sometimes the target organ for a particular hormone may be an endocrine organ itself and hence the hormone is called as trophic hormone. All trophic hormones are secreted by the anterior pituitary.

## GENERAL CONSIDERATIONS OF HORMONES:

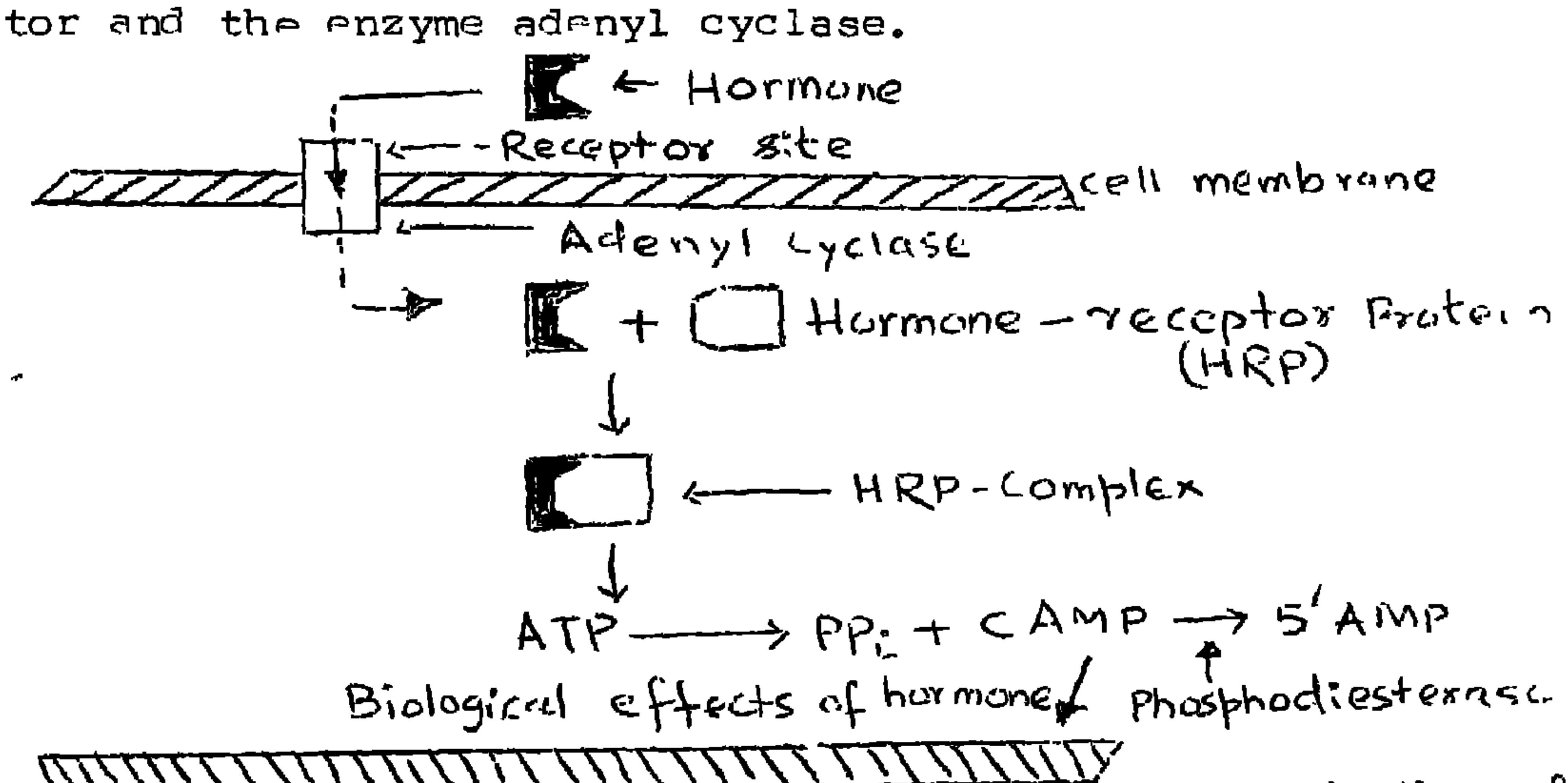
(1) Hormones may be peptides, proteins, glycoproteins amino acid derivatives or steroids (2) It acts as bodily catalysts resembling enzymes in certain respects. (3) Secreted to blood stream prior to use (4) Produced in an organ other than that in which they finally effect the action. (5) Produces satisfactory action even in low concentration. (6) Easy solubility low molecular weight, easily diffusible and no cumulative (continued) action are some of the essential properties of hormone. (7) Specific secretory stimuli are necessary for the secretion of hormones. However, the amount of secretion depends upon the nature and intensity of stimulu

## MODE OF ACTION OF HORMONES:

Physiologically, a hormone is considered as a carrier of information to modulate the function of certain tissues as per the needs of the body. These tissues are the receptor or the target tissues. In order to understand the

mode of functioning of the hormones Certain fundamental questions comes to our mind. How does a given receptor cell selectively recognize the hormonal message intended for it? What is the mechanism employed by the cell to modify its own function to respond accordingly? It should be first appreciated that the hormonal concentrations in the body are exceedingly small, even then the magnitude of their response is quite big. How a signal is amplified to trigger a response is a matter of experimental study. The harmonal message is specifically recognised, and then translated into signals capable of modifying the programme of the receptor cell.

In the nineteen-fifties, Sutherland and his associates suggested that adrenaline (a hyperglycaemic hormone) must play a part to increase the activity of the enzyme responsible to convert glycogen to glucose (hepatic glucose production). This enzyme happens to be phosphorylase which catalyzes hydrolysis of glycogen with the production of glucose-1 phosphate. The hormone triggers the formation of a substance which activates phosphrylase and this substance was identified as cyclic adenosine-3", 5' monophosphate (cyclic AMP). It is known that cAMP is formed from its precursor, ATP, under the catalytic influence of a specific enzyme adenyl cyclase. The enzyme is ubiquitous in nature and has been found in many different types of cell (chiefly in cell membrane). There are receptors on the cell surface each of which is specific for a single hormone and the response of a given tissue to a hormone depends on the presence of a specific receptor site. There seems to be some kind of a coupling factor between the receptor and the enzyme adenyl cyclase.




(Mechanism of action of a hormone showing the production of cyclic AMP. The hormone acts at a specific receptor site located in the plasma membrane)

Many hormones exert their action by way of formation of cyclic AMP in the receptor cells. Hence C-AMP is called as 'second messenger' owing to its role as intracellular intermediary. Cyclic AMP is broken down in the cells by enzyme phosphodiesterase which converts it to 5'-AMP. The hormone must produce increased quantity of C-AMP present in the receptor cell. Addition of exogenous cAMP to the system will produce specific biological effects of the hormone in all respects.

The endocrine system consists of the following glands:

1 Pituitary gland.
1 Thyroid gland.
4 Parathyroid glands.
2 Adrenals or Supra-renal glands.
The islets of Langerhans in the pancreas.
2 Testes in the male,
2 Ovaries in the female,
Placenta in the female.
1 Thymus.
1 Peneal gland or body.

Pituitary gland (Hypophysis):-

It is a composite gland situated at the base of the brain just behind the optic chaisma as an extension from the floor or the hypothalamus in man. Anatomically is divided into three parts - anterior lobe, posterior lobe and the intermediate lobe.

i) Anterior pituitary : The anterior pituitary is also called adenohypophysis. It is highly secretory in activity. Six hormones have so far been isolated from this lobe. They are :

Adrenocorticotrophic hormone (ACTH) controls the synthesis and secretion of hormones from Adrenal cortex.

Thyroid stimulating hormone (TSH) controls the synthesis and secretion of thyroid hormone.

Follicle-stimulating hormone (FSH) controls ovarian development; responsible for maturation of follicles in females and controls testicular development, spermatogenesis in males.

Luteinizing hormone (LH) or interstitial-cell stimulating hormone (ICSH) controls the secretion of estrogens and progesterone, ovulation, transformation of the follicle to corpus luteum in female and in males it regulates the secretion of testosterone and androsterone.

Luteotrophic hormone (LTH) or prolactin is responsible in active mammary growth and lactation and support corpus luteum maintenance.

Somatotrophic hormone (STH) or growth hormone (GH) stimulates growth (protein synthesis), especially for bones of extremities and skull; raises blood sugar.

ii) Intermediate Lobe :

This lobe is adjacent to anterior lobe, sometimes difficult to identify from the anterior lobe. It secretes intermedin or melanocyte stimulating hormone (MSH). The darkening of the skin in humans is due to this hormone. The regulation of the hormone is controlled by the sunlight. Lack of skin pigmentation is due to its absence.

iii) Posterior Pituitary (or neurohypophysis) :

Anatomically it is intimately associated with the hypothalamus via the hypothalamo-hypophysial fibre tracts, thus forming a component of the hypothalamic neurosecretory system. The hormones are actually secreted from the hypothalamus from where they are transported and stored in the posterior lobe along the fibre-tracts for release. Two important hormones are secreted from the posterior lobe. They are oxytocin and vasopressin (also called antidiuretic hormone 'ADH).

Oxytocin has a stimulating effect on the musculature of the uterus and promotes labour. It also stimulates secretion of milk from the breasts and the stimulus is obtained from the suckling of the baby.

Vasopressin promotes water retention in the kidneys, hence the name antidiuretic hormone (ADH). Secretion or inhibition of the antidiuretic hormone is controlled by osmoreceptors present in the hypothalamus. Excessive intake of water would inhibit the secretion of ADH.

THYROID GLAND :

Thyroid is a bilobed gland. The two lateral lobes are situated one on either side of the trachea just below the larynx being connected with a narrow isthamus - giving the entire gland a more or less H-shaped appearance. Thyroid secretes hormones like thyroxine, triiodo thyronine (T3) and Calcitonin. Iodine is the most essential component of thyroid hormones which is accumulated by the thyroid gland. Thyroglobulin, a mucoprotein is hydrolysed in the thyroid gland by a proteolytic enzyme releasing the hormone in the blood stream. Thyroxine (most common thyroid hormone)is essential for normal growth, skeletal maturation and mental development. Inadequate thyroid secretion retards growth and mental development. The thyrotropic hormone (TSH) secreted by the anterior pituitary regulates the thyroid function. TSH stimulates thyriod gland and elevates the thyroid hormones in the circulation. Hypothyroidism due to less secretion of hormone or reduced iodine intake r arrests growth and appearance of other abnormal conditions like protruded tongue and dry, thick lustreless hair and skin leads to cretinism disorder. Myxodema in adult due to atrophied thyroid gland function lowers the basal metabolic rate leading to dry, coarse hair and skin, puffiness of the lower eyelids, thick and coarse voice, dull memory, excessive lethargy, marked intolerance to cold.

Hyperthyroidism is due to excessive thyroid secretion and may or may not be associated with gland enlargement. Goitre is a common case associated with hyperthyridism.

PARATHYROID GLANDS:

There are four parathyroids, two on each side placed ove the thyroids. Parathyroid glands are intimately involved in calcium and phosphorus metabolism of the body. Parathyroid gland secretes parathormone or parathyroid hormone (PTH). The primary function of PTH is to maintain the concentration of ionized calcium ($Ca^{++}$) in the plasma. It also lowers the serum phosphoru by increasing urinary excretion of phosphate but decreases the calcium excretion. Mobilizes calcium from bone, particularly if the dietary intake of calcium is inadequate and enhances the rate of calcium absorption from the intenstine.

The PTH hyposecretion leads to tetany-a type of muscle spasm. This is due to reduced free calcium in the blood because

much of the calcium in the blood is bound to other substances. Hypersecretion leads to destruction of bone and non-utilization of calcium. This results in the softening of bones and a high blood calcium. Eventually calcium is deposited in the walls of arteries and lungs. In the areas of destruction in the bones fibrous cysts develop and the bone becomes painful and fractures occur frequently. This condition is called osteitis fibrosa cystica.

ADRENAL GLANDS :

The adrenal glands are situated one on either side of the vertebral column, closely applied to the upper poles of the kidneys; hence called as supra-renals. The adrenal glands are surrounded by a capsule of areolar tissue containing fats. The glands are composed of two distinct parts which differ both anatomically and physiologically. The outer part is known as cortex and the inner part as the medulla. The cortex composed of three layers of cells called zona glomerulosa (outer layer), Zona fasciculata (middle layer) and Zona reticularis (inner layer). The medulla is completely surrounded by the cortex. The cortex secretes glucocorticoids and mineralocorticoids hormone. Glucocorticoids (cortisol, corticosterone) which participate in carbohydrate fat and protein metabolism and also concerned with diuretic action, anti-inflammatory and anti-allergic, anti-stress effects. Mineralocorticoids (aldosterone) is involved in Na+ and K+ regulation in the body and carbohydrate metabolism. The medulla secretes epinephrine (adrenaline) and nor-epinephrine (nor-adrenaline) hormones. Epinephrine functions in the increase in cardiac out put rise in systolic blood pressure accelerates conversion of liver glycogen to glucose and raises blood sugar level, converts muscle glycogen to lactic acid, increases oxygen consumption, raises body temperature and basal metabolic rate, stimulates central nervous system. Nor-epinephrine functions in the constriction of small arteries (Vasoconstriction), raises both systole and diastole of the heart and raises blood pressure.

PANCREAS :

The pancreas is a rather diffuse gland which is a mixture of two histologically and functionally separate tissues. The bulk of the gland is exocrine in function. Scattered among the exocrine cells (acini) are patches of tissues called islets of Langerhans and these consists of endocrine cells that directly

discharges secretion in the blood. These cells are small, prismshaped, closely packed together without a lumen; they collectively form an endocrine gland. In mammals Islets of Langshans contain two types of cells, the $\alpha$ - cells and the $\beta$ - cells. The hormones glucagon and insulin are secreted by $\alpha$- cells and $\beta$-cells respectively. Glucagon increases levels of blood glucose (sugar) by stimulating the conversion of liver glycogen into glucose. Insulin enhances the utilization of glucose by peripheral tissues, helps conversion of glucose into gycogen in the liver and skeletal muscles.

TESTIS :

In mammalian testis, the interstitial Leydig) cells lying scattered in between the seminiferous tubules synthesize male hormones, the androgens. The principal male hormone is testosterone. Testosterone promotes the growth and function of the epididymis, vasdeferens, prostate, seminal vesicles and male sex organ. Stimulates secondary sexual characters in males and sexual behaviour.

OVARY :

Two main types of female hormones are secreted by the ovary - the estrogens or follicular hormone produced by the cells of developing graffian follicle and the progesterone derived from the corpus luteum that is formed in the ovary, from the reptured follicle after ovulation. Estrogen promotes the development of female secondary sex characteristics and sexual behaviour. Progesterone maintains pregenancy, development and growth of mammary glands and maintains the foetus by forming placenta and inhibits utrine muscles to contract during pregnancy

In addition to progesterone the corpus luteum of some mammals like mouse, rabbit, dog, cow, guinea pig produce a second hormone termed relaxin which inhibits uterine contractions relaxes cervix and thus facilitates birth.

PLACENTA :

In female, during pregenancy the early placenta (foetal part) secretes a hormone known as chorionic Gonadotropin (CG). This exerts a protective influence on the unborn child and deficiency or absence of the hormone in theearly stages of pregenancy has been associated with abortion. This hormone promotes the production of progesterone from the ovary in the first six weeks of the pregnancy. Progesterone is the gestational hormone - essential for the continuation of pregnanc

THYMUS.

Thymus is located in the upper part of the thorax. It is partly an endocrine gland and partly a lymphoid structure. The thymus is quite large in the young animal but as the animal grows, the gland atrophies. By the time adulthood is reached; it is no more than a pair of small lobes lying on either side of trachea. Each lobe has numerous lobules and every lobule consists of a peripheral cortex and a central medulla. Cortex is densely packed with lymphocytes and medulla has less numerous lymphocytes. The thymus secretes thymin (also called thymosin) which is a polypeptide hormone which depresses neuro-muscular transmission. Thymus in the infant mammal plays a major role in setting up the lymphocyte producing machinery of lymph nodes, thus providing the basis for the development of antibodies helping in the immune system.

PINEAL BODY. -

The pineal body (gland) is a small, pea-sized structure lying deep in the groove between the cerebellum and the cerebral hemispheres in rabbit. Histologically, it consists of parenchyme cells and Neuroglia cells. In lower vertebrates it produces a hormone called melatonin. I tlightens the skin pigments when injected to frog. Its action on the melanophores is thus just the reverse of that of MSH (Melanocyte Stimulating hormone). Melatonin inhibits the gonads both as gamete producers and as endocrine gland in the laboratory rat. In humans, it atrophies at the age of 7 years and its role is uncertain.

xxxx

# RENAL MECHANISMS AND URINE FORMATION

Mr. P.K.Pattnai
Lecturer in Zoology

Kidney purifies blood by the process of filtration, selective reabsorption and secretion and it maintains the physiologically required concentration of various electrolytes in the different body fluid and plays an important role in the regulation of blood pH. The whole function is carried out by numerous basic units known as Nephrons in each kidney.

Human kidney possesses two types of nephrons - cortical nephrons and juxtamedullary nephrons. Nearly 80 percent of the total nephron bed is due to cortical nephrons and remaining 20 percent comprises juxtameduallary nephrons. The length and position of loop of Henle and the placing of the collecting tubule differs in both the types of Nephrons. The loop of Henle is long and dips deep into the substance of medulla of kidney and the collecting duct of it also travels through the substance of medulla and opens at the medullary pyramid in the case of juxtamedullary nephron. The loop of Henle of cortical nephrons is short and its greater part remains embedded in the cortical substance and only a very small portion of it dips into the medullary tissue.

Nephron begins with a blind-end known as Bowman's capsule. A tuft of capillaries invaginates into the Bowman's capsule to form glomerulus. Bowman's capsule is in continuity with the renal tubule which is functionally divisible into three segments - proximal tubule, loop of Henle and the distal tubule.

The proximal tubule is convoluted, approximately 45 mm long and 55 mμ in diameter. It remains lined by single layer of cuboidal cells. The luminar-surface of these cells bears numerous microvilli which increase the absorptive surface area of these cells. The presence of micro-villi imparts a "brush-border" appearance in these cells. The proximal convolut tubule opens into the loops of Henle (i.e., the next segment). The loop of Henle consists of three units - the descending limb, a thin segment and an ascending limb. All the three parts of loop of Henle are lined by a single layer of flattened epithelial cell. The ascending limb of the loop opens into the distal convoluted tubule which is comparatively wider and is lined by single layer of cuboidal cells. While traversing through the

cortex, the tubule comes in contact of its own afferent arteriole, the junction being marked by modified type of cells from both components which is designated as macula densa. Distal convoluted tubule empties its contents into the collecting tubule which is lined by flattened epithelial cells. The collecting tubule in turn opens into a collecting duct which finally drains its contents into pelvis of kidney.

Glomerulus is made up of net-work of capillaries which run paralled to each other. The net-work is framed by branching of the afferent arteriole. The visceral layer of Bowman's capsule covers up the outer surface of this capillary net-work. In addition, a layer of flattened endothelial cells and a layer of basement membrane of the capillaries constitute the total thickness of the bed through which glomerular-filterate, has to pass.

An average pressure of 70 mm of Hg is maintained throughout the glomerulus by virtue of a peculiar type of branching of the "renal vascular tree", and the diameter of the lumen of the blood vessels. Branching at any point in the "renal arterial tree" occurs at right angles which prevents the fall of blood pressure to a considerable extent which would otherwise have occurred, had there not been branching. The fall in blood pressure is also prevented on account of the fact that the internal diameter of the afferent arteriole is greater than that of the efferent arteriole. This allows more input and less output of blood which further prevents the fall in blood pressure.

The glomeruler net-work originates as a result of branching of efferent arteriole which enters the Bowman's capsule. These branches reunite within the glomerulus to form a single efferent arteriole which emerges out from the Bowma Bowman's capsule just facing the afferent arteriole. Efferent arteriole divides into branches which spread and surround the renal tubule of the same nephron. This forms a peritubular capillary bed. These capillaries reunite to form venule which finally joins the renal vein. A twig from peritubular capillary bed extends along the loop of Henle in a "hair pin" fashion which is known as Vasa recta.

## FORMATION OF URINE

Urine formation involves three processes - glomerular filtration, tubular reabsorption and tubular secretion.

## Glomerular filtration :

Glomerulus acts as an Ultrafiltration - membrane. It filters out protein - free plasma. The main force that drives the fluid out of Glomerulus is the hydrostatic pressure of capillaries (P). This pressure is opposed by two forces, namely the hydrostatic pressure exerted by the fluid in the Bowman's capsule (PB), and the oncotic pressure of the plasma proteins (Pp),(Colloidal osmotic pressure exerted by the plasma proteins). Thus, the effective filteration pressure (.E.E.P.) is equal to the difference of these opposing forces and may be represented as follows :

$$E.F.P. = P - (p_B + P_p).$$

In all nephrons, such an effective filteration pressure is exerted which drives some of the fluid out of glomerulus into the lumen of Bowman's capsule. The total amount of filterat. formed by all the nephrons of both the kidneys per minute is known as glomerular filteration rate (G.F.R.) The Glomerular filterate for normal individual in the course of 24 hours is approximately 180 liters. About 99.5 to 99.7%. of this filterate is reabsorbed when this travels through different segments of the renal tubule. The remaining amount of the filterate - the urine, which constitutes about 1000 to 1500 ml. is excreted out per 24 hours.

The average pressure of the glomerular capillaries (p) is about 70 mm of Hg . It may very from 65 to 75 mm of Hg This is the pressure, which acts as the main driving force in the glomerulus. The hydrostatic pressure in the Bowman's capsule ($P_B$) has been reported to be of the order of 10 to 15 mm of Hg . When blood passes through the glomerulus, nearly 1/5th of its plasma (devoid y protein) is filtered out. Thus, the protein concentration of blood present in the renal glomerular bed is considerably increased and this results in an increase in the colloidal osmotic pressure of the blood proteins. This additional pressure in the renal bed is of the order of 25 to 35 mm of Hg with an average of 32 mm of Hg .

## Tubular Reabsorption

The glomerular-filterate passes successively through the proximal convoluted tubule, loop of Henle, distal convoluted tubule, collecting duct system, and finally drained into the

pelvis of kidney, from where it is finally eliminated as urine. While it is traversing through this channel, same of its constituents are reabsorbed to the extent of 99.9 per cent even. Some other substances are not absorbed at all, and a few are added to this filterate by tubular secretion. The substances reabsorbed by renal tubule have been divided into high-threshold substances and low-threshold substances. Renal thereshold value of a substance is that level of the substance in blood, beyond which its complete renal tubular reabsorption does not occur. Those substances which are vital for life and the body can not stand their loss show high renal threshold value, i.e., such substances are not usually lost through urine till they reach fairly high but definite circulatory levels. Below these definite levels whatever amount of such substances appears in the glomerular filterate is reabsorbed renal tubules. The reabsorption of such substances may occur to the extent of 99 to 100 per cent. The examples are glucose, amino acids, phosphate, sodium, potassium, chloride, calcium, ascorbic acid and water. The low-renal threshold substances are usually not required by the body, rather these are harmful. Such substances are reabsorbed by the renal tubules only to a very small extent, or not at all (Ex-urea, uric acid etc.).

In the proximal tubule, essentially 100 per cent glucose and amino acids, atleast 80 percent of water, sodium, potassium, chloride and calcium are reabsorbed. All these substance except water, are absorbed actively. Water absorption in this segment is obligatory (i.e., it is bound to occur irrespective of the body need). When sodium and other substances are transported from the tubular lumen across the tubular membrane into the peritubular fluid, it causes increase in the solute concentration in the peritubular fluid medium. The proportion of water in the tubular lumen becomes higher in relation to tubular sodium. Thus, an osmotic gradient is established between the tubular fluid and the peritubular fluid, andwater starts diffusing into the peritubular fluid. Substances such as urea whose reabsorption is dependent upon the reabsorption of water are transported passively. The reabsorption of the negatively charged ions, such as chloride and bicarbonate is mainly governed by electrical-gradient. With the transport of positive ions, such as sodium, potassium, calcium, etc., into the peritubular fluid, the peritubular fluid becomes positive in relation to the tubular-filterate which therefore attracts the negatively charged ions from the tubular filterate. After

so many changes in chemical composition, the glomerular filterate enters into the next segment of the renal tubule i.e., the loop of Henle.

The descending limb of loop of Henle is freely permeable for water and solutes, but the ascending limb of the loop is absolutely impermeable for water. It, however, allows transport of the solutes. This peculiarity of the loop of Henle is very important in relation to concentration of urine. The loop of Henle acts on the pattern of counter-current system in concentrating the tubular filtrate. A counter-current system, as applicable to kidney is formed by the ascending and descending limbs of loop of Henle which run parallel, opposite and in close proximity to each other. The exchange of solutes is made possibl by the presence of Vasa Recta. Loop of Henle of juxtamedullary nephron dips deep into the substance of the medulla and its collecting duct again descends back through the medullary pyrami to be drained at the tip of pyramid. An increasing gradient of osmolality is maintained in the medulla, maximum at the tip of the medullary pyramid. This is possible only when sodium and Urea are held in the interstitium of the medullary substance and are not allowed to be drained by the blood. Sodium is absorbed all along the ascending limb of the loop of Henle making the interstitial fluid hypertonic. As a result of it, water from descending limb diffuses into the interstitium and sodium and urea migrate into the descending limb. The fluid in the descending limb becomes increasingly concentrated as it travels downwards. Maximal concentration is attained in this limb of the loop of Henle. It is the hypertonic solution that enters the ascending limb which is waterproof but constantly pumps out solutes in the interstitium. At the end of the loop when fluid enters the distal convoluted tubule, it becomes hypotonic to plasma. Hypotonicity is brought about by active transport of sodium all along the ascending limb which thus maintains the counter-current multiplication of concentration in the descending limb of the loop of Henle.

Hypertonicity of the interstitium is maintained by operation of vasa-recta as counter-current exchanger. Both limbs of vasa recta are freely permeable to solute and water. Sodium and urea come out of the limb carrying blood towards cortex, and diffuse into the limb going towards pyramid. The net result of it is sodium is held in the interstitium whereas water is allowed to go in the ascending limb of vasa-recta.

Counter-current exchange is a passive system which operates secondary to counter-current multiplication.

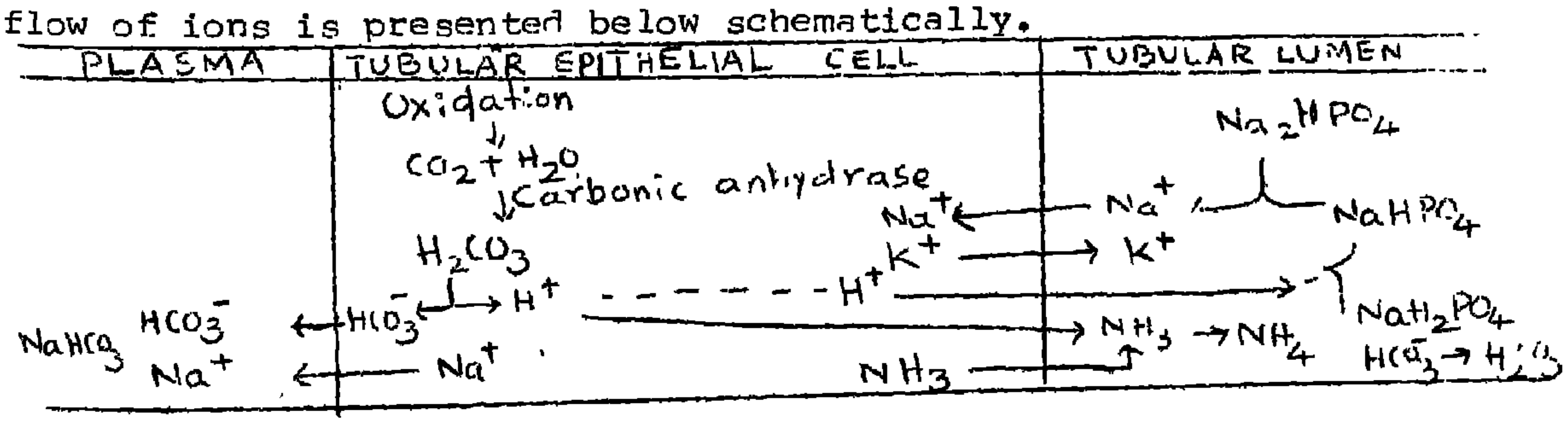
Now the events starts in the distal convoluted tubule. Further reabsorption of water occurs here under the influence of ADH (antidiuretic hormone). ADH increases the permeability of distal tubule and thus leads to 10 to 15 per cent reabsorption of the glomerular fittrate by this segment. Water reabsorption is facultative (i.e. reabsorbed at option depending upon the water requirement of the body) in this segment. It is independent of solute transport but is under the control of ADH.

The glomerular fittrate after traversing through the proximal tubule, loop of Henle and distal tubule enters into the collecting duct system in the stage of isotonicity in relation to plasma. Collecting duct is also under the control of ADH; and besides this the hypertonic interstitum through which it traverses also extracts water and a little sodium from this filtrate. The combined effect of both the factors results in further loss of 4 to 4.5 per cent of the filtrate. Thus, when the glomerular filtrate enters the renal pelvis, 99.5 to 99.7 per cent of its total water is reabserbed in the different segments.

Tabular secretion :

Those products of metabolism which are not at all required by the body, rather they are injurious to health, are secreted out by tubular epithelium in the tubular filtrate. Creatinine, Uric acid, potassium and hydrogen ions are the only normally formed end-products which are secreted by the tubules. However, some of the dyes infused for some purpose, or the other substance i.e. phenol red, penicillin etc. are also excreted out by tubular epithelium.

A more important aspect of tubular secretion is the shift of $K^+$ and $H^+$ ions from epithelial cells to renal filtrate/ This shift causes the real loss of $H^+$ ions from blood, and greatly helps in acid-base balance as well as electrolyte balance of the body. The flow of ions is presented below schematically.




/ in exchange of $Na^+$ ions present in the renal filtrate.

The tubular epithetial cells secretes hydrogen ions into the glomerular filtrate. Hydrogen ions are formed as a result of dissociation of carbonic acid in the tubular cell. For each $H^+$ ion secreted into the tubular filtrate, one sodium ion is absorbed by the tubular cell. Bicarbonate ions obtained from carbonic acid dissociation, and the sodium ions absorbed from the renal lumen diffuse into the blood stream in the form of sodium bicarbonate. The hydrogen ions secreted into the tubular filtrate, combine with $HCO_3^-$ , $HOP_4^=$ and $NH_4^+$ respectively. Such reactions therefore fix up the $H^+$ ions in the tunular fluid and prevent their reabsorption, rather these facilitate the excretion of the $H^+$ ions. Exchange of $Na^+$ ions from filtrate may also occur with the intracellular $K^+$ ions in addition to $H^+$ ions.

Thus, the glomerular filtrate is ultimately converted into a well concentrated Urine which measures about 1000 to 1500 ml per 24 hours and shows a PH between 4.8 to 7.5.

...
.

Names and addresses of the Participants & Resource Persons

...

List of participants

1. Sri Devendra Pr. Sinha
Teacher
Cossipore Gun & Shell Factory High School,
Cossipore, Calcutta-2

2. Sri Jitendra Nath Sharma
Teacher
Cossipore Gun and Shell Factory High School
Cossipore,Calcutta-2

3. Sri Sisir Kumar Datta
Teacher
Cossipore Gun and Shell Factory High School
Cossipore,Calcutta-2

4. Sri Siba Prasad Kumar
Teacher
Cossipore Gun and Shell Factory High School
Cossipore,Calcutta-2

5. Smt. Bijali Barman
Teacher
Cossipore Gun and Shell Factory High School
Cossipore,Calcutta-2

6. Smt. Chitra Chatterjee
Teacher
Cossipore Gun and Shell Factory High School
Cossipore,Calcutta-2

7. Sri Prakas Chandra Pal
Rifle Factory High School
Ishapore, West Bengal

8. Smt. Geetashree Chakraborty
Teacher
Rifle Factory High School
Ishapore, West Bengal

9. Sri Bharat Tiwary
Teacher
Rifle Factory High School
Ishapore, West Bengal

10. Sri OM Prakash
Teacher
Rifle Factory High School
Ishapore, West Bengal

11. Sri Baijnath Yadava
Teacher
Rifle Factory High School
Ishapore, West Bengal

12. Sri Paramhans Mishra
Teacher
Rifle Eactory High School
Ishapore, West Bengal

13. Sri Chandra Mohan Prasad
Teacher,Rifle Factory High School,Ishapore,West Bengal

List of Internal Resource Persons

1. Dr.N.Khattar
Professor and Head
Department of Science & Programme Director

2. Dr.K.K.Chakraborty
Reader in Mathematics

3. Sri M.A.Chandrasekhar
Reader in Physics & Programme Coordinator

4. Dr.A.L.N.Sarma
Reader in Zoology

5. Dr.S.K.Mohapatra
Reader in Chemistry

6. Dr.J.K.Mohapatra
Reader in Physics

7. Dr.A.N.Gupta
Reader in Chemistry

8. Dr.M.P.Sinha
Reader in Botany

9. Dr.H.H.Tripathy
Reader in Chemistry

10. Dr.P.K.Durani
Reader in Botany

11. Dr.U.K.Nanda
Reader in Zoology

12. Dr.V.J.Jadhao
Reader in Physics

13. Dr.P.S.Tripathy
Sr.Lecturer in Mathematics

14. Dr.D.G.Rao
Sr. Lecturer in Zoology

15. Mrs. M.Mohapatra
Lecturer in Physics

16. Dr.Miss R.Mishra
Sr.Lecturer in Botany

17. Dr.Mrs. N.Chhotray
Sr.Lecturer in Chemistry

18. Dr.B.K.Parida
Lecturer in Physics

19. Dr.Mrs.J.Mohapatra
Lecturer in Chemistry

20. Sri P.K.Pattnaik
Lecturer in Zoology

21. Dr.G.V.Gopal
Lecturer in Botany

22. Dr.S.C.Panda
Lecturer in Education

(Prof.N.Khattar)
Programme Director